

हठ प्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता का
तुलनात्मक अध्ययन

**A Comparative Study of Hath
Pradipika and Gherand Samhita**

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध का सार



निर्देशक

डा० सौ० टी० किन्घे

रीडर

प्रस्तुतकर्ता

रामेश्वर दयाल शर्मा

एम० ए०

संस्कृत-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़

१९८४

T3075

प्रबन्ध-सार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध षेरण्ड संज्ञिता के संप्राणि विषयानुक्रम के अनुसार रत्कर हठप्रदीपिका के चतुरंग हठयोग की समस्त क्रियाओं का समावेश करके ग्यारह अध्यायों में विभाजित है। अध्याय के प्रारम्भ में हठयोग के जिस ढंग का वर्णन किया गया है उसके विषय में सामान्य जानकारी परिभाषा, लक्षण एवं उन क्रियाओं का शरीर एवं मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसका उल्लेख भी यथा स्थान करने का प्रयास किया है, जिससे हठयोग साधना से पूर्व ही साधक को समुचित ज्ञान मिल सके। विवेचन की गई क्रियाओं के वन्त में यथा सम्भव बाह्यैतिक बाधधियों का भी उल्लेख साधना की शीघ्र सिद्धि के लिए किया गया है तथा क्रियाओं के अभ्यास से होने वाले विपरीत प्रभाव का वर्णन कर नवीन दशाओं और सम्भावनाओं के विषय में जानकारी देकर हठयोग के गुढ़ रहस्य को खोलने तथा जन सामान्य के हितार्थ रत्ने का प्रकाश किया गया है। आधुनिक समय में योग साधकों में कृष्ण योग विज्ञानियों में वाचन मुद्रा एवं प्राणायामों के विषय में फैली हुई भ्रान्तियों का दूर करने हेतु यथा स्थान उल्लेख दिया है।

शोध प्रबन्ध में षेरण्ड संज्ञिता एवं हठ प्रदीपिका की प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं कई स्थानों से प्रकाशित ग्रन्थों का अध्ययन कर पूर्वोपर समय निर्धारण, दार्शनिक पृष्ठभूमि का उल्लेख एवं हठयोग के विभिन्न उपनिषदों का अध्ययन, उत्तरालण्ड के हठयोगी, कापालिक, राजयोगी, तान्त्रिक एवं भारत के विभिन्न राज्यों से सम्पर्क कर जमरौली, बगौली एवं लेवरी जैसी लोक दुःसाध्य क्रियाओं की सिद्धि के उपायों की जानकारी कर तत्पश्चात् उन

पर स्वयं अनुभव करके सुझाव प्रस्तुत किये हैं। योग साधना में साधकों को जो बाधाएं उपस्थित होती हैं उनको दूर करने के सुझावों का भी समावेश ग्रन्थ के अन्तर्गत उपलब्ध है।

प्रबन्ध में मानव शरीर को सुदृढ़ करने के किस प्रकार सुविधा मिल सकती है तथा युवकों के लिए योग साधना की आवश्यकता है क्या नहीं, युवक एवं युवतियों को वासन, प्राणायाम, वन्द्य एवं मुद्रा करते समय क्या सावधानियां बरतनी हैं, इसका भी समुचित यथास्थान वर्णन किया गया है। योग साधना का समय (काल) तथा क्रियाएं करने का क्रमबद्ध उल्लेख, बालक बालिकाओं के अभ्यास हेतु तालिका एवं विशिष्ट क्षेत्रों का उल्लेख, योगी का भ्रमोद्धार व निष्प्रियोद्धार का विवेचन कर प्रबन्ध को आधुनिक रूप देने का प्रयास है।

क्रियाओं के अभ्यास के फल से शरीर के कौन कौन से रोग दूर किये जा सकते हैं। उन रोगों का भी वर्णन क्रियाओं के अन्त में उपलब्ध है जिसका लाभ पाठकों को मिलेगा। इस शोध प्रबन्ध में भारतीय ग्रन्थों के अतिरिक्त पश्चात्य ग्रन्थों का भी आश्रय लिया गया है, क्योंकि वह वैज्ञानिक परीक्षाओं पर ठीक ठीक उतर चुके हैं तथा इन ग्रन्थों के समावेश से साधना एवं शोध के क्षेत्र में अधिकाधिक सामान्यता हो सकेगी।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में योग का अभिप्राय, इसकी व्युत्पत्ति परिभाषा, विभिन्न प्रकार के योग, योग क्या है, तथा इसका आधुनिक स्वरूप पंचमूलात्मक दृष्टि और योग शक्ति तथा इसकी साधना से अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति तथा कैवल्य की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है का विस्तृत विवेचन किया गया है।

योग की प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में

उल्लेख है कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना में 'योग' की संस्कार परम्परा अति प्राचीन है। सांख्य के समान ही योग-चेतना भी भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम से लेकर अनावधि उपलब्ध साहित्य में विविधमुखी एवं विविधरूपा रही है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों और शिष्ट साहित्य में ही नहीं, भारत के अनेक धर्मों सम्प्रदायों एवं साधनाओं में भी योग का व्यापक राज्य रहा है। योग चिन्तन या भावना के क्षेत्र तक ही परिधीमित नहीं रहा, वह निस्संग प्रक्रिया का अवलम्बन कर हठयोग भी बना। वैदिक और अवैदिक वैष्णव-अवैष्णव, बौद्ध, जैन, वैशी, विदेशी योग से प्रभावित हुए। योग की प्रक्रिया तथा भावना ऐसी विलक्षण है कि जो इसके सम्पर्क में आया वह योगपरक हो गया। वस्तुतः योगपरक प्रवृत्ति वितरि हुए रूप में वैदिक वाङ्मय से लेकर परवर्ती लौकिक साहित्य और अनेक साधना सिद्ध सम्प्रदायों में उपलब्ध है।

योग शब्द भारतीय वाङ्मय में बहुत व्यापक रहा है और व्यवहार में 'योग' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यह शब्द पारिभाषिक ही कहा जा सकता है और अधिकतर पारिभाषिक रूप में ही यह शब्द लिया भी गया है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण 'पाणिनि', मुट्टोजि दीक्षित', अमरकोश, सिद्धान्त कौमुदी एवं मेदिनीकोश के अनुसार उल्लिखित करते हुए पाणिनि के गण पाठ के आधार पर 'युग समाधी' से योग शब्द की व्युत्पत्ति ठीक करते हुए 'समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः' का उल्लेख कर योग शब्द की व्युत्पत्ति की है। विभिन्न प्रकार के योगों का उल्लेख करते हुए मन्त्र योग, लय योग, हठ-योग एवं राजयोगों की परिभाषा मुख्य रूप से की गई है। इनके अतिरिक्त तारकयोग, कर्मयोग, ज्ञान योग, हंस योग, भक्ति योग आदि का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

योग किसे कहते हैं तथा इसका कार्य और क्या है ? इस बात का भी विचार इस प्रबन्ध में किया गया है। जैसे समुद्र सुखर होने पर भी उसका वाष्प महाविश के वाष्पान्तर को चरस करके प्रवा को जीवित रखता है। उसी प्रकार योग साधारण मनुष्यों के जन्म होते हुए भी उसकी स्निग्ध शायी ने मानव के धर्म-जीवन को जीवित रखता है तथा भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने आधिभौतिक, आधिदैविक, आधिदैहिक दुःखों के निवारण के लिए जन्तुःकरण कृष्टय के जन्तुगत मन को ही स्वीकार कर मनोनिग्रह का मार्ग योगान्यास ही निकाला है। इस योगान्यास से शरीर के मल-विशेष आवरण छट जाती हैं और प्राणी को अपनी वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यह प्रक्रिया प्रकृति के अनुसार 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' है। इस प्रबन्ध में इस बात का भी उल्लेख है कि चित्तवृत्ति निरोध योग करना ही योग है, नहीं है क्योंकि चित्त की सात्त्विक राजस और तामस त्रिविध अवस्थाएं हो सकती हैं। राजस चंचलता घटने से ही सात्त्विक स्थिति नहीं आ जाती तामस अवस्था भी हो सकती है। स्तब्धता उसी प्रकार की चांचल्यहीन अवस्था है पर वह तामसावस्था है। केवल चित्तवृत्ति निरोध ही योग नहीं है। ग्राह्य, ग्रहण, गृहीता आदि किसी तत्त्व में इच्छापूर्वक स्थिति करके वृत्तियों का जो रोध होता है वही योग है। स्तब्धता में चित्त इच्छापूर्वक किसी तत्त्व में स्थित नहीं होता। जिस प्रकार बलारोफोम आदि के परिणाम से भी चित्त की गति रुद्ध होती है, किन्तु उसको लोग ज्ञान अवस्था ही कहेंगे। हिस्टिरिया स्तब्धभाव आदि मानस रोग विशेष भी उसी प्रकार के हैं। ये सब विवरण और जड़ अवस्थाएँ हैं किन्तु योग स्वयं तथा पूर्ण चेतन अवस्था है। वाह्य दृष्टि से दोनों में कुछ सादृश्य रहने के कारण लोग विभ्रान्त होते हैं, पर ये दोनों चित्तावस्थाएँ तथा परिणाम बन्धकार और बालोक की भाँति विभिन्न तथा विपरीत हैं।

वेदान्त के अनुसार 'बन्धावस्थयाः' जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का निमित्त कारण हम ब्रह्म को स्वीकार करते हैं किन्तु यही योग समाधि में दुःख का निवृत्तता लाव करती हुए अवस्था के बन्धनों को काटकर 'पुरुष' विशेष 'चेतन तत्त्व' का साक्षात्कार कराता है जो जीव के लिए यह अमोघ मोक्ष है ।

हठयोग के बाधुनिक स्वरूप की भी वर्तमान प्रवृत्ति में की गई है। योग के दो अंग बाह्य एवं प्राणायाम को लेकर बाधुनिक योगियों ने समाचार, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन पर अंग प्रदर्शन कर योग की गुरु परम्परा को समाप्त करने का सफल प्रयास किया है तथा 'सम्मोह' से समाधि तक 'सेक्स और योग', 'योग से शरीर सौन्दर्य' जैसे साहित्य का रचन कर योग के प्राचीन स्वरूप पर कुठाराघात एवं संसार भर में योग-बाधुनिक स्थापित करने की बाढ़ सी बागई है। उपर्युक्त समस्त प्रकार के प्रकार साधन से समग्र मानव जाति वास्तविक योग मार्ग पर वास्तव न होकर, अवास्तविक मार्ग की ओर अग्रसर हो रही है ।

प्रस्तुत प्रवृत्ति में इस बात का भी उल्लेख किया है कि हठयोग से वात पित्त कफ के समस्त जीर्ण दोषों को नष्ट करके देह को योगाग्नि में फाकर छुड़ किया जा सकता है। इतना ही नहीं साधना में साधन रख रक्ती हुई अष्ट सिद्धियाँ- बहिष्मा, महिमा, सधिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व की प्राप्ति की जा सकती है और इन सिद्धियों की प्राप्ति योगी बिना नेत्रों के देखता है, बिना जिह्वा के रसास्वाद करता है, बिना कानों के देखता है, बिना नाक के सूँघता है और बिना त्वक् के स्पर्श करता है । उसकी इच्छा मात्र से ही सब कुछ हो जाता है । अन्तर्लोकत्वा पुरुष अपने ऐश्वर्यमय अथवा कैवल्यात्मक स्वरूप की उपलब्धि कर लेता है। वह प्रकृति और उसके कार्यों से सर्वथा असम्बन्धित रहता है। वह अपने को सर्वथा स्वतन्त्र (मुक्त) अनुभव

करता है। उसके समस्त बलें कर्म विनष्ट हो जाती हैं। गुणों का कार्य, भोग और अपमर्ग छिद हो जाने के कारण जब योगी का कार्य विस्तृत बन्द हो जाता है। योगी का समस्त ज्ञान एक कालिक है। मृत भविष्य उसके लिए वर्तमान में मिल जाती है। कैवल्यप्राप्त योगी के अनन्त ज्ञान के सामने त्रैलोक्य का समग्र ज्ञान भण्डार तथा समस्त लौकिक विषयों का ज्ञान कुछ नहीं है। सभी निःसार है।

योग के समग्र चिन्तन और वास्था ने मानव को देशीय सीमा से ऊपर उठाया और प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी व्यवस्था और जीवन दर्शन प्रस्तुत किये हैं। भारतीय योग विद्या का ज्ञान-विज्ञान समाज के सुख के लिए, व्यक्ति के कल्याण के लिए है और थी। उसकी भित्ति एवं स्तम्भ की नींव इतनी गहरी थी कि वह कभी मृत या जीर्ण नहीं हो सकती, वह तो सदा बहार है। भौतिक किंवा स्थूल बाधार कितने सुन्दर क्यों न हो, उसमें व्यक्ति मुक्त होने की अपेक्षा करता है। जीवन की आवश्यकताएँ भी सुख साधन के नाम सेही और धुरी की जाती हैं किन्तु उसका क्रम दुःख साधन और पराधीनता का प्रतीक बन जाता है। स्वतन्त्रता और सामाजिक सुरक्षा के निमित्त बाण संसार के अन्दर जितने कानून बनाये गये हैं या वर्तमान में बनाये जा रहे हैं, उनके प्राणी बन्धन में जकड़ता जा रहा है। ऐसा ही मौलिक, व्युत्क्रम विज्ञान एवं भौतिक क्षेत्र में ही है जिसमें मानव जन्म-जन्मान्तर क्रमुक्ति के लिए भौतिकता के फँस के पीछे प्रयास करता है, लेकिन जब भी फँस उठा तो मानव ने अपने को जगज्जाल की बेदियों में बंधा पाया।

क्रीत में लीटा नहीं जा सकता पर वर्तमान का विश्लेषण करके उसे निर्दोष तो बनाया ही जा सकता है। इसके लिए उदार दृष्टि से योग-विद्या और उसके क्रीत को परखा जा सकता है। सम्पूर्ण रूप से नहीं आंशिक रूप में भी यदि भारतीय चेतनाविद्या और कल्याणमाविद्या की शक्ति को टटोला जाय तो सामान्य स्तर पर होने वाली लोक विचंगतियों से

बना जा सकता है। योग के व्यात्म ज्ञान से आवश्यकताओं के अन्तर्गत विस्तार और भय के छंदात्मक रोग, परस्पर हीना-कपटी तथा तृतीय विश्व युद्ध के मंद-राति हुए बादलों की गर्जन, उपनिवेशवाद एवं मानव के द्वारा मानव को समाप्त करने की प्रवृत्ति, वाणुविक शस्त्रों से युद्ध की धमकी की प्रवृत्ति सब के लिए पलायन कर सकती है, यदि भारतीय योग-विद्या का प्रचार एवं प्रसार द्रुतगति से उन्की मुक्त सिद्धान्तों के आधार पर हो।

हठयोग की क्रियाओं का सबसे अधिक प्रकृत विवरण 'धरुण्ड संहिता' में मिलता है। षट्कर्म, वासन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम एवं ध्यान के भेदों का ऐसा निरूपण किसी अन्य ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। 'धरुण्ड संहिता' तांत्रिक साधना के फल का ग्रन्थ है। तांत्रिक फल से किस प्रकार समाधि लाभ होता है उसे ही लक्ष्य करके हमें उत्तेज किया है। तांत्रिकों का योग सभी प्रकार के योगों का समन्वय रूप है। धरुण्ड संहिता के छठे उपदेश में स्थूल, ज्योतिर्मय एवं सूक्ष्म ध्यानों का भी प्रकार दिया गया है, वह तांत्रिकों की ध्यान प्रक्रिया है। धरुण्ड ऋषि ने वासा ऋषि में प्रणव का ध्यान कल्पाजप एवं तत्त्वों के मन्त्रों का उत्तेज किया है। प्राणायाम की साधना मुख्य होने से यह संहिता हठयोग साधना के अन्तर्गत जाती है। अन्त में हठयोग भी राजयोग में ही पर्यवस्य है। जीव की सत्ता ब्रह्म सत्ता से सर्वथा भिन्न न मानकर 'सोऽहम्' मन्त्र के अनुसन्धान से जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त होता है। यह सिद्धान्त तांत्रिकों का ही है।

३५० श्लोकों के इस ग्रन्थ में सभी योगों के स्वरूप का संक्षिप्त एवं सम्मिश्रण रूप प्राप्त है। इस ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली सरल, सुबोध एवं साधक के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस ग्रन्थ में 'षट्' शब्द का प्रयोग मानव शरीर को स्वीकार किया है। इस ग्रन्थ में अताधिक विभिन्न यौगिक क्रियाओं का निरूपण किया गया है।

‘हठप्रदीपिका’ जैसा कि पुस्तक के नामकरण से स्पष्ट होता है यह निश्चय ही योग के उन साधनों का निर्देश करती है जिससे मुमुक्षुजन वात्सवात्कार की ओर प्रवृत्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। योगीन्द्र स्वात्माराम कृत ‘हठप्रदीपिका’ योग साधना के क्षेत्र में अत्यन्त व्यावहारिक योगशास्त्र है, जिसमें व्यक्त अनुभव और साधना पद्धति के परिप्रेक्ष्य में योग साधक को सहज राजयोग फल की सिद्धि मिल जाती है। स्वात्माराम योगीन्द्र के ‘हठप्रदीपिका’ ग्रन्थरत्न को जैकानिक योग सम्प्रदायों, सन्त-महात्माओं और सिद्ध पुरुषों तथा जन-साधारण ने योग साधना के मार्ग निर्देशक रूप में स्वीकार किया है और उसके व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुरूप योगान्ध्यास कर जीवन्मुक्ति प्राप्त की है। यद्यपि हठप्रदीपिका हठयोग शास्त्र है तथापि इस शास्त्र का प्रतिपाद्य राजयोग है जन्मा राजयोग एवं हठयोग दोनों का सहज समन्वय है। हठप्रदीपिका के बाँधे उपदेश में मनोन्मनी और समाधि की चरमावस्था में स्वात्माराम ने जिस राजयोग की ज्योति प्रकाशित की है, उससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि स्वात्माराम ने राजयोग सिद्धि की ही दृष्टि में रत्नकर हठप्रदीपिका ग्रन्थ का प्रणयन किया है। निर्मल और वशवर्ती मन से सम्पन्न योगी ही समन्वयात्मक प्रयास का रसास्वादन करने में समर्थ होता है। हठयोग से शरीर समस्त व्याधियों से मुक्त हो जाता है। मन निर्विकार होकर हृदय की गति सन्तुलित होती है, चित्त की चंचलता का दाय होकर साधक स्वस्थ होकर अपनी योग साधना में तत्पर रहता है। साधना करते करते योगी ज्ञाना समर्थ हो जाता है कि जीवन्मुक्ति का वास्वादन करते हुए मृत्यु को डाल देता है। योगीन्द्र स्वात्माराम ने उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रत्नकर ही हठ-प्रदीपिका की रचना की जिसमें योग साधना की सामान्य प्रक्रिया जन्मा व्याव-हारिकता का विवेचन किया गया है।

हठप्रदीपिका में वादिनाथ भगवान् शंकर द्वारा

पार्वती के प्रति उपविष्ट योगाग्न की परम्परा की वस्तुगुणाता योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ महायोगी गोरक्षनाथ की देन है। यह पद्धति स्वर्णम होती हुए भी ह्युति स्मृति बागम तथा तंत्रादि में वर्णित योग-विद्या के अरुप है। साधक के लिए उपादेय है कि वह राजयोग के लिए हठयोग की प्रशः साधना करे, जिससे शरीर और मन के निर्दोष होने पर वह अपी गन्तव्य में सफल हो जाय।

काय शोधनार्थ षट्कर्मों को दोनों ही ग्रन्थ-कार स्वीकार करते हैं। घेरण्ड ने षट्कर्म- धाँति, वस्ति, नेति, त्राटक, नीति वस्त्रा लीलिकी एवं कपालभाति का उत्तम संज्ञिता के प्रथम उपदेश में प्रचुर मात्रा में किया है। स्वात्माराम ने षट्कर्मों का वर्णन हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में किया है। वासनों को स्वात्माराम ने हठयोग साधना में स्वीकार करते हुए हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में उत्तम किया है। उनका मत है कि योग साधना में वासनों से स्थिरता, बारोग्यता एवं अंग लाभ की प्राप्ति होती है जबकि घेरण्ड वासनों को मात्र शरीर सुदृढ़ करने के लिए ही स्वीकारते हैं। वासनों का उत्तम घेरण्ड ने द्वितीय उपदेश में किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में वासनों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है :- (१) ध्यानीपयोगी वासन (२) शरीर शोधनार्थ वासन। इस वर्गीकरण से साधकों तथा स्वास्थ्य निर्माण करने वालों का विशेष लाभ होगा। हठप्रदीपिका में पन्द्रह तथा घेरण्ड संज्ञिता में बत्तीस वासनों का उत्तम प्रस्तुत किया है। प्राणायाम का विधान दोनों के अन्तर्गत उपलब्ध होता है। दोनों ग्रंथों में नाड़ी शोधन प्रकरण के अतिरिक्त बाठ बाठ कुम्भकों का उत्तम है जिनमें सूर्य भेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, प्रामरी एवं मुर्च्छा का उत्तम समान रूप से प्राप्त है। घेरण्ड संज्ञिता में सस्ति कुम्भक और केवली कुम्भक

तथा वृद्धप्रदीपिका में सीत्कारी तथा सावित्री कुम्भ का वर्णन विनाम रूप से उपलब्ध होता है। धरुण्ड संज्ञिता में मुद्रा, धारणा एवं बन्धी संज्ञित पञ्चीस (२५) मुद्राओं का उल्लेख तथा वृद्धप्रदीपिका में मात्र द्वादश (१०) मुद्राओं का उल्लेख मुद्रा प्रकरण में तथा वही मुद्राओं का वर्णन नाद के साथ चतुर्थ उपदेश में दिया गया है।

वृद्धप्रदीपिका की पञ्चीसी मुद्रा की प्रक्रिया धरुण्ड की पञ्चीसी मुद्रा से विलक्षण भिन्न है। वृद्धप्रदीपिका की पञ्चीसी, ज्वरीसी तथा सखीसी मुद्राओं ने वृद्धयोग सम्प्रदाय की एक नया मोड़ दे दिया है जिसका प्रभाव कश्मीर साधकों एवं समाज पर विपरीत होगा। नाथ सम्प्रदाय की यह मुद्राएँ सभी सम्प्रदाय की ओर उन्मुख होती हैं। सखीसी एवं ज्वरीसी मुद्रा की प्रक्रिया का निर्देश करते हुए प्रबन्ध में इनकी प्रशंसा का भी वर्णन किया गया है। स्वात्माराम ने उल्लेख किया है कि सखीसी, ज्वरीसी मुद्रा पुण्यवान्, धैर्यवान् एवं उत्तमवर्तियों, सिद्धों तथा देव्य रक्षित पुरुषों को प्राप्त होती है। धरुण्ड संज्ञिता में सखीसी व ज्वरीसी का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। विपरीतकरणो मुद्रा का उल्लेख धरुण्ड संज्ञिता एवं वृद्धप्रदीपिका दोनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। वाजकस इस मुद्रा की मुद्राओं में न रहकर वासनों में सम्मिलित कर दिया है। वृद्धयोग के किसी प्राचीन ग्रन्थ में वासनों के साथ साथ शीर्षासन नाम का कोई वासन उपलब्ध नहीं होता है। वाजकस इस मुद्रा की शीर्षासन कहा जाता है। धरुण्ड एवं स्वात्माराम इसे विपरीतकरणो मुद्रा कहते हैं।

धरुण्ड ने संज्ञिता के चतुर्थ उपदेश में प्रत्याहार का उल्लेख किया है। इस प्रकरण में जनि ने अधिक विस्तार में न जाकर सूक्ष्म विवेक किया है। प्रत्याहार की धरुण्ड ने वही भागों में विभाजित किया है, पश्चिम में चट्ट सप्त वर्णन तथा दूसरी में वात्सल्यत्व। जहाँ धरुण्ड ने प्रत्याहार की वृद्धयोग का ही स्वीकार किया है वहाँ स्वात्माराम ने प्रत्याहार का किञ्चित् मात्र भी स्पर्श नहीं किया है। मन के चापत्य की वृद्धि के लिए धरुण्ड प्रत्याहार

पर बल देते हैं लेकिन स्वात्माराम नाद की ही इस कार्य में सर्वस्व स्वीकार करते हैं। यहाँ धरण्ड का वाक्य मन की संचारिक बुद्धों से विमुक्त होकर वात्म-वादा-त्कार की ओर उन्मुख करना रहा है जो प्रत्याहार साधना का मुख्य फल है। ध्यान के विषय में हठप्रदीपिका में कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है तथा प्रत्याहार ध्यान एवं समाधि का सन्निवेश स्वात्माराम योगीन्द्र ने नाद में ही कर दिया है। धरण्ड संहिता में ध्यान प्रकरण में तीन प्रकार के ध्यान- व्युत्पन्न, ज्योतिर्मय एवं सूक्ष्म का विवेक किया है। धरण्ड संहिता में ३० प्रकार की समाधियों का उल्लेख किया है- ० ध्यानयोग, नादयोग, रसानन्दयोग, लघुविधि योग, मन्त्र योग, राजयोग उपलब्ध है। हठप्रदीपिका में समाधि के प्रकारों का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु नाद की चार अवस्थाएँ- आरम्भ, धट, परिणय एवं निष्पत्ति का उल्लेख प्राप्त है।

धरण्ड संहिता की दार्शनिक पृष्ठभूमि का प्रबन्ध में संक्षिप्त विवेक किया है। धरण्ड संहिता में जो " धट " शब्द प्रयुक्त हुआ है यह पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द शरीर के लिए नहीं बल्कि उस व्यष्टि के लिए है जिसका एक स्कार्फ के रूप में निर्माण हुआ है। इसे हम " शरीर " भी कह सकते हैं। सूक्ष्म शरीर जो अपर जन्म का उत्तरदायी है इस प्रकार व्यष्टि की मनोमौलिक स्कार्फें शुभाशुभ कर्मों के विपाक के परिणामस्वरूप पुनर्जन्म का हेतु बनती है। धरण्ड इसी स्वतन्त्र ईश्वर की स्वीकार करते हैं जिसके द्वारा मनोमौलिक स्तर में संशोधन जन्म मरण की शाश्वत चक्रवर्तिता चिह्नित होती है।

धट शब्द का वाक्य शब्द शोधन ही नहीं बल्कि मनोमौलिक स्कार्फ का संयमन भी ग्राह्य है। धट शब्द के अन्तर्गत धरण्ड सात प्रक्रियाएँ- शोधन, दृढ़ता, स्वीय, धैर्य, तापस, प्रत्यक्षा एवं निर्लिप्त मानते हैं। उपर्युक्त प्रक्रियाएँ क्रमशः षट्कर्म वासन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि से प्राप्त होती हैं। धरण्ड ब्रह्म की उक्ता की सर्वव्यापक स्वीकार करते हैं।

हठप्रदीप्ति हठयोग का मूलम किन्तु सर्वज्ञ
 प्राण्य प्रक्रियाओं का ग्रन्थ है । किसी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग नहीं
 है । हठा, फिंगला एवं पुष्पा की दार्शनिक शब्दावली है के स्थान पर गंगा
 यमुना एवं वातरण्डा जैसे साधारण शब्दों का उपयोग किया है । सेवरी मुद्रा
 वर्णन में गी मांस , वातरण्डा शब्दों का उपयोग जित्वा तथा कृत के लिए
 व्यावहारिक है जिनका भाव समझना जन सामान्य को पहेल के पारे है । इन शब्दों
 के प्रयोग से साधक प्रमित हो जाता है। स्वात्माराम ने हठप्रदीप्ति के प्रारम्भ
 में ही हठयोग ग्रन्थ की रचना के उद्देश्य की निरूपित कर दिया है । स्वात्मा-
 राम के अनुसार मनुष्य कथान्य प्रकार के मर्त्य के गहन बन्धकार से बाधित है ।
 इन बन्धकार को दूर करने के लिए हठप्रदीप्ति की रचना करती है। स्वात्माराम
 का समिप्राय समग्र संसार के दुःख को दूर करने के लिए हठयोग के मार्ग के बर्णन
 है । उनके मत में हठयोग ही ऐसी विधा है जिसकी शरण में जाने से मनुष्य
 की मुक्ति हो सकती है ।

अस्तुत प्रबन्ध में हठयोग साधना के लिए विस्तृत
 शक्तियों का उल्लेख किया है जिसके अनुसार साधक अपनी दिनचर्या बनाकर जीवन के
 चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। साधना के शक्तियों के अन्तर्गत प्रारम्भ में हठयोग
 का कार्य एवं परिभाषा पर प्रकाश डाला गया है जिसमें उल्लेख किया है कि हठयोग
 का कार्य वह योग जो हठ- बलात् पूर्वक किया जाय अर्थात् पुद्गल के साथ किया जाय ।
 परन्तु संसार भर में जिने भी योग प्रवर्तित हैं सभी में हठ- पुद्गल का सामना करना
 पड़ेगा परन्तु हठयोग के अनुशीलन में विशेष श्रम की आवश्यकता होगी । ' वाच-
 स्फुट्यम् ' के अनुसार हठयोग का कार्य- हठन बलात्कारिण योगः । ' हठप्रदी-
 प्राणायामादि क्रियाओं के बन्धन से चित्तवृत्ति का निरोध करके परमात्मा के
 साक्षात्कार करने को ' हठयोग ' कहते हैं ।

सामान्यतः योगशास्त्रों में हठयोग की ' प्राण-

निरोध साधना 'कहा है। हठयोग के ग्रन्थ 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' में 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र अर्थात् सूर्य और चन्द्र के योग को ही हठ योग कहा है। हठरत्नावली में भी इसी प्रकार का अर्थ कहकर हठयोग को सूर्य चन्द्र के समायोग को हठयोग कहा है। इसके अतिरिक्त प्राण, सूर्य, दक्षिण, यमुना, पिंगला, तथा रजस आदि शब्दों को 'ह' के अर्थ में प्रयोग किया गया है। अपान, चन्द्र, वाम, गंगा, हठा तथा रेतस शब्दों का प्रयोग 'ठ' के अर्थ में प्राप्त होता है जिनका उल्लेख प्रबन्ध में किया गया है। हठयोग में प्राण और अपान के समायोग अर्थात् प्राणायाम से वायु निरोध करना ही 'हठयोग' है। अर्थात् यही अर्थ मूल अर्थ के सन्निकट है। हठयोगियों ने सूर्य चन्द्र का स्थान भी मनुष्य के शरीर में निर्धारित किया है। विपरीतकर्णी छुड़ा में नामि- सूर्य को ऊपर एवं तालु चन्द्र को नीचे करके छुड़ा का अभ्यास करने का निर्देश है। योगीन्द्र गोरक्षानाथ ने सूर्य का स्थान नामि और चन्द्र का स्थान तालु मूल (सहस्रार) में स्वीकार करते हुए सहस्रार से टपकते जल को नामि केन्द्र में प्रसृत होने से बचाने के लिए 'विपरीत-कर्णी' 'लेवरी' 'छुड़ाओं' का अनुसन्धान किया है। इस जल को पान करके योगी बजर- बजर हो जाता है और जीवन भर जीवन बना रहता है। ऐसा शास्त्रों में उक्त मिलता है।

हठयोग साधना के लिए मानव शरीर स्थित तीन शक्तियों के साधने का उक्त दिया गया है शुद्ध, वायु और प्राण। जब तक इनमें स्थिरता नहीं आयेगी तब तक हठयोग साधना सम्भव नहीं है। अस्तु, हठयोग साधना से पूर्व उपर्युक्त शक्तियों का संगठन करना परमावश्यक है।

हठयोग का मनुष्य जीवन में क्या महत्त्व है ?

इसके विषय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। दुःख निवृत्ति तथा आनन्द की उपलब्धि, ये दो दार्शनिक लक्ष्य सर्वत्र सुपरिचित हैं, किन्तु हठयोग द्वारा पूर्णत्व की प्राप्ति को ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य मानना सुसंगत प्रतीत होता है।

मनुष्य का जन्म : कारण जन्म जन्मान्तर के सुभासुम कर्मों के कारण मल- विक्षेप- वावरण से बाधपूर्ण है। इन समस्त बन्धनों के कारण उसे स्वाधीनता नहीं मिल पाती है। जिसके कारण पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं होती है। हठयोग के द्वारा सर्वप्रथम शरीर की स्थिरत्त्व प्राप्ति कराना है तथा साधना-रत रहकर पूर्णत्व की प्राप्ति कराना मुख्य उद्देश्य है।

युवकों के लिए योग की आवश्यकता पर बल देते हुए उल्लेख है कि यद्यपि भौतिक, सामाजिक, वार्षिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों में भिन्नता रही हुए मानव का जीवन भिन्न ही रहता है किन्तु जीवन की बाधापूर्ण समस्याएँ एक समान ही रहती हैं। बाज के युग में शरीर एवं मन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मनुष्य तड़फ रहा है, अभी तक उसकी अभी फिनारा टाव नहीं लगा है, किन्तु वह लम्बी दौड़ लगा रहा है। योग की क्रियाओं के अभ्यास पर वैज्ञानिक शोध-शालाओं में परीक्षण के उपरान्त यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि योग मन एवं शरीर के मध्य समुत्तम पैदा करके सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए पूर्णरूपेण काम बनाता है। इसलिए युवक एवं युवतियाँ शारीरिक शक्ति के बलाबल के आधार पर योगिक क्रियाएँ करेंगी तो दिन पर दिन उनकी कार्य-क्षमता बढ़ती चली जायेगी तथा रक्त के ज्वर रोगों से लड़ने के लिए प्रतिरोधक शक्ति पैदा होगी। एक बीछा युवक के लिए समयबद्ध कार्यक्रम, आसन, प्राणायाम करते समय क्या क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए एवं योगाभ्यास का समय एवं वातनों का द्रम, बालक-बालिकाओं के लिए वर्जित-वर्जित योग, बालक बालिकाओं के अभ्यास हेतु आसन, मुद्रा, बन्ध तथा प्राणायामों की द्रमबद्ध एवं समयबद्ध तालिका एवं बालक बालिकाओं के लिए विशिष्ट क्षेत्रों का भी उल्लेख है।

बालक एवं बालिकाओं के लिए उक्ति है कि

तत्त्वज्ञान में तब स्वं जन सम्पर्क का त्याग करना चाहिए इसके योग की सिद्धि शीघ्र होती है। यदि कोई साधक शास्त्र में उल्लेख की गई विधियों का पाठ मात्र करे और समझे कि योग सिद्धि होगई तो इस तरह से सिद्धि नहीं हो सकती। सिद्धि प्राप्ति के लिए तो एक मात्र कारण क्रिया में तन्मयता होनी चाहिए। यह बात ध्रुव सत्य है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में हठयोग में षट्कर्म-विधान तथा इन क्रियाओं से शरीर के ऊपर क्या क्या प्रभाव पड़ता है, का विवेक किया गया है। योगाचार्यों ने व्याधि को सर्वप्रमुख विघ्न स्वीकार किया है तथा इन समस्त शारीरिक विघ्नों को हटाने के लिए षट् कर्मों का अनुसन्धान कर उन्हें आवश्यकतानुसार अपनाने पर बल दिया है। इन क्रियाओं को नियमित रूप से करने से शरीर के अन्तर्गत अर्थात् स्व नवीनत्वनी रहती है और साधक साधना में लगा रहता है। इन निर्विष्ट क्रियाओं से मांशिकी संस्थान, रक्त संस्थान, श्वास संस्थान, पाचन संस्थान, मूत्र संस्थान एवं नाड़ी संस्थान व शरीरगत समस्त ग्रन्थियों के दोषों का निष्कासन होकर पूर्णतः फट शुद्धि हो जाती है और शरीर वारोग्यता को प्राप्त होता है। यह षट् कर्मों का मुख्य कार्य है।

षट् कर्मों के अन्तर्गत धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नीलि एवं कपाल माति को घेरण्ड एवं स्वात्माराम दोनों ही ग्रन्थकारों ने एक मंत्र से स्वीकार किया है। किन्तु घेरण्ड ने धौति प्रकरण में अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृदधौति और मूल शोधन क्रियाओं को अपनाया है जबकि स्वात्माराम मात्र एक प्रकार की वातीधौति को ही अंगीकार करके श्वास संस्थान को स्वस्थ रखने पर बल देते हैं। वस्ति प्रकरण में घेरण्ड ने जल वस्ति एवं शुष्क वस्तियों का उल्लेख किया है जबकि स्वात्माराम ने जल वस्ति का ही वर्णन किया है। दोनों ग्रन्थकारों ने वस्ति कर्म से गुवा प्रेश को शुद्ध रखने के लिए संस्तुति की है। दोनों का मत है कि इस क्रिया से नाभि से नीचे के प्रेश के रोग नहीं होते हैं और अपान

वायु का संवर्ण ठीक रहकर वामाशय एवं वातों की क्रिया नियन्त्रित रहती है तथा मर्दों का निष्क्रमण समय पर होता रहता है। नेत्रि एवं नौसि कर्म के अपनाने के लिए दोनों ग्रन्थकार एक मत हैं और दोनों ने एक ही प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। नेत्रि के व्यास से स्कन्ध से ऊपर के कर्णों के समस्त रोग दूर होकर बाल, कान, दाँत, नाक जोवन पर ठीक प्रकार कार्य करते रहते हैं। नौसि के व्यास से शरीर के अन्तर वात, पित्त एवं कफ को समावस्था करी रहती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जठर की प्रक्रिया भी नेत्रों की ठीक रहने के लिए एक ही प्रकार की व्यक्त की है। दोनों का मत है कि जठर से पित्त स्थाप्य करने में सहायता मिलती है। घेरण्ड ने कपात्मजि के तीन प्रकार- चूडक्रम, वातक्रम तथा शीतक्रम का उल्लेख किया है जबकि स्वात्मारामने एक ही प्रकार का वर्णन किया है। उन जठरकर्मों के अतिरिक्त स्वात्माराम ने धीति प्रसंग में ही मकरणी नाम की क्रिया का उल्लेख किया है।

घेरण्ड के मत से शरीर शुद्धि की लिए सप्त साधनों को अपनाना चाहिए इसलिए उन्होंने धीतियों का विस्तृत वर्णन एवं उनकी होने वाले शारीरिक लक्षणों की पर्याप्त विवेक प्रस्तुत किया है जिससे साधक को किसी प्रकार का रोग प्राप्ति न कर सके तथा साधना समयकद चल्ती रहे। स्वात्माराम ने जठर कर्मों का वर्णन सुनिर्गोक्षितनियन्त्रित करते हुए क्रियाओं को हुंकर नहीं होने दिया है। घेरण्ड की जठरकर्म प्रक्रिया कठिन एवं विस्तृत होने के परिणामस्वरूप सर्वत्र प्राप्य नहीं हो पायी है।

वासन प्रक्रिया निश्चय ही भारतवर्ष के योगियों की प्राचीनतम व्यायाम पद्धति एवं साधना को चिह्नित है। वासनों के यथोचित व्यास से ही शरीर की स्वस्थ, सुधीन एवं साधना के सन्निवृत्त लाया जा सकता है। शरीरगत नादियों की सुदृढ़ता में ही वासनों का उपचारात्मक रहस्य निहित हुआ है।

वासनों के नियमित अभ्यास से पावन संस्थान को स्वस्थ, मल निष्कासन प्रणाली को सक्रिय, शरीर की सम्पूर्ण विद्युत्तियों को दूर करते हुए सन्धियों, पेशियों एवं ग्रन्थियों के कार्य क्षेत्र को अधिक सबल एवं नियमित बनाया जा सकता है। वासन क्रियाओं से कभी भी विभिन्न प्रकार की गति होने के परिणामस्वरूप मल पेशियों फैसली और छिड़की हैं तथा अधिक सक्रिय एवं कार्य-क्षम बन जाती हैं। वैज्ञानिक परीक्षाओं से वासनों के नियमित अभ्यास से शरीर पर तीन मुख्य प्रभाव होते हैं :- १- शरीर के आन्तरिक भागों में स्थित ग्रन्थियों का पोषण ठीक प्रकार बना रहना, २- मल सूत्र निष्कर्षण क्रिया नियमित, ३- नाड़ी संस्थान का स्वस्थ बना रहना।

शरीर स्वसंचालित प्रणाली के समान है। निरन्तर चलते रहने से मसलों के बड़े और छोटे २ सभी पुर्ण धिले हैं, इस विषाद को यौगिक वासनों से दूर किया जा सकता है। वासन अभ्यास के समय रक्त प्रपण क्रिया तीव्र होने के कारण शरीर में हृदय रक्त के साथ साथ प्रोथीन (प्रोटीन) स्नेह (फैट्स) चीनी युक्त पदार्थ (सुगर्भ) लवण (साइट्स) तथा जीवाण (वायसीजन) देहाणुओं तक पहुँचता है जिसके कारण हमारा शरीर वायोजन स्वस्थ बना रहता है।

कभी हठयोग शास्त्री न्यूनाधिक रूप से वासनों की योग का कीमती स्वीकार करते हैं। स्वात्माराम ने वासनों की हठयोग का प्रथम की मानकर छठ प्रदीपिका में पन्द्रह (१५) वासनों का उल्लेख किया है। धरण्ड ने कत्तोस (२२) वासनों का उल्लेख संख्या के दूसरी उपकी में किया है। स्वात्माराम के अनुसार वासनान्यास से स्थिरता, आरोग्य एवं कीमती लाभ की उपलब्धि होती है किन्तु धरण्ड के मत से वासनों से दूधता जाती है।

वासनों की संख्या निर्धारित करने में कभी तक कोई भी दो हठयोगी समान मत के नहीं हुए हैं। स्वात्माराम ने अपने वासनों

के उत्प्रेक्ष में लिखा है कि वशिष्ठ आदि मुनियों और मत्स्येन्द्र आदि योगियों ने जिन वासनों को ब्रह्मोदारा है उनमें से कुछ प्रसृत वासनों का उत्प्रेक्ष कर रखा है, साथ ही यह भी उत्प्रेक्ष है कि शिव जी चौरासी वासनों का कथन करते हैं उनमें से चार पिंड, पद्म, सिंह और भृङ्गासनों का बार भूत बताया है जबकि धर्मरुद्र ने बकी बत्तीस वासनों के वर्णन में किसी की संख्या अथवा निःसार नहीं बताया है ।

प्रसृत जीव प्रबन्ध में वासनों की जानकारी के लिए वासनों का २ भागों में वर्गीकरण किया है- (१) ज्ञान उपयोगी वासन । इन वासनों के अन्तर्गत पद्मासन, पिंडासन, स्वस्तिक, एवं सम वासन को रखा गया है । २- शरीर वारोग्य हेतु वासन । इन वासनों के अन्तर्गत ४० प्र० एवं ४० सं० के विशेषण सभी वासनों को रखा गया है। इन दोनों ही प्रकार के वासनों का उत्प्रेक्ष विस्तार करते हुए उनके होने वाले शारीरिक लाभों का उत्प्रेक्ष किया गया है। इन वासनों की प्रक्रिया एवं लाभों के वर्णन में अर्द्धवृद्ध, हार्वे डे आदि पाश्चात्य लेखकों की राय को भी सम्मिलित करके प्रबन्ध को वाधुनिक रूप दिया है।

वासन प्रकरण में ही श्वासन की प्रक्रिया तथा श्वासन से शारीरिक विकास, श्वासन से मानसिक शिथिलीकरण एवं श्वासन से वास्तविक विमान्ति का विस्तृत उत्प्रेक्ष करते हुए लिखा है- " मनुष्य चाहे किता ही देखे या मानसिक शिथिलीकरण क्यों न करे, किन्तु मानसिक चिन्ताओं और मनोव्यवहारों के लिए भी पोषा नहीं छोड़ती । जब तक कि वास्तविक शिथिलीकरण नहीं किया जाता । योगीजन जानते हैं कि समग्र शान्ति सुख शक्ति का जागर ब्रह्मा शुद्ध स्वरूप है न कि शरीर या मन के लिए इन दोनों से बनी 'बर्त' की छटाकर नित्यानन्द का अनुभव करते हैं । मानव मन के जंगल में रहकर ही नाना प्रकार के कटु अनुभवों का शिकार बना रहता है । अतः उसे अनुभव करना चाहिए

कि ' मैं शुद्ध ज्ञान हूँ ' । इस प्रकार की अनुभूति मात्र वास्तविक शिथिलीकरण की शुद्ध प्रक्रिया है । अतः हमको यदि वासनों के बन्धन से वास्तविक लाभ प्राप्त करना है तो उपर्युक्त प्रक्रिया से ही मिल सकता है।

दैनिक जीवन में उषा: से रात्रि विराम तक वर्तमान उपासना ही जहाँ अन्य कार्य सम्पादन सभी में मुख्य भिन्न २ मुद्राओं का प्रयोग करता है । चित्रकार जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति के जगत् प्रत्यक्ष विशेष की मुद्रा मात्र से उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकट करता है, वही तरह विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार की मुद्राएं निकलती हैं । वही प्रकार हठयोग साधना पद्धति के अन्तर्गत जो कुछ मुद्राओं का अनुसन्धान करके साधना की सिद्धि के लिए विशेष बल दिया है।

मुद्राओं के स्वरूप एवं कार्य का उत्प्रेषण करते हुए अभिव्यक्ति एवं शारीरिक मानसिक क्रिया कलापों की साधिकाएं के रूप में स्वीकार करना है । शरीर गति विधियों के अनुसार पंच तत्त्वों के आधार पर इसकी क्रियाओं का विश्लेषण करते हैं तो मुद्रा वायु तत्त्व का प्रतीक है । वायु तत्त्व का कार्य है प्रकृति के अन्दर गति देना । हमारे शरीर का स्नायु जाल भी वायु तत्त्व का भौतिक स्वरूप है और इसी के कारण ही ये सक्रिय हैं । मुद्रा वाह्य बाह्यता है जो प्रकृति के अदृश्य गुणात्मक रूप को प्रकट करती है। वाह्य और वाच्यन्तर को एक रूप करके दृश्य रूप देना ही मुद्रा स्थिति है ।

हठयोग की जो कुछ मुद्राएं ऐसी हैं जिनका प्रभाव नैसर्गिक रूप से शरीर एवं मनःस्थिति पर पड़ता है जिससे मन के उद्वेग और तनावों में शिथिलता आकर शारीरिक और मानसिक विकृतियां दूर होती हैं तथा साधना में स्थिरता आती है। घेरण्ड संहिता में भी इसी तरह का मत व्यक्त किया है । मुद्रा एवं बन्धों से वाच्यतात्मक उपलब्धि के साथ भौतिक स्तर पर इनके बन्धन

की कम कार्यक्षमता नहीं है। शरीर का तात्मान नियमित रहकर भावनात्मक क्रिया एवं उद्देग उत्पुल्लि करते हुए शरीर की प्राण शक्ति की संवर्ण क्रियाओं की वृद्ध योगदान देती है।

मुद्राओं की संख्या निर्धारण के विषय में भी स्वात्माराम एवं धरंज कणि एक मत नहीं है। स्वात्माराम ने छठ प्रहोफिका में महामुद्रा, महाबन्ध, महाविध, त्वरी, उद्धियानबन्ध, मूलबन्ध, लान्धबन्ध, विपरीतकर्णी, वज्रीली एवं शक्ति वालिनी वादि वस मुद्राओं का वर्णन किया है, किन्तु इन मुद्राओं के अतिरिक्त शाम्भवी, उन्मनी तथा वज्रीली के अन्तर्गत सखीली व अमरीली का भी उल्लेख प्राप्त है। धरंज संख्या के तृतीय उपदेश में पञ्चीस मुद्राओं का उल्लेख है जिनके अन्तर्गत पंचधारणारं - पार्श्वी, बाम्भरी, बाग्नीयी, बाग्नीय एवं आकाली का वर्णन भी प्राप्त होता है।

मुद्रा प्रकरण में इन मुद्राओं के रत्न-पिटारी तथा जाठ दिव्य ऐश्वर्यों की प्रशान करने वाली बताया है। स्वात्माराम ने उल्लेख किया है यह सभी छिहों की प्रिय तथा देवताओं की दुर्लभ है। साधना एवं षट् शुद्धि के अन्तर्गत मुद्रा की भी दो भागों में विभक्त किया है - (१) ज्यानी-पयोगी मुद्रा- त्वरी शाम्भवी तथा उन्मनी (२) षट् शुद्धि मुद्राएं- महा, नभी, उद्धियान, बालन्धर, मूल बन्ध, विपरीतकर्णी, योनि, वज्रीली, शक्ति वालिनी, तद्गो, माहूकी, पंच धारणारं- वशिनी, पार्श्वी, काकी, मार्तगिनी एवं सुवर्गिनी।

मुद्राओं की विशेषता के सम्बन्ध में धरंज का मत है कि मुद्रा जरा-मृत्तु नाशक देव- दुर्लभ तथा गोपनीय है तथा इन्हें प्रत्यनपूर्वक गुप्त रहे। मुद्रा बन्ध्यापी की कास, खास, प्लीहा, रसिष्वा वादि बीस (२०) प्रकार के रोग नहीं होते। धरंज ने मुद्राओं की प्रशंसा में बताया है कि इनके

बैभ्यासी की अग्नि, जल, वायु आदि से किसी प्रकार का भय नहीं होगा । अधिक बड़ा कई मुद्राओं के समान अन्य साधन सिद्धि देने वाला भ्रमण्डल पर नहीं है ।

ह०प्र० एवं धरुण्ड संहिता में श्वरी, शम्भरी, उन्मनी, योनि, वज्रोली तथा शक्तिवालिनी मुद्राओं को कुण्डली उद्बोधक उल्लेख है ।

प्रत्याहार का योगशास्त्रों में स्थान तथा प्रत्याहार के लक्षणों का उल्लेख संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया है। फांजलि के अनुसार इन्द्रियों को अपने विषयों का त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार है । फांजलि के पश्चिमी योगशास्त्रकारों ने भी फांजलि के अनुसार ही प्रत्याहार पर अपने विचार व्यक्त किये हैं । प्रत्याहार की सिद्धि के विषय में स्वामी हरिहरानन्द बारणसी का मत है कि बाह्य विषय पर ध्यान न देना । मानस भाव लेकर रहना । अस्ति होकर चक्षु आदि के द्वारा विषय ग्रहण का अभ्यास न होना पर प्रत्याहार नहीं होता है। जो बाह्य विषय को सम्यक् लक्ष्य (स्वभावतः) नहीं कर सके उनको प्रत्याहार सुकर जाता है । उन्मत्त का भी एक प्रकार का प्रत्याहार होता है। मृगी रोगी (हिस्टेरिक) को भी एक प्रकार का प्रत्याहार होता है, जो सम्पीडन आदेश (हिप्नोटिक सजेशन) के वशीभूत है उनको भी मली भांति प्रत्याहार होता है, नमक को शक्कर कह देने से वे शक्कर का स्वाद पाते हैं ।

इन सब प्रत्याहारों से योग के प्रत्याहार की विशेषता है। योगांग प्रत्याहार सम्पूर्ण स्वेच्छाधीन है । योगी जब यह इच्छा करता है कि मैं यह नहीं जानूँगा तो तत्काल ही उसे ज्ञानेन्द्रिय शक्ति का रोध हो जाता है। प्राणायाम इस प्रकार के रोध का सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यम- नियम आदि के अभ्यास के साथ ही प्रत्याहार होने पर ही वह शैत्यकर होता

है नहीं तो दृष्ट-चित्त व्यक्तियों का दुष्प्रयत्न में चास्ति प्रत्याहार अभिस्तर दीर्घ-युक्त होता है। चित्त निरोध होने पर इन्द्रिय का निरोध साधन रूप प्रत्याहार ही योगियों को उपादेय है।

वस्तुतः प्रत्याहार योग की उस प्रक्रिया ज्ञाना इन्द्रिय साधना का नाम है जिससे इन्द्रियों का निग्रह होकर सभी इन्द्रियों अपने-अपने विषयों से विमुक्त हो जाती हैं और अन्तर्मुख होकर चित्त के सादृश्य रूप में आत्म तत्त्व की ओर अभिमुख करती हुई समाधि लाभ करती हैं जो योगी को अभीष्ट है। प्रत्याहार योग साधना में एक आवश्यक अंग है इसमें दो क्त नहीं।

प्राणायाम विधान- प्राणियों के जीवन को धारण करने वाले स्थूल माण के अतिरिक्त एक सूक्ष्म प्राण भी है जो जीवात्मा तथा चित्त के संयोग से प्रादुर्भूत होकर कारण और सूक्ष्म शरीर को जीवित रखता है। इन दोनों के जीवित रहने से स्थूल शरीर भी जीवित रहता है। इस प्राण-तत्त्व का महाभूत वायु से सूक्ष्म होते हुए भी महाभूत वायु के साथ सम्बन्ध बना रहता है। जब किसी प्राणी के प्राणवायु के जाने जाने के समस्त मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं तो उसके शरीर की संचालन क्रिया समाप्त हो जाती है। दर्शनशास्त्रियों के अनुसार यह समस्त जगत् और जो कुछ भी इसके अन्दर है वह सब वाकाश और प्राण तत्त्वों से बना है। यह प्राण इस विश्व की सर्व समर्थ एवं सर्व व्यापिनी अभिव्यंजिका शक्ति है। अतः प्राण चित्त की मानसिक तथा शारीरिक सभी प्रकार की शक्तियों की समष्टि है। जो नियम समष्टि पर लागू होते हैं वही व्यष्टि पर भी लागू है। अतः प्राण ही प्रत्येक जीव की जीवनी शक्ति है। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, ब्राह्मण्यकों, उपनिषदों तथा पुराणों में प्राण के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भी वेदों, उपनिषदों के माध्यम से प्राण के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। मिस्टर हर्बर्ट स्पेंसर ने भी 'योग' नामक पुस्तक में प्राण के स्वरूप का उल्लेख किया है।

प्राणायाम के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उल्लेख है कि स्वास-प्रस्वास की गति को रोकना कृत्रिम अवरोध पैदा करके अनुशासित करते हुए चित्त के अधीन करने की प्रक्रिया को प्राणायाम कहते हैं। पराबलि ने भी स्वास-प्रस्वास की गति को रोकने को प्राणायाम कहा है। इसी प्रकार की परिभाषा हठयोग उपनिषदों और ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती है। प्राणायाम साधना की अनिवार्यता के विषय में महाराज मनु, भगवान् भगवान् दत्तात्रेय तथा अन्य उपनिषदकारों ने भी योग साधना हेतु प्रबल मत से संस्तुति की है जिसका सूक्ष्म विवेक ग्रन्थ में किया गया है। धेरण्ड संहिता में प्राणायाम साधना करने वाले को देवतुल्य कहा है तथा इससे अंग साधन की प्राप्ति होती है। स्वात्माराम की प्राणायाम से स्थाणुत्त्व की प्राप्ति होती है तथा चल चित्त भी निश्चल हो जाता है। तात्पर्य यह है कि धेरण्ड एवं स्वात्माराम दोनों ने ही प्राणायाम साधना को हठयोग का आवश्यक अंग स्वीकार किया है।

शुष्क प्राणायामों के अभ्यास से पूर्व हठप्रदीपिका तथा धेरण्ड संहिता में नाड़ी-शोधन करने का विधान उपलब्ध होता है। ह० प्र० में उल्लेख है कि जिस तरह श्वेतः श्वेतः सिंह, हाथी और व्याघ्र वश में हो जाते हैं, उसी तरह नाड़ी-शोधन के अभ्यास से प्राण वायु पर वशित्व प्राप्त होता है। युक्ति से किये गये नाड़ी शोधन अभ्यास से समस्त प्रकार के रोग शून्य हो जाते हैं। प्राण वायु सुषुम्ना नाड़ी के मूल को भेद कर मूल पूर्वक प्रविष्ट करती है। धेरण्ड कण्ठ ने अपने शिष्य चण्डिकापात्री के प्रश्न के उत्तर में कहा है कि मूल से मरी नाड़ियों में प्राणवायु का प्रवाह नहीं होता है। इसलिए प्राणायाम किस प्रकार किया जा सकता है और बिना प्राणायाम के तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए सर्वप्रथम नाड़ी शोधन करना आवश्यक है। धेरण्ड ने 'सन्तु' तथा 'निर्मु' नाड़ी शोधन प्रक्रिया का उल्लेख किया है।

घरुण्ड तथा स्वात्माराम ने अपनी अपनी ग्रन्थों में बाठ बाठ कुम्भों का उल्लेख किया है, किन्तु दोनों के कुम्भों के नामों में अन्तर है ।

१- घरुण्ड संज्ञिता में प्रसूत प्राणायाम-
सहित (सगर्भ, निगर्भ) पुर्योदयी, शीतली, उज्ज्यायी, मत्स्वा, प्रामरी, मुञ्जरी तथा केवली ।

२- उठ प्रदीपिका में प्रसूत प्राणायाम- पुर्यो-
दयी, शीतली, प्रामरी, उज्ज्यायी, शीत्कारी, मत्स्वा, मुञ्जरी तथा प्लाविनी ।

दोनों ग्रन्थों में इः कुम्भक प्राणायाम समान रूप से उपलब्ध होते हैं । शीत्कारी तथा प्लाविनी का घ० सं० में कोई उल्लेख नहीं है तथा सहित तथा केवली का घ० प्र० में वर्णन उपलब्ध नहीं है ।

ध्यान प्रकरण- साधना के क्षेत्र में ' ध्यान ' एक व्यापक शब्द है। संसार में भगवत्वादात्कार हेतु जितने प्रकार के मार्ग हैं उनमें ध्यान करने की प्रक्रिया भी भिन्न भिन्न है । फजिलि की ध्यान की परिभाषा का उल्लेख करते हुए साधक का निरन्तर प्रसाह बना है । इसके लक्षणों का भी उल्लेख किया है । ध्यानावस्था में चित्त के समस्त प्रसाह की उष्मा निरन्तर प्रस-
रित होने वाली तेज धारा से दी गई है । शंकराचार्य के ' सर्व-वेदान्त-सार-संग्रह ' के अन्तर्गत प्रसूत ध्यान के लक्षणों का भी वर्णन किया गया है ।

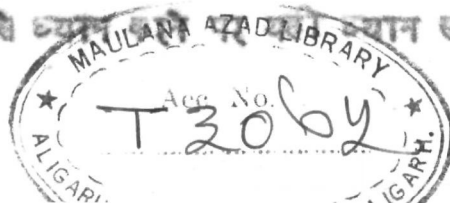
मनुष्य की जिस वस्तु को प्राप्त करना है उसको चित्त से स्वाभाविक ही बार बार चिन्तन करना चाहिए, इसी चित्त में ध्येय फलार्थ की धारणा दृढ़ हो जाती है। यही धारणा वाग्वचन कर चित्त-वृत्तियों के सर्वथा उक्त ध्येयाकार बन जाने पर ध्यान के रूप में परिणत हो जाती है । जितने काल तक वृत्तियाँ ध्येयाकार रहती हैं, उतने काल की स्थिति को ध्यान

कहा जाता है। त्रिशिख्रातणोपनिषद् की ध्यान, दर्शनीपनिषद् की सविशेष-
ब्रह्म ध्यान व निर्विशेष ब्रह्म ध्यान ध्यानविन्दु उपनिषद् की ध्यान, योग तत्त्वो-
पनिषद् वादि की ध्यान प्रक्रियाओं का उत्कृष्ट प्रस्तुत किया गया है। उनके अति-
रिक्त कंकाल मालिनी-तन्त्र तथा विश्वसार-तन्त्र की ध्यान प्रक्रियाओं का भी वर्णन
किया है। षेरण्ड संहिता की स्थूल ध्यान, तथा स्थूल ध्यान में प्रकारान्तर ध्यान,
ज्योतिर्मय तथा सूक्ष्म ध्यान प्रक्रियाओं का उत्कृष्ट किया गया है।

शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास में कुण्डलिनी का ध्यान
करें। इसे ही सूक्ष्म ध्यान की परिभाषा कहा है। षेरण्ड के अनुसार इस सूक्ष्म
ध्यान को गोपनीय रखा बाहिर क्योंकि यह देवताओं को भी दुर्लभ है। इससे
वात्म-साक्षात्कार की सिद्धि होती है।

स्वात्माराम ने ४० प्र० में मन की चंचलता के
साथ साथ रस- पारद के गुणों का भी विवेक किया है। उनके मत में रस और
मन दोनों ही चंचल होते हैं। यदि दोनों बद्ध हो जायें तो इस भ्रूलत पर क्या
सिद्ध नहीं हो सकता? मूर्च्छित- मस्मीभूत पारद व्याधियों का नाश करने वाला,
मारण किया हुआ पारा जीवन प्रदान करने वाला होता है। पारद एवं वायु
बद्ध होने पर लेवरी- आकाश गमन और साधक को प्राणायाम से तत्त्व साक्षा-
त्कार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त आर्युर्वेद में उपलब्ध पारद
गुण दोनों का भी उत्कृष्ट प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है।

ध्याता बिना ^{के ध्यान} ध्येय करने में सर्वथा असमर्थ रहता
है, इसलिए उसे समाधि तक पहुँचने के लिए व ध्यान की सफलता के लिए स्थूल कथना
सूक्ष्म ध्येय बनाना परमावश्यक है। जब शरीर प्राण और मन पर संयम करने पर
चित्त वृत्तियों का सम्यक् प्रकार निरोध होने लगता है। इस प्रकार कुछ काल ध्येय
पर एक तान रूप से ध्यान करने पर ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाता है



जो ध्यान की चरमोपलब्धि है ।

समाधि एवं नाद प्रकरण- समस्त चराचर जगत् में ईश्वर की सत्ता दूध में मक्खन के समान सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु जैन ब्रह्म के सर्वांश में सर्वदा वाह्य प्रपंच नहीं है। दूध के जण्डु जण्डु में मक्खन है किन्तु जब तक दूध मथा नहीं जायेगा तब तक उसमें मक्खन दृष्टिगोचर नहीं होगा । इसी प्रकार समाधि का वाज्य लिए बिना प्रत्यक् चैतन्य का साक्षात्कार नहीं होता है। इसलिए उस जैन ब्रह्म के साक्षात्कार हेतु समाधि की आवश्यकता है । ब्रह्म साक्षात्कार इन्द्रियों के निरोध से अर्थात् निरुद्ध मन के द्वारा समाधि अवस्था में होता है, उस समय इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं और वाह्य प्रपंच तिरोहित हो जाता है ।

समाधि की परिभाषा के विषय में उल्लेख किया है कि वह ध्यान जिसमें कर्ष मात्र का भान हो समाधि है । जब जीवात्मा को परमात्मा की एकता का ज्ञान उदय हो जाता है जब वह समाधिस्थ होता है । योगसिद्धोपनिषद्, जाम्बवत्सर्गोपनिषद्, भक्तिकोपनिषद्, तेजोविन्दुपनिषद् , वन्नपुर्णोपनिषद्, मैत्र्युपनिषद्, शाण्डिल्य उपनिषद् , वसुतनादोपनिषद्, योगब्रह्ममण्युपनिषद् , वराहोपनिषद् आदि में उल्लिखित समाधि लक्षणों को प्रबन्ध में विस्तार से वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त हठयोग ग्रन्थ गोरक्षापद्धति, हठरत्नावली, हठयोग चन्द्रिका, सिद्धसिद्धान्त पद्धति , गोरक्षास्तक, हठ प्रतीफिका की समाधि परिभाषाओं का स्वरूप भी सम्मिलित है। हठयोग के अतिरिक्त तान्त्रिक समाधि प्रक्रिया का भी उल्लेख प्रस्तुत है। ह०प्र० के समाधि पर्यायों का भी विवेकन किया है- राजयोग समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्त्व, लय तत्त्व, शून्या-शून्य, परमफल, वसन्तक, वीरत, निरालम्ब , निरंजन, जीवन्मुक्ति, सद्भा, तुर्या समाधि के पर्याय हैं । इसके अतिरिक्त समाधि में अवस्थित योगी की इन्द्रिय स्थिति

विषय - गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, सुखादि का ज्ञान नहीं रहता है। कठ्यौन के नाद के माध्यम से राजयोग सिद्धि का भी उल्लेख है।

वात्मज्ञान पर स्वात्माराम का कथन है कि जब तक सुषुम्ना नाड़ी (मध्यम मार्ग) से प्रस्राप्ति प्राण ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट नहीं हो जाता, स्थिर नहीं हो जाता जब तक उस तरह प्राणिक की स्थिर हो जाने पर बिन्दु बृद्ध नहीं हो जाता जब तक ध्यान स्वाभाविक ध्येयाकार वृत्ति से परमेश्वर साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक वात्म ज्ञान का कथन केवल दम्भ पूर्ण, मिथ्या, प्रलाप मात्र है। घेरण्ड स्मृति के अनुसार ३३ प्रकार की समाधियों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। ये समाधि ध्यान योग, नाद योग, रसानन्द योग, त्र्यसिद्धि योग, मक्ति योग एवं राजयोग है।

प्रसूत प्रबन्ध के अन्तर्गत नाद की उत्पत्ति, नाद के प्रकट होने का गुप्त साधन, बुध्दस्तिरी और नाद का स्वरूप, नाद के भेद तथा उपनिषदों में नाद के स्वरूप का उल्लेख प्रस्तुत है।

सं० प्र० में नाद का विविक्त तथा नादानुसन्धान की प्रक्रिया का उल्लेख प्रस्तुत है। मुक्ताक्ष से स्थित योगी शम्भरी मुद्रा द्वारा स्थित ह्काग्र कर वाक्लि कान से नाद का श्रवण करना चाहिए। दोनों कान, नेत्र नासारन्ध्रों और मुख की खुलियों से बन्द करे तथा प्राणायाम से बृद्ध होकर सुषुम्ना मार्ग में नाद बुनाई देता है। नाद की चार अवस्थाएँ- १- आरम्भावस्था २- घटावस्था ३- परिष्कावस्था ४- निष्पत्ति अवस्था का उल्लेख विस्तार से किया गया है। इसके अतिरिक्त उल्लेखित अवस्थाओं में नाद की ध्वनियों का भी वर्णन है। इन ध्वनियों के उल्लेख से शरीर में प्रचुर लाभ होगा तथा शरीर पर इन नाना नादों का क्या प्रभाव होगा और नाद से मन के निरोध की प्रक्रिया भी सम्पत्ति की गई है।

ध० सं० और ह० प्र० दोनों ग्रन्थों के अन्तिम
वर्ण में दर्शायी गयी जीवात्मा का परमात्मा में विलीनीकरण तथा सम्पूर्ण
जगत् की प्रलय स्वोकारोक्ति की भी शीघ्र प्रबन्ध के अन्तर्गत दर्शाया गया है ।

उपसंहार के अन्तर्गत हठयोग परम्परा के प्राचीन
प्रामाणिक स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए धरण्ड मुनि कृत धरण्ड संहिता एवं
स्वात्माराम की हठप्रदीपिका की समस्त क्रियाओं के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् जो
साम्य एवं भेद पाया है उसे निष्कर्ष के रूप में यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं ।

१- दोनों ग्रन्थों की प्राचीन परम्पराएं पूर्ण-
पूर्ण हैं ।

२- हठप्रदीपिका में हठयोग के चार उपदेश उप-
लब्ध हैं तथा हन्धों में समस्त क्रियाओं का उल्लेख किया है।

३- धरण्ड संहिता में सात उपदेश हैं तथा हठ-
योग के सप्त साधनों के लिए एक उपदेश में एक साधन का उल्लेख नियमित रूप से
किया है।

४- चाटुर्कर्मा का उल्लेख ध० सं० में प्रथम उपदेश
में तथा ह० प्र० में द्वितीय उपदेश में उपलब्ध है। धीति क्रिया के अन्तर्गत ह० प्र०
के अन्तर एक प्रकार की धीति का उल्लेख है जबकि धरण्ड संहिता में मुख्य चार
प्रकार की तथा उनके अलग अलग का है चार प्रकार की धीति तथा भुत रोधन
क्रिया प्रवृत्त है। ह० प्र० में ही एक प्रक्रिया गजकरणि का उल्लेख प्राप्त है । वस-
वर्ति की एवं शूलमस्ति की वस्तियों का उल्लेख ध० सं० में भी उपलब्ध है ।
नेति, नीति एवं चाटक की प्रक्रिया दोनों ग्रन्थों में समान है। कपात्माति की
प्रक्रिया का उल्लेख ध० सं० में तीन प्रकार से दिया है जबकि ह० प्र० में एक प्रकार
से ही प्राप्त है ।

व्यास से योगी जब तक चाहे जिन्दा रह सकता है तथा अपने शरीर को चौकल साल की स्वाभाविक अवस्था में रह सकता है। कठिन से कठिन रोग से मुक्ति पाना उसके लिए कोई कठिन कार्य नहीं है। आत्मा का अमरत्व तो भारतीय दर्शन में सर्वत्र स्वीकार किया है किन्तु शरीर को अमरत्व प्रदान करने की प्रक्रिया सौजने का श्रेय हठयोगियों को ही जाता है।

वाजकल हठयोग का प्रचार एवं शोधशालाओं में परीक्षा व अनुसन्धान दुनिया भर में हो रहे हैं। इसके लिए हठयोग की प्राचीन परम्परा को समझना आवश्यक है। कुछ परम्परा अलिखित भी हो सकती है जो गुरु परम्परा से चल रही हैं लेकिन इस अलिखित परम्परा का उपयोग लिखित परम्परा को यथार्थ रूप में समझने के लिए करना आवश्यक है अन्यथा अलिखित परम्परा के नाम पर किसी भी मगढन्त क्रिया को हठयोग की प्रक्रिया का नाम दिया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप शीर्षासिन सर्वांग वासन आदि। आधुनिक काल में योगासनों का प्रचार तेजी के साथ हो रहा है तथा लिखित परम्परा में कुछ ही वासनों के नाम उपलब्ध हैं जबकि अन्यान्य प्रकार की व्यायाम पद्धति को वासन बताकर लाभ उठाना उचित नहीं लगता।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में हठ प्रतीफिका एवं धारण संज्ञिता के अतिरिक्त अन्य हठ ग्रन्थों के मत भी अध्ययन में निर्दिष्ट करते हुए ग्रन्थ को सर्वसमावेशक अध्ययन का स्वरूप दिया गया है।

हठ प्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता का तुलनात्मक अध्ययन

A Comparative Study of Hath Pradipika and Gherand Samhita

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध



निर्देशक
डा० सी० टी० किन्घे
रीडर

प्रस्तुतकर्ता
रामेश्वर दयाल शर्मा
एम० ए०

संस्कृत-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

१९८४

✓
OCT 2002

7 OCT 1985



T 3075

IVth Copy.

Certificate

" Certified that the thesis entitled " A comparative Study of Matha Pradipika and Gherand Samhita " submitted by Mr. Rameshwar Dayal Sharma for the award of Ph.D. degree in Sanskrit is an original research work.

It is the result of Mr. Sharma's own efforts and it has been completed under my supervision. He has fulfilled all the conditions laid down in the Ordinances in this connection.

10.12.1984.

12/12/84
Department of Sanskrit
Aligarh Muslim University

C. T. Kenghe
(Dr. C.T. Kenghe)
Supervisor
Reader
Dept. of Sanskrit,
A.M.U. Aligarh.



प्राक्कथन

भारतीय दर्शनों के द्वारा मनीषियों ने तीन दुःखों-(बाध्यात्मिक, बाधैविक, बाधैविक) के ऐकान्तिक उपशान्ति के लिए अन्यान्य प्रकार के मार्ग प्रस्ताव किये। इस विमर्श के विराट् क्षेत्र में सभी का उच्च परमार्थ की प्राप्ति रहा है, किन्तु दुःखों के वस्तुमान की जब तक यह विवेक न हो कि इस बाध्यात्मिक शरीर के अन्तर्गत क्या तत्त्व है जो हमको दुःखों के दुःखों एवं ज्योति के समस्त की ओर है जाकर दुःखानुभव कर्मों का विपाक प्रदान कराता है, तब तक इन दुःखों को दूर करने एवं पुनः वास्तुतः न हो इसके लिए प्रयत्न ही क्या कर सकता है ? किन्तु ऋषि, मुनि एवं योगियों ने साधना के गहन अनुभव के अन्तःकरण अनुष्ठान के अन्तर्गत स्वीकार किया है कि मन ही दुःख-दुःख का मूल कारण है। मन की चंचलता उसका स्वाभाविक धर्म है। जब प्रश्न यह उठता है कि हमारे शरीर में जब मन ही सब कुछ है तो मनोविग्रह किस प्रकार किया जाय ? मन भौतिक है या अर्थात्मिक, सूक्ष्म है या स्थूल और शरीर में कहाँ पर अवस्थित है, इसे भी जानना होगा। महर्षि फासि ने 'योग-श्चित्तवृत्तिनिरोधः' कहकर मनोविग्रह के लिए योग साधना की ओर उचित किया है। वस्तुतः मन के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रश्नों को हल करने के लिए योग मार्ग ही नैय मार्ग है।

वाच के युग में जिन व्यक्तियों ने यह निश्चय कर लिया है कि शरीर और मन दोनों को एक साथ स्वस्थ रखने के लिए योग-विज्ञान ही ऐसी कुंजी है जिससे दोनों समस्या हल हो सकती हैं या जो योग-विज्ञान की प्रियाओं के कुछ सामान्यतः ही गये हैं वे भली भाँति जानते हैं कि

भौतिक और वाय्यात्मिक जीवन के मार्ग को दिखाने में योग-साधना ही पूर्ण-रूपेण काम है। जब अधिकांश लोगों के मन में है कि यह प्रम दूर रहता था रहा है कि योग वैसी कला साधु- संन्यासियों की ही कला नहीं है वस्तु यह तो सार्व-भौमिक विज्ञान है जो मनुष्य को नारकीय स्तर से उठाकर सु-चित्-ज्ञानन्द की ओर उन्मुख करती है।

मानव जीवन की ऐहिक- पार्थीविक समस्याओं पर प्रकाश डालकर चिर-उत्थ की लीज के लिए मार्ग प्रकट करना योग की अपनी प्रणाली है। मनुष्य वाय्यात्मिक मार्ग में अपना स्तर कहाँ निर्धारित करता है, वह निष्पत्ति का कार्य भी योग करता है। ज्ञाना ही नहीं वस्तु जीवन के समग्र स्तरों पर प्रकाश डालना योग की अपनी विशेषता है।

भारतीय वाङ्मय में अभी तक योग के ऐहान्तिक पक्ष को लेकर विद्वज्जनों ने अपनी अपनी विचारों को प्रकट किया है। योग कहा है, ज्ञाना विज्ञान किंवा कला और विज्ञान दोनों ही हैं। इस पर सभी एक मत नहीं है। योग-साधना के प्रायोगिक पक्ष में पूर्ण पारङ्गित्य के ज्ञान में वासन मुद्रा, प्राणायामादि को लेकर वाधुनिक योग-वस्तु में जो प्रचार एवं प्रचार किया जा रहा है उसका उत्तेज कणियों की प्राचीन परम्पराओं से भिन्न है। 'विपरीत-कर्णी मुद्रा' की शीर्षासन या शर्गासन कला साधारण ही बात ही नहीं है। ज्ञाना ही नहीं शारीरिक व्यायाम में वासन मुद्रा एवं प्राणायाम तथा योग के वासनों में शारीरिक, व्यायाम जैसे सूर्य नमस्कार, चन्द्र नमस्कार आदि को समावेश कर दिया है। विमतास्टिक वैसी शारीरिक क्रियाओं की वासनों की शैली में रहकर वर्तमान प्रचारकों ने वासन के प्रारम्भिक स्वरूप को ही नहीं शिपा दिया प्रकृत उनसे होने वाले वाय्यात्मिक परिवर्तनों से भी वंचित कर दिया।

वर्तमान योगियों द्वारा बनी जुरूप बाजन मुद्रा एवं प्राणायामों की प्राचीन श्रियाओं में ढेर फेर करके उनको प्रस्तुत किया जा रहा है। हठयोग का वास्तविक स्वरूप क्या है ? तथा इसका मूल श्रोत कहाँ पर है जहाँ से यह क्रम धारा प्रवाहित हो रही है यह विचारणीय विषय है। हमारे लिए हठयोग कोई नया विषय नहीं है। इसके प्रमाण हिन्दु संस्कृति के अवशेषों में प्राप्त बाजन एवं मुद्राओं से मिलते हैं। इसे स्पष्ट है कि हठयोग की धारा इसी पूर्व भी वर्तमान थी।

“ हठ विषां हि मत्स्येन्द्रगौरक्षणाया विजानते । ”

- पृष्ठ ११४

इस श्लोक के आधार पर यह कहा जाता है कि हठ विषा को मत्स्येन्द्र एवं गौरक्षा ही जानते थे। किन्तु उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर हठयोग विषा मत्स्येन्द्र गौरक्षा से पूर्व भी विद्यमान थी। गौरक्षनाथ ने ही नवीन स्वरूप प्रदान कर संजीव किया -

“ विधा हठः स्वादकस्तु गौरक्षानां सुखाधकः ।

वन्यो मृकण्डपुत्रादिः साधितो हठ संज्ञकः ॥ ”

- योगसिद्धि पृष्ठ ६०

उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हठ विषा को गौरक्षनाथ के अतिरिक्त मृकण्ड पुत्र भार्कण्डेय कणि भी जानते थे। वस्तुतः कालान्तर में हठयोग की दो परम्परा एक गौरक्षनाथ दूसरी भार्कण्डेय परम्परा का प्रकटन भारतवर्ष में हुआ। भार्कण्डेय की परम्परा जिसका मुख्य ग्रन्थ “ मृकण्ड संहिता ” है वहिकांत विहार एवं बंगाल में ही इसकी उत्तप्रति-लिपियाँ मौजपुरी एवं बंगला भाषा में ही उपलब्ध हैं। गौरक्षनाथ परम्परा में

हठयोग के कई ग्रन्थ गोरक्षा संहिता, गोरक्षा पद्धति, खिद खिदान्त पद्धति, विषेक मार्तण्ड, योगवीज, एवं हठप्रदीपिका हैं। इस परम्परा में हठप्रदीपिका में ही सर्वाधिक वासन, मुद्रा एवं प्राणायामादि की क्रियाएँ उपलब्ध होती हैं। गोरक्षनाथ परम्परा के सभी ग्रन्थ समस्त भारत में हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में उपलब्ध होती हैं। मार्कण्डेय परम्परा में 'धैर्य संहिता' के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

'धैर्य संहिता' एवं 'हठप्रदीपिका' पर बहुत कम शोध ग्रन्थ मिलती हैं। केवलधाम लोनावला में इन ग्रन्थों पर कुछ कार्य हुआ है। शोध की दृष्टि से यह न्यून ही कहा जायगा। गोरक्षा परम्परा का मुख्य ग्रन्थ 'हठप्रदीपिका' एवं मार्कण्डेय परम्परा का ग्रन्थ 'धैर्य संहिता' को शोध के अन्तर्गत लिया गया है। क्योंकि इन्हीं दो परम्पराओं के इन मुख्य ग्रन्थों में सर्वाधिक हठयोग की क्रियाएँ उपलब्ध हैं।

'धैर्य संहिता' तान्त्रिक साधना के फल का ग्रन्थ है तथा तान्त्रिक फल से जिस प्रकार समाधि लाभ होता है, उसे लक्ष्य करके इसमें साधना प्रक्रिया का उल्लेख है। तान्त्रिक साधना की प्रक्रिया में सभी साधना प्रक्रियाओं का समन्वय है। गुरु धैर्य एवं शिष्य बण्ड कापालि के मध्य सम्वाद रूप में यह ग्रन्थ सात उपदेशों में विभक्त है तथा तत्तात्त्विक क्रियाएँ प्रस्तुत की गई हैं। धैर्य इस शरीर को एक कच्चे घड़े के समान स्वीकार करते हैं तथा यह शरीर योगाग्नि में तपाकर फल जाता है। योग के साधन - शौधन, वृद्धता, स्वीय, धैर्य, ताप, प्रयत्न एवं निर्विघ्न है। इन साधनों की सिद्धि के लिए क्रमशः षट्कर्मा, वासन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि को अपनाया है। धैर्य संहिता में प्रत्येक साधन के उल्लेख के लिए एक उपदेश निर्धारित किया गया है। यह ग्रन्थ क्रिया-बहुल होने के कारण साधकों के लिए अटिष्ठ हो गया है।

गौरवान्नाथ परम्परा के मुख्य ग्रन्थ 'हठप्रदीपिका' को चार उपोक्तों में बांटा गया है। प्रथम उपोक्त में वासन, दूसरी में 'चट्कर्म एवं प्राणायाम', तीसरी में छद्मार्थ तथा चौथी में समाधि कर्मात् नाद को लिया गया है। ६० प्र० की श्रियाएं नियन्त्रित रहने के कारण जन-सामान्य प्राप्य बन गई हैं।

हठप्रदीपिका में शरीर शोधन हेतु 'चट्कर्म' को आवश्यक न मानते हुए भी 'चट्कर्म'- धौति, वस्ति, नेति, नौति, ज़ाटक एवं कपाल मांति का विवेक द्वितीय उपोक्त में किया है तथा वहीं प्रश्न में गङ्गारणी का भी उल्लेख किया है जो घेरण्ड संहिता में उपलब्ध नहीं है। हठप्रदीपिका में धौति का एक ही प्रकार है, किन्तु घेरण्ड संहिता में चार प्रकार की धौतियों का एवं दो प्रकार की वस्तियों का उल्लेख उपलब्ध होता है। नेति, नौति एवं ज़ाटक की प्रक्रियाओं में दोनों ग्रन्थों में कोई भेद नहीं है। कपालमांति की तीन प्रक्रियाएं घेरण्ड संहिता में दी हैं, जबकि हठप्रदीपिका में एक ही प्रकार की कपाल-मांति उपलब्ध है।

वासनों के विषय में दोनों ग्रन्थकारों में मतभेद है। घेरण्ड ने अस्तीस वासनों का उल्लेख किया है तथा शरीर शोधन में वासनों को दूसरे स्थान पर रखा है। उन्होंने किसी वासन को भैष्ठ कर्मा जीष्ठ नहीं बताया है। स्वात्माराम ने कुल पन्द्रह वासनों का विवरण प्रस्तुत करते हुए पिडासन, पद्मासन, सिंहासन एवं मद्रासन को अन्य वासनों से भैष्ठ स्वीकार किया है। स्वात्माराम वासनों की हठयोग का प्रथम ज्ञेय स्वीकार करते हैं। घेरण्ड संहिता एवं हठप्रदीपिका के कई वासनों के नाम एक हैं किन्तु उनकी प्रक्रिया अलग अलग है तथा कुछ की प्रक्रिया एक होती है। हर भी उनके नाम अलग अलग दिए हैं।

छद्मावों के सम्बन्ध में दोनों ग्रन्थों में काफी विषमता है। हठप्रदीपिका में दस छद्मावों का वर्णन तृतीय उपोक्त में तथा दो

छटा शम्भवी व उन्मनी का उत्तेज कर्तुं उपैत में दिया है । इस प्रकार बारह मुद्राओं का उत्तेज प्राप्त है। धेरण्ड संज्ञिता में कृत पञ्चीस मुद्राएं उपलब्ध हैं । मुद्राओं के उत्तेज के पश्चात् धेरण्ड ने प्रत्याहार का बड़ा ही संज्ञित्य वर्णन किया है । ज्योतिष योग में प्रत्याहार को प्राणायाम के पश्चात् लिया है किन्तु धेरण्ड ने अपने ज्योतिष योग में प्रत्याहार को प्राणायाम से पूर्व उत्तेज किया है।

प्राणायाम की संज्ञा हठ प्रदीपिका एवं धेरण्ड संज्ञिता के अन्तर्गत बाठ बाठ ही दी हुई है, किन्तु दोनों ग्रन्थों में धूम्रवी, उष्णवी, शीतली, मस्त्रिका, आमरी व भूर्वा का वर्णन समान रूप से है । " धेरण्ड संज्ञिता " में " सक्ति " एवं " केवली कुम्भक " तथा हठ प्रदीपिका में " शीत्कारी " व " स्वादिनी कुम्भकों " का उत्तेज समान रूप से उपलब्ध होता है । हठप्रदीपिका में धेरण्ड संज्ञिता के समान ध्यान एवं समाधि का उत्तेज पूर्ण नहीं है बल्कि ध्यान एवं समाधि का समावेश नाद के अन्तर्गत ही किया गया है । धेरण्ड संज्ञिता में तीन प्रकार के ध्यान- स्थूल, सूक्ष्म एवं ज्योतिर्मय तथा समाधि योग के चार प्रकार- ध्यान योग, नादयोग, रसानन्द योग, स्योचिद्धि योग, भक्ति योग एवं राजयोग समाधियों का उत्तेज उपलब्ध होता है ।

सूक्तः योग की एक धारा ज्योतिष योग- यम, नियम, वासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि युक्त है, पर हठयोग में प्रथम दो कं यम, नियम को सवन कं के रूप में स्वीकार कर ज्योतिष योग को ही महत्त्व दिया है । हठयोग में प्राणायाम सर्वोपरि धारणा होने से हठा फलानन्द राजयोग में ही ही जाता है किन्तु राजयोग मत्त वैतवादी है । " धेरण्ड संज्ञिता " तथा " हठप्रदीपिका " दोनों ही ग्रन्थ वैतवादी हैं । उन दोनों के मत से जीव की सत्ता ब्रह्म-सत्ता से सर्वथा भिन्न नहीं है । धेरण्ड के अनुसार " सीधम " मंत्र के अनुसन्धान से जीव-ब्रह्म-माय को प्राप्त होता है तथा विष्णु की सत्ता सर्वत्र व्याप्त मानते हैं ।

‘ वरीविष्णुः स्वरीविष्णुर्विष्णुः परितः परतरे ।

ज्वाला-माला हरे विष्णुः ऊर्ध्वं विष्णुमणिमतु ॥

- यो० ध० अ० १८

हस्तप्रतीक्षा में भी प्राण के प्रसरण में तब-
पूर्वक नादानुबन्धान करते हुए उन्मत्तीकरण भाव में ब्रह्म की सत्ता सर्व व्यापक
स्वीकार की है, तथा दोनों ग्रन्थों का सत्य एक समान ही रहा है :

‘ वन्तः शुन्यो वरिः शुन्यः शुन्यः शुन्यं स्वाम्यरे ।

वन्तः शुणो वरिः शुणोः शुणोः शुणं स्वाम्यरे ॥’

- यो० प्र० ४। ५६

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों की श्रितावर्तों में साम्य-
वैजात्य होती हुए भी बीच की ब्रह्म- भाव प्राप्त कराना है जो उसका चरण सत्य
है । काः हम कह सकते हैं कि दोनों ग्रन्थों के मार्ग में भिन्नता होती हुए भी पद-
को का विन्दु एक ही है ।

दृष्टयोग की दीक्षा केलिए

गुरुजी अनायास मिलगये । वे सुवाक्यता की नीव सुध्दा की इतराती रहे
जगता भी उनका लोह चिह्न पाती रही । उनकी कृपा कि प्रसन्न के सुख
का विपाक है , नहीं जानता ? स्थिता कुछ योग साधना में प्रवृत्त किया है
और कहना हमारे भी अनभिज्ञ ही हूँ । योग साधना के विराट् योग, सर्व ज्ञान
के अन्त मण्डार में मैं समुद्र में हूँ के समान ही हूँ । १० वर्ष की कठोर साधना
सर्व अनवरत बन्ध्या में अन्त रहता उनका मेरे ऊपर शक्तियोग ही है । उनकी
अनुकम्पा हमी समस्त मेरी नाम की किनारे लगायेगा ऐसा मेरा विश्वास है ।
योग विज्ञान में बहुत प्रीति ही उनकी मनः शक्ति का परिणाम है । दृष्टयोग की
विषय में सीधे कार्य किया है यह गुरु कृपा ही है । वाचार्थ राधेन्द्र कुमार शास्त्री

जी जी मेरे गुरु हैं मुझे पुनर्जन्म में मिलें ऐसी मेरी अभिलाषा है। उन्हें प्रणामार्पित वक्ति करता हूँ।

मेरे लोध निर्देशक एवं भारतीय दर्शन के महान् विद्वान् डा० विन्तामणि क्रयम्क केन्ये साहब ने मुझे वक्ति पर जी जी की कृपा की वर भी निर स्मरणीय है। मुझे पारिवारिक एवं वार्षिक विनय-साजों के बीच झुकते हुए जी जी की प्रार्थना का सहयोग देकर उन्मत्त हेतु समस्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों की व्यवस्था की तथा पूर्ण धन्यवना रखी हुए मेरे कार्य किया। यह उनकी विराटता का प्रतीक है। उद्योग शास्त्र की दार्शनिक विनय पर ऐसी उठाने का दुस्साहस कर पाया तथा प्रत्येक विनय की सुझावों तक पहुँचाने में जी जी प्रयत्न किया है इसके लिए उन्हें पात्र धन्यवाद देकर गुरु जी है मुक्त हो पाना मेरे लिए क्वापि सम्भव नहीं है, उन्हें मैं प्रणामार्पित वक्ति करता हूँ। विभागाध्यक्ष डा० परमानन्द शास्त्री जीने भी शोध कार्य में जो सहकार्य दिया उसके लिए मैं आभारी हूँ।

स्वामी विमानन्द जी, कयदा विमानन्द साहब चौदावटी, कनिकेत, हिमालय के वासन के पुस्तकालय के कयदा की सुविधा एवं योगाभ्यास के साजों के में उद्योग, राजयोग एवं भारतीय दर्शन पर तीन माह के प्रतिपादन के परपात समस्त विश्व में योग चिताने हेतु प्रकाश पत्र दिया, इसके लिए मैं उन्हें प्रणामार्पित वक्ति करता हूँ।

वर्ष १९८१-८२ में स्वामी विष्णुदेवानन्द (कृष्णार्णव स्वामी), वात्समीरिन क्यूमेक क्वाडा, कौरिका द्वारा एक माह के प्रतिपादन एवं योगाभ्यास की समकारिक क्रियाओं के प्रदर्शन एवं राजयोग की उच्च भूमिकाओं के कृतक के वाधार पर 'योगशिरोमणि' की उपाधि प्रदान करते हुए संसार भर में योग प्रतिपादन देने हेतु वक्ति किया, उस कृतक के लिए मैं उन्हें प्रणामार्पित वक्ति करता हूँ।

‘ विवेकानन्द केन्द्र ’ कन्याकुमारी के पुस्तकालय
कन्या को भी मैं साधुवाद देता हूँ जिन्होंने वहाँ की लाइब्रेरी में वे ग्रन्थों को
उपलब्ध करने की सुविधा प्रदान की । केरल विश्वविद्यालय, त्रिन्द्रम के पुस्तकालय
कर्मियों को भी साधुवाद वर्णित करता हूँ जिन्होंने सन्दर्भित ग्रन्थों की बहुमूल्य
पाण्डुलिपियों को कन्या को उपलब्ध कराई ।

वैरियन्टल रिजर्व इन्स्टीट्यूट, एम० एच०
विश्वविद्यालय, कर्णाट, गुजरात प्राच्य विद्या केन्द्र, कर्णाट, ड० पी० इन्स्टी-
ट्यूट रिजर्व एण्ड लरनिंग , अहमदाबाद तथा गुजरात विश्वविद्यालय , अहमदाबाद
के पुस्तकालय वे सन्दर्भित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ प्राप्त कराई । इसके लिए
पुस्तकालय कर्मियों को साधुवाद देता हूँ ।

मौलाना आजाद लाइब्रेरी , मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ एवं मातृगीय पुस्तकालय, अलीगढ़ के पुस्तकालय कर्मियों को भी उपयोग के
लिए धन्यवाद देता हूँ ।

डा० उमेश चन्द्र शर्मा , प्रख्यात संस्कृत विभाग,
भी राष्ट्रीय महाविद्यालय, अलीगढ़ ने ‘ योग ’ के पुस्तकालय पर शोध कार्य
के लिए प्रेरित किया, इसके लिए उन्हें मैं प्रणामार्पित वर्णित करता हूँ ।

बीप्ती शिखर बीप्ती, कन्याश्रम धनीपुर
को भी स्नेहार्पित वर्णित करता हूँ जिन्होंने अन्य समय पर वार्षिक उपयोग के
मानसिक तनाव दूर कर शोध कार्य को तीव्र करने के लिए प्रेरित करती रहीं ।

वर्षी मित्र डा० रामेश्वर दयाल, रिजर्व एडो-
रिजिट, (ग्र० पी०डी०) , हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का
सामग्री हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध की पाण्डुलिपि को तैयार करने में सहायता की ।

श्री वसिष्ठ कुमार सिंह, वायव्यवहन की भी
धन्यवाद देता हूँ किन्तु मुझे सीधे कार्य में शामिली करना देकर अवधीन
दिया ।

श्री मिश्रों व परिवार के समस्त व्यक्तियों की
वैयक्तिक वार्ता करता हूँ । श्री लीव के बार बार सीधे कार्य की सीधे समाप्त
करने के लिए वागद्वार करी रहे ।

21/12/29 (4 mcr am)
(समिन्धर दगावत तर्का)

ह० प्र०

ध० सं०

ह० २०

ह० सं० सं०

यी० बी०

यी० उ०

ब० यी०

यी० ब०

ह० यी० उ०

गी० प०

बी० ह०

हठ प्रदीपिका

धरुण्ड धरुणिता

हठ रत्नावली

हठ धीय वन्धिका

यीय बीमाधिता

यीग उपनिषद्

बहिरंग यीग

यीग दर्शन

हठ यीग उपनिषद्

गीरुपा पद्धति

गीरुपा शतक

Y.M.

H.R.

H.S.A.

H.P.

G.S.

Y.H.

Yoga Mimansa

Rath Ratnavali

Rath Sanket Cakradrika

Rath Pradipika

Chavan Samhita

Yoga Mani

विषयानुक्रमिका

पृष्ठानि

प्रथम अध्याय : योग का अभिप्राय, व्युत्पत्ति,

1—27

परिभाषा एवं स्वरूपादि

विषय प्रसूत, योग का अभिप्राय, योग
शब्द की व्युत्पत्ति, योग की परिभाषा,
विभिन्न प्रकार के योग, योग क्या है,
हठयोग का बाह्यनिक स्वरूप, पंचभूतात्मक
दृष्टि, योग की शक्ति, अष्ट सिद्धियों की
प्राप्ति एवं कैवल्य ।

द्वितीय अध्याय : तुलात्मक ग्रन्थों का संक्षिप्त वर्णन

28—58

धेरण्ड संक्षिप्त एवं हठ प्रदीपिका का सामान्य
परिचय, धेरण्ड संक्षिप्त की श्रियारं, हठप्रदी-
पिका की श्रियारं, षट्कर्म, वासन- व्यानी-
फयोगी एवं शरीर शोधनार्थ वासनो का उत्प्रेष,
प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्ध, धेरण्ड संक्षिप्त एवं
हठप्रदीपिका की मुद्राओं का तुलात्मक चार्ट ,
दोनों ग्रन्थों में समान एवं असमान मुद्राओं का

उत्प्रेत, प्रत्याहार, ध्यानप्रकरण ,
समाधि एवं नादयोग, धेरण्ड संहिता एवं
हठप्रदीपिका की दार्शनिक पृष्ठभूमि, धेरण्ड
संहिता एवं हठप्रदीपिका का प्रसार ।

तृतीय अध्याय : हठयोग साधना हेतु सामान्य निर्देश

59-98

हठयोग का कर्म एवं परिभाषा, शरीर में
सूर्य चन्द्र का योग एवं परावस्था के मुक्ति,
हठयोग का महत्त्व , सुवर्णों के लिए योग
की आवश्यकता , योगिक क्रियाओं का
शरीर पर प्रभाव, सुवर्णों के लिए योग,
सुवर्णों के लिए बन्ध, मुद्रा एवं प्राणायाम,
वासन प्राणायामादि करते समय सावधानियाँ,
योगाभ्यास का समय एवं क्रम ।
बालक-बालिकाओं के लिए वर्जितवर्जित योग,
बालक- बालिकाओं के अभ्यास हेतु सात्विक
एवं विशिष्ट शक्ति, योगाभ्यास हेतु स्थान एवं
कूटी निर्माण, योगाभ्यास के लिए काल-निर्णय,
योगी का शिवाहार, योगी का निष्पिडाहार,
योग साधना में बाधक और बाधक कारण ।

चतुर्थ अध्याय : हठयोग में षट् कर्म विधान

99-131

बाह्यतः में स्वस्थ- अस्वस्थ शरीर का लक्षण ,
षट् कर्म का महत्त्व, षट् कर्म विधान में धेरण्ड

व स्वात्माराम की वस्तुनिष्ठ, धीति कर्म
 वस्तुधीति, वस्तुधीति, वस्तुधीति वीर वृत्त
 शोधन, धीतियां एवं उनके प्रकार ।
 गच्छणी, वस्तिकर्म- शुष्क वस्ति एवं पल्लव
 का उत्पत्ति । नैति कर्म, नीति, वाटक कर्म, कपाल-
 भाति क्रिया- वात्कर्म, व्युत्क्रम एवं शीत्क्रम कपाल
 भाति क्रियारं । वाटकर्म समीक्षा ।

पंचम अध्याय : हठयोग में वासन विधान

132-220

वासनों का महत्त्व, वासन परिभाषा ,
 हठयोग में वासनों का स्थान, हठयोग में
 वासन संस्था निर्धारण , हठप्रतीफिका एवं
 घेरण्ड संज्ञिता में सम्मिलित वासन, वासनों
 का वर्गीकरण, वारोग्य हेतु वासन , ध्यान
 योग्य वासन, षट् शोधनार्थ वासन , ध्यान
 उपयोगी वासनों की प्रक्रिया एवं लाभ ,
 चिदासन उत्पत्ति, चिदासन प्रवृत्ति एवं लाभ,
 फल्मासन उत्पत्ति, फल्मासन है लाभ, मडासन
 उत्पत्ति, मडासन है लाभ, स्वस्तिकासन उत्पत्ति,
 स्वस्तिकासन है लाभ ।

हठयोग में स्वास्थ्य निर्माण हेतु वासन-विधान

मुक्तासन, वज्रासन, शिवासन, गोमुक्तासन,
 वीरासन, धनुरासन, पुतासन/ स्वासन ,
 स्वासन है शारीरिक विकास, स्वासन है
 मानसिक शिथिलीकरण, स्वासन है वातिक

विमानि, गुप्तासन, कल्यासन,
 कल्याण्ड्रासन, गौरासन, पश्चिमीत्तान,
 एवं पश्चिमीत्तान के १२ भेद, उत्कटासन,
 जंटासन, क्युरासन, कुम्भुटासन, कूर्मासन,
 उत्तानकूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तानमण्डूकासन,
 वृक्षासन, गरुडासन, वृणासन, शलासन,
 मकरासन, उष्ट्रासन, मुर्गनासन एवं योगासन ।

अष्ट अध्याय : हठयोग में मुद्रा विधान

221-311

मुद्राओं का उद्देश्य, मुद्रा का स्वरूप एवं
 कार्य, योगशास्त्र में मुद्राओं के कार्य एवं
 लाभ, मुद्राओं की संख्या, मुद्रा वर्गीकरण,
 व्यानोपयोगी मुद्राएँ- लेवरी, शाम्भवी एवं
 उन्मनी । षट्-शुद्धि के मुद्राएँ- महामुद्रा,
 नमोमुद्रा, उद्धियानमन्थ, बालन्धरमन्थ,
 मुखमन्थ, महाबन्ध, महापैव, विपरीत-
 करिणी, योनिमुद्रा, वज्रोली मुद्रा, तखली
 वज्रोली एवं स्त्री की वज्रोली मुद्रा, शक्ति
 बाली मुद्रा, तड़ानी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा,
 पंचधारणा- पार्थिवी, शाम्भवी, वायवीय,
 शान्मेयी एवं बालासी, बस्त्रिनी, पाणिनी,
 काली, मातंगिनी, मुर्गनिनी, षण्ड संख्या
 में मुद्रा माहात्म्य । मुद्राओं की विशेषता

अष्टम अध्याय : प्रयाहार- विधान

312-324

प्रयाहार का योग में स्थान, प्रयाहार के लक्षण, प्रयाहार की विधि, घण्ट उल्लिखित में प्रयाहार विधि वर्णन, प्रयाहार साधना का परिणाम ।

अष्टम अध्याय : कठयोग में प्राणायाम-विधान

325-375

प्राण का स्वरूप, वेदी में प्राण का स्वरूप, प्राण का स्वरूप, प्राणायाम का अर्थ, कठयोग में प्राणायाम की विधियाँ, घण्ट उल्लिखित में प्राणायाम का विधान । नाडी शोधन विधान, अन्य कठयोग ग्रन्थों में नाडी शोधन विधान, उ० प्र० में नाडी शोधन, एवं व्यास परिणाम, व्यास कात से पूर्व भोजन विधान, नाडी शोधन युक्ति, रोग शमन । उ० प्र० की नाडी शोधन प्रक्रिया से लाभ, घण्ट उल्लिखित में नाडी शोधन-विधान, घण्ट की समु- निर्मल प्रक्रिया, कठयोग में प्राणायाम के प्रकार । उ० प्र० में प्राणायाम भेद, उ० प्र० में कुम्भक विधि, घ० सं० में कुम्भक प्राणायाम के भेद, उपाय, निम्न प्राणायाम विधि, घ० सं० में प्राणायाम फल, पूर्व भेदी, उष्वायी, शरीरी, मल्लिका, प्राणरी, पुष्पी,

पृष्ठानि

कैवली हृत्क प्राणायामों का वर्णन ,
हीनकारी, प्यासिनी । हठप्रदीपिका एवं
धरुण्ड संहिता के बाठ हृत्क , ६० प्र० एवं
धरुण्ड संहिता में नाड़ी शीघ्र विधान ।

नवम अध्याय : हठयोग में ध्यान प्रकरण

376-394

ध्यान की परिभाषा, ध्यान के लक्षण ,
हठयोग उपनिषद्ओं में ध्यान विधान, नीलम्-
कन्दर्गोपा में ध्यान , कालमासिनी तन्त्र में
ध्यान प्रक्रिया, विश्वाधार तन्त्र में ध्यान ,
धारस्वत हृत्कलिनी महायोग में ध्यान ।
हठयोग में ध्यान के भेद : धरुण्ड संहिता में
ध्यान- स्थूल ध्यान प्रक्रिया , प्रकारान्तार
ध्यान प्रक्रिया , ज्योतिर्मय ध्यान, सूक्ष्म ध्यान,
हठप्रदीपिका में ध्यान प्रकरण , पारद बीर का
के सम्बन्ध का उल्लेख , पारद प्रक्रिया , हठप्रदीपिका
में ध्यान का फल एवं निष्कर्ष ।

दशम अध्याय : समाधि एवं नाद प्रकरण

395-427

समाधि की परिभाषा एवं लक्षण, नीरसा
पदवि में समाधि प्रकरण, योगी की समाधि
कस्या, तार्किक समाधि, हठप्रदीपिका में समाधि
विविध , हठ प्रदीपिका में समाधि के फल , हठ
प्रदीपिका में समाधि लक्षण, हठप्रदीपिका में
समाधि प्रयास का उल्लेख , हठ प्रदीपिका में
समाधिस्य योगी का उल्लेख, हठयोग के राख्यीन

पृष्ठानि

की सिद्धि का उत्प्रेष, वात्पत्तान पर
स्वात्पत्तान का मत्, धेरण्ड संज्ञिता के
अनुसार समाधि की वनिवाक्या, धेरण्ड
संज्ञिता में समाधि प्रकरण, धेरण्ड संज्ञिता में
हठयोग - समाधि में का वर्णन, एवं
सिद्धियों के उपाय, ध्यान योग समाधि,
नाद योग समाधि, रत्नानन्द योग समाधि,
सर्व सिद्धि योग, मन्त्र योग समाधि, राज-
योग समाधि, धेरण्ड संज्ञिता में समाधि योग
माहात्म्य ।

नाद की उत्पत्ति, नाद प्रकट करने का गुप्त
साधन, कुण्डलिनी और नाद का स्वरूप, नाद
के भेद, उपनिषदों में नाद का स्वरूप, हठ-
रत्नावली में नाद, हठप्रदीपिका में नाद विवरण,
नादानुसन्धान की प्रक्रिया, नाद की चार अवस्थाएं-
कार्म्यावस्था, पृष्ठावस्था, परिव्यावस्था, निष्पत्ति
अवस्था, हठप्रदीपिका में नाना नाद वर्णन, हठ-
प्रदीपिका के अनुसार नाद का प्रभाव, निष्कर्ष ।

एकादश अध्याय : उपसंहार

अनुसन्धान के निष्कर्ष, चतुर्कर्म, धीतिकर्म,
वस्ति कर्म, नेतिकर्म, नीति, कपात्मासि, वाचन
विधान, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान एवं
समाधि प्रकरण, वन्तिम निष्कर्ष ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

428-443

444-460

प्रथम अध्याय

योग का अभिप्राय, व्युत्पत्ति,

परिभाषा एवं स्वतत्वादि

विषय प्रवेश

भारतीय सांस्कृतिक चेतना में "योग" की संस्कार परम्परा अति प्राचीन है। सांख्य के समान ही योग-चेतना भी भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम से लेकर अन्तर्ध्वज उपलब्ध साहित्य में विविध-सुखी एवं विविधरूपा रही है। पौराणिक, उपनिषदों, पुराणों और शिष्ट-साहित्य में ही नहीं, भारत के वैदिक धर्म-सम्प्रदायों एवं शास्त्राचार्यों में भी एकता व्याप्त राज्य रहा है। योग-चेतना ने किसी न किसी रूप में भारत के पठित, अपठित तथा शिष्ट और ग्राम्य दोनों ही प्रकार के समाज को प्रा-पित किया है। इस देश की ज्ञान-साधना, कर्म-साधना और उपासना पद्धति इस चेतना से प्रापित हुई है, और सर्व योग-रागाश्रय ज्ञान साधनाओं के सम्पर्क में परिष्कृत होता रहा है। भारतीय साधना के इतिहास में एक समय ऐसा भी रहा है जबकि उसके सभी रूप ज्ञान, कर्म, उपासना-ज्ञानयोग, कर्मयोग और उपासनायोग के रूप में देखे गए हैं। यहाँ तक कि जप, तप, ध्यान आदि भी योग सम्बन्ध से प्रतिष्ठित हुए हैं।

मानवीय आत्मा के परात्म-प्रतिष्ठा के पितृ-प्राप्त इस देश में हुए उनमें योग का स्थान इसलिए और उत्कृष्टतम है कि योग सभी किसी परास्तता का अन्त्य लेकर चली वाली मनःसाधना को लेकर चला, सभी जीवों आत्मावस्थायी आत्मनिष्ठ होकर और सभी प्रक्रिया प्रधान होकर ही उल्लेख आत्म परात्म के रहस्यों को खोजता कर सभी की धीमे-धीमे। आत्मा की परात्म-परिणति के सभी उपायलोचों, मन, प्राण, वाक्, कृ, काय की साग-स्वांग रूप में योग ने देखा। इतिहास के पक्षों में योग अत्यन्त निष्ठ और परिष्कृत होता हुआ भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक प्रयासों का एक अविस्मरणीय फल रहा है।

“योग” विम्वन के या मानना के लिये इस
ही परिधीनता नहीं रहा, वह निरन्तर प्रक्रिया का अनुसरण कर “हठयोग”
भी बना। वैदिक और अद्वैत, वेदान्त-जीवन्मुक्त, बौद्ध, जैन, वैष्णव-विभिन्न
इसी प्राय में आए।

भारतीय संस्कृति एक कल्याणनिष्ठ और
साधनात्मक संस्कृति है। सामान्यतः भारत की कल्याण-साधना के दो प्रमुख
स्वरूप “क्रिया” और “भाव” हैं, परन्तु यह कल्पना करनी है कि यह साधना
कितनी वर्षों में प्रारम्भ और परिवर्धित हुई है और होती रहनी। योग की
प्रक्रिया तथा मानना भी ऐसी ही निरन्तरता है। भारतीय साहित्य के अन्त-
र्गत “योग” शब्द के अर्थों में किन्हीं कीलक-पट्टा दिव्य हैं, उन्हीं की
इसकी व्याख्या भी परिवर्धित होती है। परन्तु: योगपरक श्रुति, स्मृति,
रूप में, वैदिक साहित्य से लेकर परवर्ती अद्वैत संस्कृत साहित्य और अनेक
साधना और सम्प्रदायों में उपलब्ध है। इस प्रकार योग का कोई एक मात्र
धर्मिक और निश्चित सम्प्रदाय नहीं माना जा सकता।

योग का समिप्राय

भारतीय साहित्य में “योग” शब्द की
व्याख्या है, और इसी साधारण और विविध रूप स्मारक होते हैं।
अन्यथा में भी “योग” शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। साधारण
रूप से योग जोड़ने की कला है। परन्तु विविध रूप से इसी कहे गए वैदिक
काल से आज तक अनेक मिली हैं। सभी वेदों, पुराणों, दर्शनों, स्मृतियों,
पुराणों, इतिहास-ग्रंथों, काव्य और साहित्य ग्रन्थों में यह शब्द प्रायः
प्रयुक्त हुआ और अनेक अर्थों की अनेक प्रकार से स्थापना पाया गया है। संस्कृत

साहित्य में ही नहीं, अन्य पञ्चगुणों की वास्तविक कालीन भारतीय भाषाओं में भी यह उक्त का प्रयोग कम नहीं है। प्रसूत लोप प्रसन्ध में हमारा समिप्राय 'योग' उक्त के विभिन्न वर्गों एवं प्रयोगों पर प्रकाश डालता नहीं है। यहाँ 'योग' उक्त का प्रकार के पारिभाषिक ही कहा जा सकता है और अधिकतर पारिभाषिक रूप में ही यह उक्त लिया भी गया है।

'योग' उक्त की व्युत्पत्ति

उक्त के प्रथम पैराकरण पाणिनि के गणपाठ के आधार पर योग उक्त की विधि तीन धातुओं से संभव है- कर्त्तु - विधा-विगण की 'सु' समाधी^१, 'रुधाविगण' की 'सुविर्' योग^२ और 'सुराविगण' की 'सु' संयमे^३। यद्यपि इन तीनों ही धातुओं से योग उक्त की व्युत्पत्ति संभव है, तथापि विधाविगण की 'सु' धातु कर्मक है। भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धान्त कीमुदी' में स्पष्ट करते कर्मात्र से ही उपाध नहीं लिया, बल्कि समाधि का विशेषण भी आवश्यक समझा और 'सु' समाधी^४ के सूरन्त जागे 'समाधित्वित्त्वृत्तिनिरोधः'^५ की उद्भूत किया तथा फिर कर्मक का भी प्रयोग किया। इस विवेक से का समिप्राय यही हो सकता है कि भट्टोजि दीक्षित की शास्त्रीय योग उक्त की व्युत्पत्ति स्त्री धातु से की गयी है। 'सु' धातु से मात्र में का प्रत्यय द्वारा योग उक्त निश्चय होता है। इस प्रकार हम योग उक्त की व्युत्पत्ति कर सकते हैं -

'सुयती समाधी विधीयते नवः जीन एति योगः ।' ५

१- सिद्धान्त कीमुदी पृ० ६२ (सिद्धन्ती विधादयः)

२- " " " पृ० १०५ (सिद्धन्ती रुधादयः)

३- " " " पृ० ११६ (सिद्धन्ती सुरादयः)

४- " " " पृ० ६२

५- पाणिनि- अष्टाध्यायी ३.३.१२६ 'सहस्य'

योग की परिभाषा

कारणों में 'योग' का अर्थ 'योगः संजोपाय-
यानसंतिष्ठति' किया है। जिसका अर्थ स्वयं, तान-दान और उपाय
ध्यानादि अर्थ दिए हैं।

मेदिनीकोश के अनुसार योग शब्द के छः अर्थ
प्राप्त होते हैं। क्या-१-वस्तुसंग्रह-प्राप्ति - नवीन वस्तु की प्राप्ति २- वस्तु-
संग्रह प्रयोग- वस्तु शरीर को सुख देने की कला ३- विनियमनादि- स्थान
४- मेजबान- शीघ्रता ५- विनियमनादि - सुख ६- काय- शरीर।
वाचस्पति में योग शब्द के बहुत से अर्थ हैं किन्तु योगशास्त्र के साथ इन शब्दों की
कोई संबंध नहीं देखी है।

वाचस्पती के अनुसार योग में भी 'योग' की
परिभाषा दी गई है, जिससे विदित होता है कि योग हिन्दू दर्शन की एक
प्रणाली है, जिसके अनुसार स्वयं विनियमन और तपस्वर्था के सम्पादन के द्वारा
आत्म की वात्सा पुनः परमात्मा में एकत्वभाव से स्थित हो जाती है। इस
प्रणाली पर बल्लभ आत्मज्ञान की सिद्धि होती है, और साथ ही मानसिक
तथा कायिक संयम भी प्रतिफलित होता है।

१- कारण - अष्टावक्रसंहिता २२ तृतीय अध्याय, भाष्यार्थः ३

२- मेदिनीकोश - २२-२८-२९

३- A Hindu System of Philosophy meditation and
asceticism designed to effect the reunion of the
devotee's soul with the universal spirit.

मैत्रेयसूत्र का कथन है कि शरीर और मैदान का प्रेम प्रसंग में विहीन होना नहीं है, क्योंकि आत्मा ही सत्य प्रसंग है, उन्हीं विलस नहीं। इसलिए शास्त्र के लिए यही अभिप्राय है कि प्रसंग आत्मा पर ही हुए ज्ञान के वापरण को कहा है। मैत्रेयसूत्र ने "सु" धातु का आत्मिक धर्म "वायाव करना" का कथन किया है। संस्कृत की सु धातु प्रायः मनस्, चित्तम्, वात्स्य वादि शब्दों के साथ प्रयोग में आती है, जिससे चित्त के विरोध का अर्थ करने का का विच्यन्त होता है। यहाँ महर्षि प्रायश्चित्त के "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" सूत्र की ओर मैत्रेयसूत्र ने ज्ञान दिया है। "योग का अर्थ" नीलन "जो शास्त्र का कथन है और वायव ही वायव का वात पर और दिया है कि प्रायश्चित्त योग दर्शन को उन्हीं अर्थ ने लोक को दृष्टि में अवलोकित का दिया है।

शास्त्रर एवं रोधापुष्पात् की आरणा है नो परिचित होना आवश्यक है। उनके अनुसार आत्मा की कार्य सिद्धि का ज्ञान चित्त के कार्ययोग द्वारा नहीं, परन्तु चित्त की वृत्तियों के वन और उन्हीं शरीरों में प्रीति करो पर प्राप्त होता है, जिससे हमारा सामान्य जीवन और द्रव्यज्ञान हमारी विचार प्रकृति को बाधित कर देता है। यद्यपि "सुहृन्ध" का ही प्रत्येक योग में विफल है, तथापि अन्य विषयों में चित्त हमारी जेना उन्हीं अर्थ नहीं कर पाती। इस कारण यह अवश्य आवश्यक है कि हमने जेना की अवलोकित दित्त में उन्मुख करो के लिए कति शास्त्र का अर्थ अनुसार का अनिवार्यः प्राप्त किया जाए। "योग दर्शन" का विषय में चित्तवृत्तियों के विरोध पर का देता है, और वायव ही वही

१- The systems of Indian Philosophy p 309

२- The Indian Philosophy, S. Radhakrishnan, p. 108

बुद्धता है यह सुकाम होता है, कि वित्त की वृत्तियों का निरोध उन्मत्त और वैराग्य के द्वारा किया जाए। यही बात गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कही है। काः एक परिभाषा है वह स्पष्ट हुआ कि डा० एच० राधाकृष्णन् ने वहाँ वित्तवृत्ति निरोध का महत्त्व प्रकटित और प्रतिपादित किया है, वहाँ यह भी समझाने की चेष्टा की है कि बीच और पुरुष (ब्रह्म) का सम्बन्ध की कौन सी बात है। एक उन्मत्त योगी का व्यवहार यही ज्ञेय होता है कि योग ब्रह्म के समान सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करते तदाकाशा की स्थिति की उपलब्धि करे।

विभिन्न प्रकार के योग

भारतीय जीवन का है उन्मत्त और धार्मिकता के तत्त्वों के बीच और बुद्धमान जन्म की नव्यता बीचप्रवृत्ति और पातविवृत्ति के परिचित है। योग की सधन प्रणाली में भी सम्भवतः जीवन की विभिन्न कीटियों और प्रणालियों के कारण विभिन्न रूप उत्पन्न होकर। डा० राधाकृष्ण ने एक विषय पर काफी प्रकाश डाला है। जिस संज्ञिता के आधार पर उन्होंने " योगसूत्र उपनिषद् " का ज्ञान करते हुए चार प्रकार के योग कहा है -

- १- मन्त्र योग
- २- हठ योग
- ३- छन्द योग
- ४- राज योग

योग के उपर्युक्त चार प्रकारों में से मन्त्र योग

१- उन्मत्त वैराग्यान्वीतनिरोधः । योगसूत्र १।१२

२- उन्मत्तैव तु कीर्तय वैराग्यान्वीत न वृद्धते ॥

- गीता ६।२५

की विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत पवित्र धार्मिक ग्रन्थों और श्रुतों का उपयोग और प्रयोग किया जाता है और इसीलिए इस योग की गणना बाद (वैदिक) के रूप में की जाती है। इसकी मुख्य श्रिया पुरातत्त्व है^१। मन्त्र योग के प्राजापिक सप्तम योग विष्णव उपनिषदों में मिली है^२।

सप्त योग की विशेषता यह है कि इसकी साधना के द्वारा चित्त की वृत्तियों का वश कर्मा परिहार हो जाता है और इसमें तुरीयावस्था के ज्ञान ' सप्त ' की स्थिति का वाक्प्राप्त होता है, जिसके परिणामस्वरूप चित्त की ज्ञानी स्थिति उपलब्ध होती है^३। सप्तयोग बुद्ध-सिद्ध योग के साथ संतुष्ट होने के कारण साधकों की दृष्टि में सर्व श्रेष्ठ योग है। इस धारणा के मूल में यह विश्वास भी मौजूद है कि सप्त योग में चित्त और उरीर दोनों का त्त के साथ संतुष्ट होने पर पूर्ण ज्ञान प्राप्ति हो जाती है। इस योग का परिचय ' षष्ठ्यं संख्या ' में दिया गया है। इसके

१- श्री० उद्भव० ब्रिन्ध : गौरसनाथ सप्त व कनकटा योगीश्व ५० २७३

२- श्रीचर्चा सप्तार्ज ब्रह्मसूत्रे शृणु ज्ञातः ।

मातृकादिभुक्तं मन्त्रं वाचस्पत्यं तु यो जपेत् ॥

श्रेष्ठं ज्ञानं ज्ञानमणिमादिशुणा न्यतम् ।

वत्पुष्टिदिग्गं योगं ज्ञेयं वाचस्पत्यः ॥

- योगसूत्रोपनिषद् २१, २२

तथा

उत्तरेण पश्चिमादि उत्तरेण विहितम् ।

संस्तुति मन्त्रो यः सर्वविशेष जप्यते ।

गुरुदाश्यात्पुष्ट्युन्माया विपरिणी भवेज्जपः ।

सोऽहोऽहोऽहोमिति यः स्वात्मन्युपयोगः स उच्यते ॥

- योगसूत्रोपनिषद् १३०, १३१

३- गौरसनाथ सप्त व कनकटा योगीश्व ५० २७३

४- षष्ठ्यं संख्या ५० ६२

वसिष्ठ ब्रह्म उपनिषद् ग्रंथों में भी इस योग के उपाय दिए गए हैं।

हठयोग पर विचार करते हुए यह स्मरण रखा जावे कि शास्त्र ग्रंथों में उक्त उक्त प्रायः प्राण-निरोध-प्राण साधना के रूप में किया गया है। गुरु गोरक्षा नाथ ने जिस हठयोग का प्रचार किया वह प्राचीन परम्परा के बहुत दक्षिण दिशा में नहीं है। 'ह' का अर्थ पूर्व वीर 'ठ' का अर्थ 'चन्द्र' है। अतः पूर्व वीर चन्द्र के योग को ही हठयोग कहते हैं :

कारः कविः पूर्वकारचन्द्र उच्यते ।

सुचिन्तमयीनाम् हठयोगी निगम्ये ॥ २

'योग सिद्धोपनिषद्' में भी यही निर्दिष्ट मिलता है।

उपरोक्त बाधाओं के यह क्या जा सकता है कि पूर्व कर्मा प्राणवाह वीर चन्द्र कर्मा वपनवाह के योग का प्रमाण प्राणायाम के माह निरोध करना हठयोग है। उक्त वसिष्ठ पूर्व को उक्त वीर चन्द्र को भिन्ना नाड़ी माना गया है। इन नाड़ियों को रोक कर पुष्पुन्ना मार्ग के प्राणवाह के संवर्धन करने की क्रिया को 'हठयोग' कहा गया है। उक्त हठयोग के हठ विधि प्राच्य होती है। वस्तुतः हठयोग के मूल अर्थ के सम्बन्ध में यह अनुमान ठीक ज्ञान प्रकट है कि यह उक्त शास्त्र एवं प्रकार की भी विधि हठविधि विधि जिन की वाता की बातों की। 'हठयोग' उक्त का सम्बन्धः उक्त प्राचीन प्रयोग 'नीलपुष्पमायान्' में बताया है। 'योगसरोज' में हठयोग का प्रस्ताव देना, प्राणायाम तथा धीति

१- हठयोगविन्यस्तः कीदृशः परिकीर्तितः ।

गच्छति च जगत् पुनः व्याप्तिरस्य ॥

२- सिद्ध सिद्धाह पद्यार १/६८

बाह्य चतुर्ण के विधान का है। चतुर्ण है नाड़ी की दृष्टि होती है, और अन्य में परमानन्द की उपलब्धि होती है। उक्त ग्रंथ में छत्तीय का दूसरा भेद है नाडिका के अन्तर्गत पर दृष्टि बना कर वाकाल में कीटि पूर्व के प्रकार का स्मरण करना और खेत, रथ, नील तथा कृष्ण रंगों का ध्यान करना। इस शास्त्रा के द्वारा साधक को दीर्घ आयु होती है और वह हजारों जन्मों तक जीवित रहता है। यह भी विवेचित नहीं है।

राजयोग के विषय में मुख्यतः यह कहा जा सकता है कि योग वास्तव में और व्याख्यात्मक शक्तियों से भी सम्बन्धित है। इस योग में ज्ञान योग की भाँति मानसिक क्रियाओं की प्रवृत्ति होती है, परन्तु इसी प्रकार एक मात्र प्रयोग नहीं। छत्तीय और राजयोग की विभिन्न योग साधन प्रणालियाँ होकर भी एक दूसरे की प्रेरणा है, और एक दूसरे की सहायता करती हैं।

उपलब्ध ग्रन्थ, छत्तीय और राजयोग के बहि-रिक्त भी और प्रकार के अन्य योगों का अनुसन्धान उचित कई साधकों ने किया है। वे हैं तारयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, छत्तीय, भक्ति योग आदि। यह एक बड़ी भ्रमक बात है कि ये चार योग सर्व नहीं मिलते। हमारा उद्देश्य केवल उपलब्ध योगों के विषय में थोड़ा सा प्रकाश डालना मात्र है। हमारा मुख्य विषय है- " छत्तीय और भक्तियोग का तुलनात्मक अध्ययन " विवेचन (छत्तीय परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन)।

१- छत्तीय प्रीति ३७

२- भक्तियोग १० ६२

“ योग ” क्या है ?

प्रश्न उठता है कि “ योग क्या है ” वाच के दृष्ट में “ योग ” शब्द अपना लोकप्रिय होता जा रहा है कि वास्तविकता में ही नहीं बल्कि विश्व के लगभग सभी देशों के निवासी इस बीर वाक्यांश को देख रहे हैं। योगात्मक होकर ही योगशास्त्र पर विन्म विन्म लेखकों द्वारा टीका लिखी एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की बाढ़ भी बागई है। ऐसा क्यों ? किसी भी विषय का वस्तु का इस प्रकार जब सत्य ही में वितरित होता है तो उसके पूर्वापर को जानने की इच्छा मानवीय प्रकृति है और जब उसके परा-काष्ठा के एक निश्चित सत्य पर मानव की सत्य प्रकृति पूर्ण जाती है तो वात्स्य होना है। वर्तमान भीतिवत्ता के दृष्ट में जिस प्रकार भीतिवत्ता की वस्तुओं का विस्तार एक विस्तृत गति में हो रहा है उसी प्रकार योगात्मक होकर, योगविद्या पर वैज्ञानिक तरीकों का क्रम चल रहा है। इसके साथ साथ यह भी देखने में आया है कि जो भी वास्तविक योग पर साहित्य उपलब्ध हो रहा है वह महर्षि पातञ्जलि प्रणीत योगदर्शन के तीसरे अंग “ वाचन ” को लेकर इसके वितरित लोक प्रकार के नये नये वाचनों को स्वयं प्रायोगिक रूप लेकर साहित्य का रचना कर रहे हैं। इन वाचनों में मुख्य रूप से शीर्षासन, स्वर्णासन, वष्टकपासन, वृत्तिकासन आदि हैं। वस्तुतः यदि यह देखा जाय कि इन स्वयं निर्मित वाचनों का शास्त्रीय दृष्टि से क्या प्रमाण है तो ज्ञेयतः बाधुनिक लेखकों के पास कोई जका उत्तर नहीं होगा। योगदर्शन के अवलोकन सार कीर्तन, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर बहुत ही कम साहित्य उपलब्ध है और इन पर लेखनी नसानी बाते बहुत ही कम लेखकों को मिली क्योंकि वास्तव में उनका कोई स्वयं का अनुभव नहीं है।

उपर्युक्त तथ्यों पर दृष्टिपात करते हुए यह विज्ञाता उत्पन्न होती है कि “ योग क्या है ” इस पर विचार कर लिया जाय। जैसे कुछ छुड़ होने पर भी उसका वाच्य महादेश के अन्त्यन्तर को धर

करके प्रजा को संवीक्षित करता है उसी प्रकार योग साधारण मनुष्यों के लक्ष्य होते हुए भी उसकी स्तिब्ध भावा ने मानव के धर्म-जीवन को संवीक्षित कर रखा है । साधारण जन उत्पन्न तथा न्याय के साथ बहुत कम सम्बन्ध रखी हैं । उत्पन्न की वस्तुन्मत्त वस्तुष्ट भावा में वस्तुविक्रि मित्या कल्पनाओं को निमित्त कर देने पर उनके हृदय में उस मित्र की वीर कुछ बाधुष्ट होती हैं । यदि कहा जाए " उत्पन्न धृयात् " तो किसी के हृदय में नहीं बैठेगा, किन्तु यदि कल्पना मित्या कर कहा जाए " वस्तुविक्रि सत्त्वं व सत्त्वं व सुखाधृयात् । वस्तुविक्रि सत्त्वादि सत्त्वं विविच्यते ।" तो सभी बाधुर्निवृत्ति होगी ।

भारतीय सत्त्ववेत्ताओं ने तप- त्रय (बाध- पाति, बाधिविक, बाधिविक्रि) के सुक्ति प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के योग मार्ग लीज निकाले । जब तक मानव यह नहीं जान पाये कि शरीर के वन्तर्गत ध्या फलार्थ हैं , विले परिणाम स्वरूप दुःख है वस्तु है तो उसे दूर करने का प्रयत्न ही क्या करेगा ? वस्तुतः मनोविक्रि ने वन्तःकरण कुच्छय के वन्तर्गत मन को ही दुःख- सुख का कारण लीकार किया है । मन की वन्तर्गत उल्ला स्वाभाविक धर्म है। सभी वन्तर्गत को कुन्तर्ग है कुन्तर्ग की वीर है जाने के लिए मनोविक्रि का मार्ग योगान्ध्यात है । उस योगान्ध्यात है शरीर के मल , विलेप वीर बाधरण छट जाती है वीर प्राणी को वकी वास्तविक स्वरूप का मान हो जाता है। फलविक्रि ने " योगवर्त्तन " के प्रथम सूत्र में योग है वित्त की वृत्तियों का निरोध होता है का उल्लेख किया है । वित्त की वृत्तियों का निरोध होने पर वृष्टा वकी स्वरूप में वल्लित होता है । लेकिन जब प्रथम यह उल्ला है कि वित्त की वृत्तिरोध ही योग है कला नहीं , क्योंकि वित्त की वास्तविक रायत वीर वामत विविध वल्लित हो उल्ला है । रायत

१- महामात्र - बाधिविक्रि ७४।१०३

२- योगवित्तवृत्तिनिरोधः । - योगवर्त्तन १।१

३- वता वृष्टस्वरूपे वल्लितम् ॥ योगवर्त्तन १।२

बन्धनता घटने से ही शास्त्रिक स्थिति नहीं आ जाती, तामस कल्पा भी ही होती है। सत्कृता उही प्रकार की बाधत्वहीन कल्पा है, पर वह ताम-सावका है। केवल वृत्तिरहित ही योग नहीं है, प्राण्य प्रवृत्ति प्रवृत्ति आदि किसी तत्त्व में उच्छास्त्रिक स्थिति करके वृत्तियों का जो रोग होता है, वही योग है। सत्कृता में चित्त उच्छास्त्रिक किसी तत्त्व में स्थित नहीं होता। जिस प्रकार बहोरोकार्य आदि के फल से भी चित्त की गति रुक जाती है, किन्तु उसको योग ब्रह्म कल्पा ही कहते हैं। चित्तिरिया सत्कृताव बाधि मानस रोग विशेष भी उही प्रकार के हैं। ये सब विषय और जड़ कल्पा हैं, परन्तु योग अवशत तथा पूर्ण ज्ञान कल्पा है। बाण्य दृष्टि से दोनों में कुछ सादृश्य होने के कारण योग विग्रान्त होती है, पर ये दोनों चित्तावस्थाएं तथा परिणाम बन्धनकार और आलोच की भाँति विभिन्न तथा विपरीत हैं।

तत्त्वविज्ञान द्वारा यह अनुभव किया गया है कि यही चित्तवृत्तिनिरोध - योग, सुषुप्त शरीर के अनुरूप ही सूक्ष्म शरीर के संश्लेष को ब्रह्मात्मा हुआ विग्रामात् करके परमात्मा का साक्षात्कार कराने में पूर्ण सामर्थ्यमान है। इस बात का उल्लेख करने में मुझे कौन कल्पा का सहारा देने की आवश्यकता नहीं है कि केवलान्त इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय विच्छेद होती है क्योंकि जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का निमित्त कारण वह ब्रह्म है, मान विज्ञाता कहता है किन्तु यही योग समाधि में दुःख का निदानाभाव करके हुए ब्रह्मण के बन्धनों को काटकर सर्वथा सर्वशक्तिमान परमवृत्तव सर्वव्यापक ज्ञान तत्त्व 'पुरुष विज्ञान' का साक्षात्कार कराता है। और जीव के लिए यह क्रीड भी है।

एक ही ज्ञान जब कुछ काल तक ठहरता है और वृत्ति अवाप्ति ही उस ज्ञान से घटती ही तब उसे ध्यानरूप योगांग कहते हैं।

१- ब्रह्मावस्था । केवलान्त दर्शन- १-२

२- ब्रह्मकर्मविपाकात्मा रमरापुष्टः पुरुषविज्ञानः संस्वरः ।

- योगदर्शन १-२४

जब वही स्वतन्त्रता खानी प्रगाढ़ होती है कि सभी कुछ भुलकर यहाँ तक कि वही को भुलकर, केवल ज्येष्ठ विषय में चित्त को स्थिर रखा जाता है जब वायुत सञ्ज्ञाधीन स्वीय को समाधि लेती है। समाधि का यह स्वरूप सम्पूर्ण रूप से समझना चाहिए। जब लोग लोक प्रकार के स्वयं भावों को या वाचस्पि माय को कसता वायुत ज्ञान धूम्य भाव को समाधि समझ लेती है। वास्तव में उनके वायुत योग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

विषय भेद से समाधि भी लोक प्रकार की होती है। क्या- स्वीय वीर निर्वाण समाधि। स्वीय समाधि का स्वीय भाव वस्मिताभाव में या वस्मिता भाव में समाधि होना है। इसके अन्तर्गत कार्य ही प्रकृतः ज्येष्ठ वस्तु की धारणा का वस्मिता करना पड़ता है वीर वही धारणा वस्मिता करते करते ध्यान में परिणत हो जाती है। ध्यान का वस्मिता करते करते जब ध्यान प्रगाढ़ होता है सभी उस ज्येष्ठ वस्तु में समाधि होती है।

महर्षि पाँचसि के वस्मिता योग के दो का वाचन स्व प्राणायाम को लेकर वायुनिक योगी योग पर जो वाचस्पि लिख रहे हैं, इस वाचस्पि में न ही महर्षि पाँचसि के अनुसार राजयोग का ही उल्लेख है वीर न हठयोग की पूर्व परम्पराओं के अनुसार ही यह उपलब्धि है। यह ही मध्यम मार्ग अपनाते हुए वाचस्पि वर्णन कर रहे हैं जिसका वाचस्पि न राजयोग है ही वीर न हठयोग है। वायुनिक कास में वैश-विशेष में बहुत से मध्यममार्गी योगी हैं जो योग के स्वरूप या योग के नाम को लेकर ही प्रसिद्धि पा रहे हैं। वस्तु वात ही यह है कि योग के नाम पर ये नामधारी योगिराज केवल पर भी पुस्तकें लिखकर मानव जाति को पर प्रष्ट कर रहे हैं।

जिस प्रकार पाँचसि का राजयोग वस्मिता योग है उसी प्रकार हठयोग परम्परा में भी वाचन, प्राणायाम, मुद्रा, प्रणालार

ध्यान एवं समाधि (नाद) उल्लेख की है । हमारे देश में उठ्योग की मुख्य दो परम्पराएँ हैं- गौरानाथ परम्परा एवं मार्कण्डेय परम्परा । गौरानाथ परम्परा का मुख्य ग्रन्थ ' हठप्रदीपिका ' एवं मार्कण्डेय परम्परा का मुख्य ग्रन्थ ' षट्षण्ड संहिता ' है । इन दोनों परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन एक लोच प्रबन्ध का विधिगत है ।

‘ उठ्योग का वास्तुनिक स्वरूप ’

वर्तमान युग में योग के नाम पर उठ्योग के वास्तुओं का प्रसार हो रहा है, क्योंकि ' योग ' शब्द जना व्यापक हो गया है कि संसार के सुखितन बहुत देशों के अतिरिक्त लगभग सभी देश ' योग ' से प्रभावित है। गीता में भी कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, उन्म्यासयोग, समत्वयोग, सात्य आदि उपलब्ध होते हैं । इसके साथ साथ ही गीता के अतिरिक्त योगियों ने अपनी लैच्छानुसार मन्त्रयोग, लययोग, शब्द योग, तन्त्र योग, नाद योग, हाथ योग एवं उठ्योगों का आविष्कार कर समाज के समस्त प्रवृत्त कर दिया है। पाँचसि ने भी योगदर्शन में ' श्रिया योग ' शब्द प्रयुक्त किया है ।

लोकमान्य बाबू गंगाधर तिलक ने भी एक प्रकार के कर्म योग पर बहुत बल दिया है। महात्मा गांधी जीर महर्षि वरविन्द ने योग की व्याख्या अपनी ढंग से की है। परमहंस रामकृष्ण ने लेकर विवेकानन्द ने योग शब्द का प्रयोग ही किया है किन्तु वह वाच के योग से विस्तृत भिन्न था । महर्षि मण्डे योगी ने भाषातीत योग का सिद्धान्त निकाला है और वाचार्य हर्षीत जी ' ऐश्वर्य के आनन्द ' की ही योग विषयक आनन्द समझते हैं । एही प्रकार वर्तमान समय में धीरेन्द्र प्रख्यारी ने भी दृष्टान्त पर बाबू फुटा

१- उपःआध्यायैस्वर प्रणिधानानि श्रियायोगः ॥

- योगदर्शन २२१

एवं प्राणायामों से होने वाली कस्तूरी लाभों से देश-विदेश की जनता को अवगत कराकर उन्हें छठयोग सीखने से लिए वाकचर्चित कर दिया है। स्वामी विमानन्द का योगात्म, कणिकेश, कल्याणन्द का योगात्म, सुौर (विहार) योगेश्वरानन्द का योग विजयविपाक, कणिकेश, स्वामी कृष्णानन्द द्वारा स्थापित कृत्यधाम होनावाला (पूजा) तथा स्वामी विष्णुविमानन्द द्वारा संवाति धन्वतरि योगात्म नयूर ठाम, त्रिन्त्रम (केरल) एवं योगा केन्द्र वाल्मीरिन आला, योगाद्विरीट, पैराठाण्ड नेष्ट वाण्माय, वाण्मैण्ड, योगारिन्ध कीलनी, सुखीन न्युयार्क, पुन्दावन योगा कर्म ग्राह पैली, ईतोफौरनिया (सुव्सेसोरे) आदि योग के वाक्म हैं तथा नैपात योगा इन्स्टी-ट्यूट काठमाण्डू (नेपात), इन्स्टीट्यूट फार क्वालिफ़ेड योग नरेक्मर्ग पैष्ट परम्न। इण्टरनेशनल बोर्ड वाक योग शान्ताश्रम बम्बई एवं वरविन्द वाक्म पाण्डिपैरी (उज्जयिनी) से सभी वाक्म छठयोग की क्रियाएं सिखाते हैं। इन वाक्मों के अतिरिक्त देश-विदेश में छात्रों की संख्या में ऐसे प्राकृतिक चिकित्सातम भी हैं जहाँ पर प्राकृतिक चिकित्सा के साथ साथ वाक्म प्राणायाम एवं मुद्राओं का अभ्यास कराया जाता है तथा छठयोग की क्रियाओं के (वाक्म, मुद्रा, प्राणायाम एवं अङ्कुरा) द्वारा शरीर उद्घन कर अन्धान्ध प्रकार के कलि रोग जैसे- पक्षा, कृष्ण, मृगिश, उच्च रक्तचाप, जर्त, मगन्धर, प्रार, पयरी, गृध्नी, पाण्डु अतिरेक एवं केन्धर जैसे भयानकतम रोगों की चिकित्सा की जाती है और इन चिकित्सा केन्द्रों के माध्यम से लोगों की वाक्मीकता मिल रही है।

देश विदेश के सुविख्यात श्री धीरेन्द्र प्रज्वारी विन्हीं केन्द्रीय वाक्म की बीर से वाक्म प्राप्ति है, वे मन्त्रहार कटरा वम्भु (भारत) एवं विज्वाखन योगात्म नई दिल्ली के वाक्मों में नवतुलक एवं सुविद्या की छठयोग की क्रियाओं की ३-३ पाठ की शिक्षा देकर केन्द्रीय

सरकार के विवालय में योग की शिक्षा को अनिवार्य कराकर योग शिक्षकों की नियुक्तियाँ कर उद्योग का प्रसार एवं प्रसार मास्टर वर्क में घर घर तक पहुंचाने का बड़ा प्रयास किया है। शहर विश्वविद्यालय में योग के विषय की डिप्लोमा एवं डिग्री कोर्सों में भी जगह देकर योग प्रसार में संघर्ष किया है। जापान सरकार ने सरकारी एवं प्राइवेट दोनों की कंपनियों एवं फैक्ट्रियों के कर्मचारियों को उनके नियमित पैसों से वसतिरिक्त धरालि देकर एवं बकाया प्रदान करके उद्योग की क्रियाओं को रोकने के वादेले प्रसारित किये हैं। इसके साथ साथ योग का प्रसार तिब्बत, चीन, लां, कर्ना, दक्षिण पूर्व एशिया, बांग्लादेश, दक्षिण अफ्रीका, मलेशिया, स्पेन, पुर्तगाल, डेनमार्क, स्विटजरलैंड, पोलैंड, स्लोवाकिया, जर्मनी, फ्रांस, बांग्लादेश, लांटी, यू.एस.एस.ए., मैक्सिको एवं रूप में भी हुआ गति है बढ़ रहा है।

वर्तमान उद्योग की पुस्तकों के अध्ययन योग के बहुत प्रसार एवं वाधुनिक योगियों के सम्पर्क से होजाएँ, जगिजन, वृत्तिका-जन, गुरुति बाजन बादि को नियमित करना एवं उनके होने वाले शारीरिक एवं मानसिक तर्कों का प्रसार वसतिरिक्त के साथ किया जा रहा है। होजाएँ-जन, जगिजन नाम का कोई भी बाजन उद्योग के मुख्य ग्रन्थ 'उत्प्रेक्षिका' गोरजानाथ परम्परा एवं 'धेरण्ड संलिता' मार्कण्डेय परम्परा में उपलब्ध नहीं है। धेरण्ड संलिता के प्रतीयोपीत के वर्तमान ३०, ३१ में स्तोक द्वारा मुद्रा प्रकरण में 'विपरित्कर्त्री' मुद्रा का बख्य उल्लेख उपलब्ध होता है। एवं नाड़ी की ऊपर तथा चन्द्र नाड़ी की नीचे कर लेना चाहिए। यह 'विपरित्कर्त्री' मुद्रा सभी तन्त्रों में गुप्त रही है। शिर की भुज्जी में लगाकर दोनों हाथों को टेक है, दोनों पाँवों का ऊपर उठाकर धिर करे। जो विपरित्कर्त्री मुद्रा कहते हैं। इसके वसतिरिक्त यह विपरित्कर्त्री मुद्रा या होजाएँ नाम है न तो कोई

१- उर्व्वं च योषितपूर्वं चन्द्रं पाप्य बानवत् ।

विपरित्कर्त्री मुद्रा जगन्निष्ठु गोप्तिता ॥ ३-३०

भूमौ शिरस्य संस्थाप्य कस्तुर्न जातिः ।

उर्व्वपादः स्थिरोभूत्वा विपरित्कर्त्री भवति ॥ ३-३१

वाहन है और न मुद्रा ही उपलब्ध होती है। बाहुनिक छत्तीसियों ने मुद्रा को 'शीर्षासन' नाम देकर उसके लाभों का बहिर्गोपितपूर्ण प्रचार कर दिया है। कई छत्तीसियों को शीर्षासन को वाहनों का राजा कही हुए सुना गया है। वही प्रकार सर्वांगसन जिसे स्वास्थ्य की दृष्टि से शीर्षासन के बाद रखा गया है किन्तु कही होने वाले लाभ को शीर्षासन की तरह ही है। इसका उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं है। बाहुनिक ग्रन्थ 'बहिरंगयोग' में सर्वांगसन की प्रक्रिया एवं लाभ इस प्रकार है -

“ पीठ के सहारे चित्त होकर छैट जायें और दोनों टांगें नीचे फैल परस्पर जुड़े रहें। जब कन्धों से पैरों तक का समस्त भाग ऊपर की ओर सीधा उठाये, दोनों मुझारं कोहनियों तक वृद्धता के साथ मुनि से जुड़ी रहे। फिर कोहनी के मोड़ से हाथों को उठाकर कमर को फड़क कर कन्धों से पैरों तक सारे शरीर को सीधा तान दें- समस्त शरीर दोनों कन्धों की प्रीमा पर बाँध करे। इस प्रकार टांगों को सीधा रखी हुए पैरों को मिलाएँ, पैरों के लँगूठों की नाक की सीध में रखी हुए, समस्त शरीर को कन्धों की प्रीमा पर तान दें एवं हाथों से कटि भाग को फड़क कर बांधें रहें। यथाशक्ति वही स्थिति में रहकर बौद्ध दें। इसके बीच लाभ भी बताये गए हैं। जैसे- रक्तशुद्धि, मस्तिष्क एवं हृदय-कुस्कुलों की शुद्धि के लिए यह वाहन प्रसिद्ध है। शिर नेत्र मस्तिष्क की शक्तियों को विकसित करता है। नेत्र ज्योति को बढ़ाता है। वातरोग, रक्त विकार को दूर करता है, शिर पीड़ा तथा रक्त पित्त, पाण्डुरोग को शान्त करता और पाचन शक्ति की वृद्धि करता है। घट की वाह को निजात बाहर फेंकता है।” वही प्रकार के उल्लेख बाहुनिक ग्रन्थों में अन्यत्र भी प्राप्त होते हैं। शीर्षासन एवं सर्वांगसन की तरह ऐकहों प्रकार के योगासनों का प्रचार एवं उन वाहनों से होने वाले स्वास्थ्य लाभ पर अन्यान्य प्रकार की पुस्तकें प्राप्त हैं। जैसे- 'योगासन और स्वास्थ्य',

‘योगाचार्यो वै कलि रोगो की चिकित्सा’, ‘आत्म्य के लिए लिखे
वाक्य’, ‘ऐसा और वाक्य’, ‘योगा फीर चूटी’ वादि ।
हठयोग पर बाधुनिक दृष्टि में निम्न कीटि का वास्तव्य उपलब्ध होता है ।

हठयोग की क्रियाएं (वाक्य, प्राणायाम एवं
अद्व. कर्म, मुद्रा) प्रत्यक्षार के निष्कर्षों के बलाने से मुक्त हो, वरि वृद्ध
ही कमा रहण्य ही वादि दुर्लभ हो, योग के लो की की के बलाने में वास्तव्य-
रहित होकर लो वाने पर वरि चिकि प्राच करता है ।

ल्ल प्रकार योगाचार्य के लो है योगियों के बलाने
कात्कारी उचितता वाचनी है । की की हठयोगी प्राणायाम के बलाने से
प्राणों की वास्तव्य गति पर बलाने कर वाने के बलाने मुक्त कात्कार बैठ
वादि है और प्रलं कर वाचनी रहनी का वान प्राच करी है । ल्ल प्रकार योग
के वान पर प्रलं वास्तव्य में ल-ल्ल में योग के प्रति काच वदा और विवाच
उत्पन्न कर है । किन्तु ल्ले प्रलं की वास्तव्य और वास्तव्य केटार वान
में ल्ले की वकि योग के वान्य में वदा उत्पन्न हो वाचनी है ।

हठयोग में काय लो वान वदा वल्लो वान वरीर
हुवि वास्तव्य वान वल्ल है । लो अद्व. कर्म, वाक्य, प्राणायाम, मुद्रा ल्ल
वान्य की क्रिया का वास्तव्य ल्ल है । ल्ले वारा वरीर योगाचार्य में मुक्त
होकर, वान बैठ करता है । ल्ले वारा कर्म, फिच, वास्तव्य के वान

१- सुता वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधिर्लुप्तोऽपि ।

बन्धात् विदिमानोति सर्वविषयान्निवृत्तः ॥

- ह० प्र० १-६४

२- वामहृन्म जगन्मः लो वीर्यमाणः काष्टः ।

योगान्तेन संसृष्टं पटुर्दि जगत् ॥ ह० ह० १-८

नष्ट होती है। वायुनिक हवा भीतिक हवा है। अब भीतिकवादी हवा में योग भी भीतिक विधि के सिद्ध ब्यपित है। बाय संसार का प्राणी भीतिकवा की दृष्टि में हीनमन गति है दौड़ रहा है। काः समय के समय में प्राणी को चारों ओर योग करना पड़े उसे त्वरित लाभ मिलना चाहिए। बिना ही वाणिज्य कर्म करने वाले व्यक्ति मुझसे कहते हैं कि कोई कर्मकारी योग दिखाएं। बायों के हवा नहीं होता है। उक्त मुख्य कारण यह परिलक्षित होता है कि हवायोग की दिखाएं नियमपूर्ण, नहीं करते कमा ब्यापार योग भी स्वयं नहीं जानती और समय के गुरु होने का दावा करते हैं। परिणाम यह होता है कि फल बायों के विपरीत ही निकलता है।

पंचभूतात्मक दृष्टि और योग-तत्त्व

संसार ऐसा कुछ दिखाई देता है ऐसा नहीं है, यह बानन्धमय है, दिखायी देता है दुःखमय। यही ही माया है और यह माया हमारे एक एक मन और देश में फैली हुई है। उही कारण से संसार की प्रत्येक वस्तु प्रत्येक सम्यन्ध, प्रत्येक घटना होती है, वही नहीं दिखायी देती। उही कुछ भिन्न ही दिखायी देती है। हमारा शरीर पंचभूतात्मक है का है। और पंच भूतात्मक का का है, पर दिखायी देता देता है वही पंच भूतात्मक कोई दृष्टी योग है और यह शरीर कोई दृष्टी योग। अब पंच भूतात्मक शरीर को देता हम समझते हैं देता नहीं है, उक्त कोई भी योग हम प्रकृति में स्थित पंच भूतात्मक है प्रकृति नहीं है। हमारे शरीर में जो वायु है वह ऊपर के महाकाश से उदा मिलता हुआ है। और जो शरीर में प्रकृति का का है वह उदा संसार भर की प्रकृति से बहिष्कृत रूप से मिलता हुआ है। यह शरीर पित्त पर प्रकृति है उदा प्रकृति से एक पाण के सिद्ध भी प्रकृति नहीं ही समझता। योगियों के शरीर प्रकृति से बह निकलते हैं पर पित्त हाता में होती हैं उदा हाता में यह प्रकृति भी वही पाणि रूप से बह होती है। उमें यह दिखायी देता है

पूम्नी में, पर वास्तव में पूम्नी वह में है वीर वह वस्त्र के बन्दर है जो एक
 कस्मस बात माहम होती है। उसी प्रकार वस्त्र वास्तु के बन्दर है वीर वास्तु
 वास्तु के बन्दर । जैसे घर में घर की मिट्टी वास्तु को धरे हुए दिखायी
 देती है पर यद्यपि में वास्तु घर को धरे हुए है, वह सभी चीज़ों सम्पूर्ण
 पूम्नी एक महान् महान् के बीच में मिट्टी के एक छोटे के समान नहीं मनी
 है। यह महान् महान् वस्त्र के विहास वास्तुवास्तु के बन्दर एक सरोवर सा
 है वीर यह वास्तुवास्तु उसी में कई हुआ कई वास्तु महान् के भीतर है
 वीर यह वास्तु महान् उसी के अन्य गुण महान् वास्तुवास्तु के बन्दर है ।
 यह वास्तुवास्तु वस्त्र नाम्नी विष्णुवास्तु वस्त्र प्रकृति के बन्दर है वीर
 यह वस्त्र प्रकृति पर प्रकृति के बन्दर है वीर यह पर प्रकृति परमात्मा के
 बन्दर है। परमात्मा वस्त्र वस्त्र को धरे हुए है, उनके बन्दर यह सब महान्
 है वीर एक सबे पिरा हुआ यह वस्त्र है। यह महान् है पिरा हुआ है महान्
 वानन्दमय है। वस्त्र यह वस्त्र वानन्द के वस्त्र वीर हुए नहीं हो सक्ता ।

परन्तु यह दिखायी देता है दुःखमय ? वस्त्र
 कारण है वस्त्र वस्त्र माया । वस्त्र वानन्द, वस्त्र यह न देत पाना कि
 वस्त्र वानन्दमय महान् के बन्दर है। वस्त्र वस्त्र के बन्दर महती ही वीर यह
 वस्त्र के लिए वस्त्र, वस्त्र ही वस्त्र वस्त्र ही है कि वानन्दमय महान्
 के बन्दर रही हुए भी वस्त्र वानन्द के लिए वस्त्र रहे हैं । वस्त्र यह
 जान भी कहा है वस्त्र ? वस्त्र उत्तर यही है यह वस्त्र वन्दर है वस्त्र ।
 वस्त्र वानन्द में वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र
 एक वस्त्र हुए भी वस्त्र वस्त्र की वस्त्र है वीर वस्त्र है वस्त्र वस्त्र वस्त्र
 वस्त्र वस्त्र की वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र है वस्त्र का वस्त्र वस्त्र वस्त्र
 है । यह वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र वस्त्र है। वस्त्र वीर वस्त्र
 वस्त्र में वस्त्र वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र का वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र
 वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र
 वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र है वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र वस्त्र

जाता है। वात्मस्वरूप की उस विस्मृति के कारण यह वाक्य स्वल्प-धारे
 संसार वीर संसार के प्रत्येक पदार्थ की उसी वात्म-विस्मृति के फलाने से पैदा
 है वीर उसे उस दुःस्वप्न संसार में यह वानन्द को देखता है। अपनी वाफो को
 भुला हुआ है यह दुखी को की प्रज्ञान करता है ? वीर को मनु यह वास्तव
 है जिसकी सीप में यह मटकता है वह भी उसे ऐसे मटकने से की मित करता है ?

संसार में मिलने उषीन ही रहे हैं वे सब वानन्द
 की सीप के ही उषीन हैं, चाहे वह बच्चों का स्कूलों में पढ़ना ही या मैदान
 में खेलना, दुकों का व्यापार करना ही या सन्धान की बात करना, धन कमाना
 ही या नाम कमाना, चाहे विष्णु वीर सिंह व्याघ्र से डरना ही या उन्हें मार
 डालने की फिर करना, पुत्र से भागना ही या पुत्र से यह होना, कुछ हासिल
 ही या कुछ बेचना, राज्य कान्ति ही या परराष्ट्र पर बाधन करना, व्या-
 पार की दुकान ही बसा कर कारखाना। यह सब यह बच्चों के वानन्द की
 सीप के उषीन है। ये उषीन बच्चे हुरे हुए नहीं हैं, जन्म यदि वानन्द मित पाय
 तो हुरे हैं, न मित तो बहुरे हैं। पर जब तक वात्म विस्मृति की हुई है तब
 अपनी वाफो भुले हुए हैं तब तक प्रज्ञान के सहाय भी विस्मृत है, मार्ग भी
 भुले हुए हैं वीर स्वस्तिर अनामतः कल भी हुआ ही होता है। वस्तु यह पैदा
 जाता है कि वात्म-विस्मृत कोई भी मनुष्य संसार में सुखी नहीं हुआ। ऐसे
 सब प्राणियों के बचनों का अन्तिम अनुभव यही रहा कि जीवन व्यर्थ ही
 लगाया हुआ, वानन्द की सीप में कहीं कहीं मटके, पर वानन्द मित नहीं,
 उल्टे दुःख ही बढ़ता गया। स्वस्तिर यह कहा जाता है कि संसार दुःखमय
 है, पर दुःस्वप्न है पूर्ण प्रकृ हीन के कारण। बन्द कोठरी में, बलित वायु
 मण्डल से प्रकृ होती ही की स्नाने प्राण पसराने जाती हैं, वीर ही पूर्ण को
 मण्डल हैं, उनसे प्रकृ होती ही सज्जन दुःख से व्याप्त ही जाता है। पूर्ण
 से अपूर्ण का यह विषय है- संसार का वारा दुःख विरह-दुःख है। संसार
 का प्रत्येक प्राणी विरही है। चाहे उसके दुःख का कोई भी प्रकार हो, क्यों
 न रहा ही।

की, कहना और सुनिश्चित की जाती है। ऊँचा और सुन की उठोरा
 का नाम लेकर का की शास्त्र मिली है। बाज और हीन है उरीर पुई
 की बाज है। प्राणायाम के अन्तर्गत है विषय का विषय दूर की बाज है।
 प्राण के वायुप्राण स्व और का नाम होता है। प्राणायाम करने बाजों
 का उरीर भी उठता ही बाज है। अन्तर्गत (उन्नीयों की विषयों है विषयों)
 के अन्तर्गत है बाज की मनीय और मानसिक शास्त्र मिली है। प्राणायाम
 और अन्तर्गत उन्नीय अन्तर्गत का नाम होता है। वायु प्राणों में होता है
 है और प्राण की विषयों प्राण होती है और का का बाजों है की सुन
 का और उन्नीय भी सुन का अन्तर्गतों के उन्नीयों का नाम होता है। उन्नीय
 अन्तर्गत, का अन्तर्गत पर होता है और प्राण की विषयों और अन्तर्गत
 प्रा १० है।

वट अन्तर्गत विषय है-

- १- अन्तर्गत- बाज की अन्तर्गत के अन्तर्गत सुन
 का है।
- २- अन्तर्गत - बाज की अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत-
 का है।
- ३- अन्तर्गत- उरीर की अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत
 कर है।
- ४- अन्तर्गत- बाज उरीर की अन्तर्गत का अन्तर्गत
 अन्तर्गत का है।
- ५- अन्तर्गत- अन्तर्गत की अन्तर्गत के अन्तर्गत
 है।
- ६- अन्तर्गत- अन्तर्गत की अन्तर्गत का
 अन्तर्गत है।

७- वैश्व- पुष्टि उत्पन्न करने की शक्ति ।

८- वैश्व- सब पर शासन करने तथा पद
व्यवस्थाओं पर नियम प्रस्थापित करने की शक्ति प्राप्त कर लेता ।

उपरोक्त सभी सब शक्तियाँ योग की शक्ति
के ही प्राप्ति होती हैं ।

योगी जिना जैन सभी ही प्रकृति के सारी
शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। जब योगी की शक्ति और पुरुष का पद जान
लिया है उस उसके कर्म 'कर्म' कर्मों का उदय होता है। उसे बलवान्
की प्राप्ति होती है। वह सब प्रकार की शक्तियाँ के प्राप्त कर ले लेता,
कर्मों के कारण ही वह सब प्राप्त करता है, क्योंकि वह जानता है कि वह
सब शक्तियाँ कर्मों के कारण प्राप्त हैं। कर्मों का रूप ही है। उस उसे कर्म-
का कर्म ही होता है, जिसे कर्म- पुरुष के कारण सब शक्तियाँ
निर्माण के रूप ही होती हैं।

सब शक्ति की प्राप्ति हुआ योगी जिना नेत्रों
के द्वारा है, जिना जिना के स्पर्शानुभव करता है, जिना कर्मों के द्वारा है,
जिना नार के द्वारा है और जिना स्पर्श के द्वारा करता है । उसी कर्मों के
ही सब शक्तियाँ ही प्राप्त होती हैं।

वैश्व- वैश्व (१-२५) में जैन
उपरोक्त सब प्रकार दिया है- " वैश्व ने योगी योग दिया, जिना योगी
कर्मों के द्वारा प्राप्त किया, कर्मों ने उपरोक्त सब शक्तियाँ और
विश्वानुभव ने उसी प्रकृति की ।

नियम

कर्मों के कारण पुरुष की स्पर्शानुभव करता

कैवल्यात्मक स्वरूप की उपलब्धि कर लेता है। वह प्रकृति और उसके कार्यों से सर्वथा विलम्बित रहता है। वह सभी की सर्वथा आतन्त्र्य (मुक्त) अनुभव करता है। उसके समस्त वैश्व कर्म निरन्तर ही जारी हैं। गुणों का कार्य योग और वफाई सिद्ध ही बान के कारण जब उसका कार्य विलम्बित बन्द ही जाता है। उसका समस्त ज्ञान एक काव्यिक है। पूरा मविष्य उसके लिए वर्तमान में मिल जाता है। कैवल्य प्राप्ति योगी के ज्ञान के सामने वैश्विक का समस्त ज्ञान माथेधार तथा समस्त लौकिक विषयों का ज्ञान कुछ नहीं है। सभी निःसार है।

पैरा मन्त्राय विद्यो धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय कथा
विद्यो वाद का सञ्जन - मञ्जन करना नहीं है, बल्कि ज्ञान के ज्ञान एक
वाक्यिक सिद्धान्त न रहें तो भी लिए यह भी कल्याणकारी हो जाता।
यहाँ पैरा वाक्य पैर और शास्त्रों की दार्शनिकता है। उसके समस्त विज्ञान
और वाक्या ने मानव की वैश्विक धीमा है ऊपर उठाया और प्राणी मात्र
के लिए कल्याणकारी व्यवस्थाएँ और धर्म-दर्शन प्रस्तुत किए। 'गुरुदेव निर्देश
करता है कि इस वाक्य का उपयोग त्याग के साथ करो। वाक्य मत करो यह
धर्म सिद्धांत ?' समस्त विश्वपरा के लिए ज्ञानवाक्य का सिद्धान्त पैर ने ही
तो समस्त ही दिया है क्या एक एक दार्शनिकता को पूरा करती है ? हमारा
धर्मनिर्देशवाक्य इसकी विश्वकर्मिता का प्राण है और विश्वकर्मिता वस्तु
कभी भी पूरा या पूर्ण नहीं होती वह तो ज्ञान बहार है। वास्तविक योग
विषय का ज्ञान-विज्ञान ज्ञान के पूरा के लिए, व्यक्ति के कल्याण के लिए
वाक्य है और या और उसकी मिति एवं ज्ञान की नींव ज्ञानी गहरी है कि
उसे उठावने की बात करना चाहें किने जाना है।

भौतिक विद्या पूरा वाधार विद्ये सुन्दर और

१- " तेन त्यक्तेन मुञ्चोपाः ना मुक्तः कश्चिदपि ।

- यमु० ३०१

सुख क्यों न हो वे एक दुःखता की कड़ी होती हैं और दुःखता अमान्य पृथ होती है, उन्हें व्यक्ति सुख होने की अपेक्षा कंधा जाता है। जीवन की वास्तविकताओं की पुनः साधन के नाम पर खैरी और भूरी की जाती है किन्तु उक्त उन दुःख साधन और पराधीनता का प्रतीक का जाता है। अतन्त्रता और सामाजिक सुरक्षा के निमित्त बाप संसार के अन्दर मिले कानून काये गये हैं या काये जा रहे हैं उनके नागरिक बन्धन में जकड़ा जा रहा है। ऐसा ही मौलिक व्यक्ति-क्रम विज्ञान एवं मौलिक सौत्र में ही है जिनमें मानव बन्ध बन्धान्तर का मुक्ति के लिए मौलिकता के फल के पीछे प्रयास करता है लेकिन जब भी फल उठा तो मानव ने अपने को बाध्यात्म की बेड़ियों में जकड़ा पाया। यह कड़ी विडम्बना है। कड़ी मौलिकता है, कड़ा रूप सामान्य रूप प्रकृति (माया) का है कि वह अपनी गोप में है किन्ती- किन्ती की ही उठने की अनुमति देती है।

जीति में लौटा नहीं जा सता पर वर्तमान का विश्लेषण करते उसे निर्दोष ही बनाया ही जा सता है। उनके लिए उबार दृष्टि है भारतीय विषा और उनके जीति को परता जा सता है।

सम्पूर्ण रूप से नहीं बौद्धिक रूप में भी यदि भारत की फैल वादित्व और व्याख्यात्मकता की उक्ति को टटोला जाय तो सामान्य स्तर पर होने वाली लोक विवेकधियों से क्या जा सता है। उनके व्याख्या ज्ञान से वास्तविकताओं के अन्तर्गत विस्तार और मन के अन्तर्गत रोग परस्पर क्रीना काफ़ी तथा विश्व सुख के मंडराते हुए वादलों की गहन खेप के लिए समाप्त हो सता है। यदि भारतीय व्याख्यात्मक विषा का प्रकार एवं प्रकार दृष्टगति है उनके मुख्य सिद्धान्तों के आधार पर ही। भारतीय योग विषा के द्वारा व्यक्ति बाहर से अन्दर पहुँच जाता है। एक योग कर्म के लिए सुख-दुःख की परिभाषा में परिपूर्ण हो जाता है। बाहर के विस्तार से विमुक्त हो जाता है और मौलिकवादी वस्तुओं से उन्मुक्त। उनके लिए पुरव और पश्चिम का विवेक समाप्त हो जाता है, अस्तु की तरह दृश्य विस्तार तथा फल की तरह गंभीर धारी दृष्टि की अपनी बाप व्याख्यात्मक करने की सामता जा जाती है जो उसकी चरम सीमा का पीक है।

द्वितीय अध्याय

सुखात्मक द्रव्यों का वैशिष्ट्य वर्णन

घेरण्ड संहिता एवं छठप्रदीपिका का सामान्य परिचय

छठयोग की श्रियाओं का सबसे अधिक प्रसृत विवरण 'घेरण्ड संहिता' में मिलता है। 'अष्ट कर्म', वासन, कुडा, प्राणा-वाम के भेदों का ऐसा निरूपण किसी अन्य ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। 'घेरण्ड संहिता' तान्त्रिक शास्त्रों के मत का ग्रन्थ है। तान्त्रिक मत है कि प्रकृति अनादि होना होता है, जो ही तत्त्व करके अपने उल्लेख किया गया है। तान्त्रिकों का योग ऊर्ध्वारि एवं उर्ध्वी प्रकार के योगों का समन्वय रूप है। उनके जन्मोपनिषत् में स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म ध्यान का भी प्रकार दिया गया है वरु तान्त्रिकों का है। 'पारमहंसी दर्शन' में छठ- योग एवं वृण्डलित योग का निरूपण नहीं है। वृण्डलित- योग तान्त्रिकों की प्रधान शास्त्रा है, जिसे इस ग्रन्थ में सुन्दर उल्लेख रीति से सम्मिलित है। पारमहंसी दर्शन में 'वर्णाश्रित मन्त्र तपः समाध्याः विद्वय' पुत्र में मन्त्र है ही विधि मानी गई है। दर्शन-कार ने कई स्थानों पर मन्त्र-विधि का वर्णन किया है। 'तस्य वाक्कः प्रणवः। तज्जपत्तदर्थं भावनम्' है प्रकृति का मत मन्त्र के विषय में स्पष्ट हो जाता है। घेरण्ड संहिता ने वाक्कः में प्रणव का ध्यान व्यपश्रित एवं तत्त्वों के भेदों का उल्लेख किया गया है। प्राणावाम की शास्त्रा मुख्य होने है वह संहिता छठयोग के वन्दनार्थ वाक्की है। वन्दन में छठयोग भी राजयोग में ही पर्यवसान है, तथापि 'पारमहंसी योग दर्शन' है इस संहिता का राजयोग विन्म है। पारमहंसी मत वैष्णवी है एवं वह वैष्णवी है। योग की उत्तम प्रवृत्तता है उर्ध्वी विन्म नहीं है। 'श्रीः' मन्त्र के अनुष्ठान है योग प्रवृत्त भाव को प्राप्त होता है। वह भी विद्वान् तान्त्रिकों का ही है। जो ही की गौरवान्ताय है 'योगयोग'।

१- यो० प० ४-१

२- .. १-२०

३- .. १-२५

एवं 'महासंन्यासी' ग्रन्थों में स्वीकार किया है। कास्मीर के जैन-दर्शन में भी यह सिद्धान्त (कौत) माना गया है।

३५० श्लोकों के इस ग्रन्थ में सभी योगों का स्वरूप बता दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रतिपादन रीति धरत, सुधीय एवं साधक के लिए अत्यन्त उपयोगी है। 'धेरण्ड संहिता' छट्तीयोग पर एक सुव्यवस्थित ग्रंथ है। यह ग्रंथ धेरण्ड कृष्ण जीवर लिख्य बण्ड कपाति के संवाद रूप में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में 'छट' शब्द की योग के रूप में प्रयोग नहीं किया है जबकि 'छटप्रतीकिका' में इस शब्द की 'योग' के रूप में कई स्थानों पर प्रयोग किया है। 'धेरण्ड संहिता' योग के स्थान पर 'छटस्य-योग' शब्द का प्रयोग किया है जो अन्य छट्तीयोग के ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। 'छट' शब्द का एवं धेरण्ड ने मानव शरीर को स्वीकार किया है। धेरण्ड के अनुसार 'छटस्य-योग' का तात्पर्य इस शरीर के माध्यम से योग-साधना कही हुई तत्त्व ज्ञान की उपलब्धि करना है। स्पष्टतः 'छटस्य - योग' कर्मा 'छट्तीयोग' योगिक क्रियाओं का ही निर्देश करता है। व्यापक में धेरण्ड संहिता छट्तीयोग का एक प्राप्ताधिक एवं विस्तृत ग्रंथ है जिसका अतिरिक्त रूप से क्रियान्वयन किया जा सकता है। इसमें आधिक विभिन्न योगिक क्रियाओं का निरूपण किया गया है।

१- पृ० प्र० १-१

२- पृ० पं० १-२

३- .. १-५

‘हठप्रदीपिका’ वेदादि पुस्तक के नामकरण से स्पष्ट होता है यह निम्न ही योग के उन शास्त्रों का निर्देश करती है जिनमें मुमुक्षुषावात्स-साक्षात्कार की वीर प्रकृत होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया है। इस ग्रन्थ के प्रथम श्लोक से स्पष्ट है कि यह ग्रंथ ‘वाग्मिनाथ’ द्वारा उद्घोषित है। ‘वाग्मिनाथ’ शिव का ही पर्याय है क्योंकि उनके पूर्व। उनके पूर्व कोई नहीं है। इसलिए शिव का नाम ‘वाग्मिनाथ’ रखा। इसी श्लोक में ‘वशिरोहिणी’ उक्त प्रकृत है जिसका कर्म नैमी या हीही है। स्वात्म-राम ने ऊपर किया है कि यह हठयोग विषा साधक की पहिलम के चित्त ही राजयोग रूपी पीठ पर बालक करती है। इसलिए यहाँ वीर योगाचार्यों द्वारा इस ग्रन्थ की प्रशंसा की गई है।

प्रकृत ग्रन्थ के श्लोकों में वशिष्ठादि ऋषियों के नाम प्रथम उद्घोष में वाजाने से इसकी पौराणिकता के प्रमाण स्पष्ट परि-रक्षित होते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रसंगत ग्रन्थ वशिष्ठादि ऋषियों के परम्परागत काल में लिखित किया गया है तथा प्रकृत श्लोक से यह भी ज्ञान होता है कि हठयोग के शास्त्रों की प्राचीनतम ऋषि भी ब्रह्मादि रहें हैं। वेद योग की प्राचीनता की पुष्टि यजुर्वेद, तन्त्रोद एवं तन्त्रोद की व्याख्या से भी होती है। एक वीर पुष्ट प्रमाण योग की प्राचीनता का है जिसका उद्देश्य सामान्य में जाया है।

योग की प्राचीनता के समग्र प्रमाणों के पञ्चाङ्ग

१- हठप्रदीपिका १-१

२- “ १-१८

३- यजु० १२-६८

तन्त्रोद १०-१०१-३

तन्त्रोद ३१७२

४- सामान्य ३३१०३

हठप्रदीपिका के प्रथम उपोक्त के पार्श्व स्तोक से यह विदित होता है कि मत्स्येन्द्र एवं गोरक्ष ही इस विद्या के मर्मज्ञ थे जसा उन्होंने ही कृपा से स्वात्माराम ने भी इस विद्या को जाना ।

योगीन्द्र स्वात्माराम कृत "हठयोगप्रदीपिका" योग साधना के क्षेत्र में अत्यन्त व्यावहारिक योगशास्त्र है, जिसमें अथवा अनेक और साधना- पद्धति के परिश्रम में योगसाधक को उत्तम राजयोग- फल की सिद्धि मिल जाती है । स्वात्माराम योगीन्द्र के "हठप्रदीपिका" ग्रन्थरत्न को वैदिकान्त योगी सम्प्रदायों, अन्त महात्मायों और सिद्ध पुरुषों तथा अनु-साधारण ने योग साधना के मार्ग निर्दिष्ट रूप में स्वीकार किया है और उनके व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुरूप योगाभ्यास कर योग सिद्धि और योगसुखि प्राप्त की है। हठप्रदीपिका यद्यपि हठ-योग शास्त्र है तथापि इस शास्त्र का प्रतिपाद राजयोग है जसा राजयोग और हठयोग दोनों का उत्तम समन्वय है । हठप्रदीपिका के चौथे उपोक्त में मनीषिणी और उपाधि की परमावस्था में स्वा-त्माराम ने जिस राजयोग की ज्योति प्रकाशित की है, उन्ही एक उत्तम स्पष्ट ही जाता है कि उन्होंने राजयोग की सिद्धि को ही दृष्टि में रखकर हठप्रदी-पिका ग्रन्थ का प्रणयन किया है। निर्मल और वस्त्रहीन मन से सम्पन्न योगी ही इस समन्वयात्मक प्रवाह का स्वास्वादन करने में समर्थ होता है।

हठप्रदीपिका में वर्णित हठयोग प्राण साधना की विद्या है। हठप्रदीपिका के रचयिता ने इस प्राण विद्या के उपोक्त के लिए ही अपनी इस रचना में योग के सिद्धान्त और व्यावहारिक पक्ष का समन्वया-त्मक दृष्टिकोण अपनाया है। इस समन्वय की आधारशिला है राजयोग की मन्त्री सिद्धि । महर्षि पाण्डित ने अपनी योगानुशासन के धरातल पर निश्चय-

निरोध को ही योग कहा है। यह चित्तवृत्ति निरोध न होकर प्राण के संयम से ही सम्भव होता है, यह संयम ही उठयोग है। उठयोग से शरीर काज्ज व्याधियों से मुक्त हो जाता है। मन निर्बिकार होकर हृदय की गति अनुसृत होती है, चित्त की चंचलता का नाश होकर साधक स्वस्थ होकर अपनी योग साधना में तत्पर रहता है। साधना करते करते योगी ज्ञाना समर्थ हो जाता है कि बीजन-सुप्ति का वात्स्यायन करते हुए मृत्यु को टाल देता है, यह योग की भाषा में कातृष्ण कहा जाता है पर मृत्यु को टालना मृत्यु को रोकना नहीं है, योगी प्राकृतिक विधान का उत्सर्जन कर मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता, वह ही बीजन की वर्तमति मानता है। मृत्यु को टालना एक दूसरी ब्रह्मायी प्रक्रिया है। योगीन्द्र स्वात्मराम ने उन सारी बातों को ध्यान में रखकर ही 'उठप्रतीफा' की रचना की जिसमें योग साधना की सामान्य प्रक्रिया ब्रह्मा व्यापहारिण्या का विवेक किया गया है।

उठप्रतीफा में वादिनाथ भगवान् ऊँकर द्वारा बगदील्लरी पार्वती के प्रति उपदिष्ट योग ज्ञानाग्रा की परम्परा का, जिसकी वस्तुष्णता योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ महायोगी गोरक्षनाथ की है। यह पद्धति स्वकीय होती हुए भी धृति-स्युति-बागम तथा संन्यादि में वर्णित योग विषय के अनुरूप है। साधक के लिए उपादेय है कि वह राजयोग के लिए उठयोग की क्रमशः साधना करे, जिससे शरीर और मन के निर्वोच होने पर वह अपनी गन्तव्य में सफल हो पाय।

मात्र में उठयोग का प्रकार एवं प्रकार का कार्य गुरु परम्परा से ही सुलभ रहा है। जनसाधारण ने किंचित् मात्र भी इसे स्पर्श नहीं किया। 'उठप्रतीफा' में उठयोग को सुलभ करने के लिए निर्दिष्ट दिया है कि विद्वियों की वात्स्यायन वाले साधक को उठ विषय सुलभ रहना

ये यह बतानी होती है तथा प्रकाशित करने से यह उचितहीन हो जाती है।
 छठप्रतीफिका के सम्बन्धित श्लोकों का तात्पर्य यह है कि छठविषा के ज्ञेय से
 योगी के अन्तर अक्षुब्ध विदियाँ स्वतः ही हो जाती हैं और उनका प्रकाश का-
 वरूप रूप से ज्ञानमान्य के लिए नहीं करना चाहिए। इन क्रियाओं को मात्र
 मात्र विषय को ही देना चाहिए।

स्पष्ट है कि छठ विषा प्रयोगात्मक रूप में जोचित
 रही उच्च गुरु परम्परा ही छठविषाओं ने नियन्त्रित समझी इसलिए उच्च स्वात्मा-
 राम ने गुरु रत्न का निर्दिष्ट किया है। छठप्रतीफिका के प्रथम उपोक्त में यह निर्दिष्ट
 दिया है कि जो व्यक्ति राजयोग के मार्ग में विभिन्न प्रकार के विचार एवं मत
 मतान्तरों के परिणामस्वरूप भटक रहे हैं, छठप्रतीफिका उनके लिए ही प्रस्तुत
 की जा रही है। स्वात्माराम ने राजयोग के मार्ग में छठविषा को महत्वपूर्ण
 स्थान पर रत्न का प्रकाश किया है।

छठप्रतीफिकाकार ने इस ग्रंथ के चार उपोक्तों में
 ही वाक्, अङ्गुली, प्राणायाम सुधार अनादि एवं नादानुष्ठान तक की समस्त
 क्रियाओं का समावेश करके छठविषा के प्रयोग तथा उच्च राजयोग की ओर उन्मुख
 करने के लिए मरकत प्रकाश किया है। 'छठ' शब्द का छठप्रतीफिका के विभिन्न
 श्लोकों में प्रयोग किया है जबकि चरक चरितकार ने 'छठ' शब्द का कहीं
 भी प्रयोग करना उचित नहीं समझा। छठप्रतीफिकाकार ने 'छट' शब्द का
 अङ्गुली प्रकरण में प्रयोग कर यह स्वीकार किया है कि 'छट' शब्द शरीर
 का ही कार्य है। स्वात्माराम ने निर्दिष्ट किया है कि 'छट' एवं विभिन्न गुण
 रखी है तथा उनके ज्ञेय से कार्य- शोध होता है इसलिए योग मर्मत ज्ञान ज्ञेय

१- छठप्रतीफिका १-३

२- छठप्रतीफिका - १-१ से ३ तक, १०० १३ तक, १७ एवं ६७, २-२६, ३५,
 ७५, ७६, ७८ ।

३- छठप्रतीफिका २-२३

के कार्य-शीलता की है। इसलिए योग नहीं करना करना करते हैं और वे प्रकृत-
नियम नहीं हैं।

उत्पत्तीका के अधिकतर प्रकृतियों में बार ही
उपरीत उपलब्ध होती है किन्तु योग योगाया मास कील सर्व सुधार, ११७० की
प्रति भी व्यवधान, लोनायाता (कृता) नारायण के प्रकृति सुर्व है, इस
प्रति में पाप उपरीत उपलब्ध है। इस पाप उपरीत में अधिकतर लोनायारी
विक्रिया के सम्बन्ध है। लोनायारी के लक्ष्यः ही सम्बन्ध है। इसलिए
इस उपरीत की लोनायारी के सम्बन्ध नहीं रहा गया है।

उत्पत्तीका के बार उपरीतों के सम्बन्ध ही
उत्पत्तीका की मुख्य मुख्य क्रियाओं का सम्बन्ध किया गया है। यद्यपि बार
उत्पत्तीका में एक एक प्रक्रिया के विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष विद्युत ही कार्य
होता है किन्तु मुख्य क्रियाओं में ही कया रह गया है और उत्पत्तीका के बार
उत्पत्तीका ही उत्पत्तीका की प्रक्रियाओं की विभिन्न प्रकार के लक्ष्य किया गया
है -

बार उपरीत

उपरीत उत्पत्तीका	क्रिया का नाम	क्रियाओं की उत्पत्तीका
प्रत्यक्ष	लोनायारी के सम्बन्ध	११
००	वर्षा ००	१
००	वर्षा ००	१
००	वर्षा ००	१
००	वर्षा (लोनायारी) ००	१
००	वर्षा वर्षा ००	१

द्वितीय	वाक्य	३२
तृतीय	छा	२५
चतुर्थ	प्रवाह	५
पंचम	प्राणाश्रम	१०
षष्ठ	ध्यान	३
सप्तम	उपाधि	६

योग १०२

उत्तमोक्ति

प्रथम	वाक्य	१५
द्वितीय	धीति चाटकमान्तरा	९
००	वस्ति	१
००	नेति	१
००	चाटक	१
००	नीति	१
००	कपाल भाँति	१
००	नकरणी	१
००	प्राणाश्रम	८
तृतीय	छा	१२
चतुर्थ	छा	२
चतुर्थ	वाक्य	४

उत्तम योग ४८

अट्कर्ण

कायलोभ्याय अट्कर्णों को दोनों ही प्रकार स्वीकार करते हैं। धीति, वसि, नीति, वाटक, नीति कमा लीकिली एवं कपास नांति ये दूः क्रियायें दोनों ही प्रकारों ने स्वीकार की हैं। इसके वसि-रिक्त उत्पत्तीफिता में गन्कर्णी नाम से एक पुस्तक की क्रिया का निर्देश किया है जिसका उल्लेख अट्कर्णों के साथ किया है। किन्तु धरुण्ड संविता में जो वर्ण धीति नामकरण देकर धीति क्रूरण में सम्मिलित कर दिया है।

स्वात्माराम अट्कर्णों को दूसरा ज्ञान देते हैं जबकि धरुण्ड ने उनका उल्लेख धरुण्ड संविता के प्रथम उपोस में प्रहुर माया में किया है। धरुण्ड के अनुसार शरीर अट्कर्णों से युक्त होकर धरुण्ड होता है। यह उपोस में मात्र धीतियाँ ही धरुण्ड प्रकार की बताई हैं जबकि उत्पत्तीफिता में एक वस्त्र धीति का ही उल्लेख किया है। धरुण्ड संविता में वसि दो प्रकार की प्राप्ति होती है। वस एवं वसु वसि। नीति एवं वाटक दोनों ग्रंथों में एक ही प्रकार से प्रस्तुत है किन्तु कपास नांति धरुण्ड संविता में तीन प्रकार की और उत्पत्तीफिता में एक प्रकार की उल्लेख की है।

वाक्

वाक्नों की स्वात्माराम ने उत्पत्तीफिता में सर्वप्रथम का स्वीकार किया है। उत्पत्तिर उन्होंने वाक्नों का क्रूरण प्रथम उपोस में किया है। उनका मत है कि वाक्नों से योग वाक्ना में लिखता, वादीन्या एवं का वाक्नों की प्राप्ति होती है जबकि धरुण्ड वाक्नों की मात्र

१- उत्पत्तीफिता २-२६

२- धरुण्ड संविता १-३८

३- ,, १-६, १०

४- उत्पत्तीफिता २-२६

५- धरुण्ड संविता १-३८

शरीर छुड़ कर ही के लिए ही मानते हैं। इसलिए वाक्यों का उल्लेख धर्म में द्वितीय उपाय में किया है।

वाक्यों की संख्या कितनी होनी चाहिए इसे विचार में दोनों ही ग्रंथ में नहीं है। धर्म संख्या में बत्तीस वाक्यों का उल्लेख वाक्या है जबकि उत्पत्तीका में मात्र पन्द्रह वाक्य ही उपलब्ध है। धर्म का कथन है कि जिस ने बीराणी हास योनिर्गों के बीराणी हास वाक्य कहावे हैं किन्तु उनके मध्य बीराणी वाक्य ही विशिष्ट है और मत्परीक में मात्र बत्तीस ही पुन है। आत्माराम ने वाक्यों की संख्या निर्धारण के विचार में कोई उल्लेख करना उचित नहीं समझा।

धर्म संख्या एवं उत्पत्तीका के वाक्यों का विवरण निम्न प्रकार है-

धर्म संख्या	उत्पत्तीका
-------------	------------

व- ध्यानीयोगी वाक्य

जिज्ञासु, प्रमासु, गीमुज्ञासु
प्रज्ञासु, योगासु, बीरासु,
मुन्नासु, गुन्नासु एवं
अस्तिकासु

- कुल योग ६

जिज्ञासु, प्रमासु, बीरासु,
अस्तिकासु

कुल-योग = ४

पेरुण्ड वंशिता

एकप्रतीफिता

ब- शरीर शोधनार्थ वाचन

मुद्राज, शिवाज, मृदाज, मत्स्याज,
पत्किनीत्तानाज, मत्स्येन्द्राज,
गौरदाज, उत्कटाज, कंटाज,
मयूराज, कृष्णाज, क्षमाज, उत्तान
क्षमाज, उत्तान मण्डूकाज, वृक्षाज,
मण्डूकाज, गरुडाज, वृक्षाज,
छनाज, मकराज, उच्छ्राज एवं
सुर्गाज ।

कुल- २३

क्षमाज, कुक्कुज, उत्तान-
क्षमाज, धनुराज, मत्स्ये-
न्द्राज, पत्किनीत्तान,
मयूराज, छाज, गोमुखाज,
मयूराज, शिवाज ।

- कुल ११

ब- ६

४

ब- २३

११

कुल योग- ३२

१५

पेरुण्ड एवं ज्ञात्माराम दोनों ही वाचन-

विधान पर समस्त रूप से एक मात्र ही किन्तु ऐसा वर्णिकरण कि कौन वा वाचन
ध्यानीयोगी है वीर कौन है वाचन है करने से वाचक का शरीर शुद्ध होगा ।
इसका विवेक नहीं किया है । इस शोध प्रबन्ध में उपर्युक्त रूप से वाचनों का
वर्णिकरण करने का प्रयास किया गया है ।

घेरण्ड ने विद्यालोक की 'मीमांसा कपाट भेदन' ^१ काव्य मीमांसा के द्वार तोलने वाला कारगर इसकी विशिष्टता प्रकट की है। ^{मन} मन्त्र विद्यालोक की प्रक्रिया बसाने के ही मीमांसा द्वारा इस बाकायदा बसा इसके साथ साथ अन्य कोई प्रक्रिया मीमांसा द्वारा तोलने के लिए बसायी पायिनी, कोई निर्दिष्ट नहीं दिया है। आत्माराम ने भी एतद्विपरीता में विद्यालोक के विषय में इसी प्रकार का मत प्रकट किया है तथा इसके परिणाम के विषय में दोनों ही प्रकार समझ है और यही बात एक ही वाक्यों को होकर अन्य वाक्यों के विषय में भी उल्लेख की है ^२।

ज्ञान की घेरण्ड संज्ञिता के अन्तर्गत 'जम' ^३ हरं वित्त विमान्ति कारणं ' कह कर निर्दिष्ट दिया है। यह वाक्य पैली मात्र है बहुत घरत एवं सामान्य बात सीधा है लेकिन घेरण्ड ने सिद्धा है कि इसी वित्त को विमान्ति प्राप्त होती है तथा शरीर की कपाट को दूर करता है। आत्माराम भी ज्ञान के प्राप्त के विषय में घेरण्ड से बात मिला नहीं है।

योग में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वित्त शान्त रहे क्योंकि वित्त की प्रधानता है ही मानसिक शान्ति मिलती है। एतदीय में जितनी भी क्रियाएँ एवं साधन कणियों ने सीधे निकाले, सभी वित्त की विमान्ति के साथ साथ उपाधि की ओर उन्मुख करते पाते हैं, जो योग के लिए कीष्ट है। इसलिए अन्य वाक्यों के साथ साथ ज्ञान की क्रिया को बसाना महत्त्वपूर्ण है, इसी उपाधि की ओर उन्मुख होने वाली बन्धाधी पली माँसि वित्त भी होने।

१- घेरण्ड संज्ञिता २-७

२- एतद्विपरीता १-३५

३- घेरण्ड संज्ञिता २-१६

प्राणायाम

प्राणायाम है ध्यान का विनियोग स्पष्ट रूप से होता है। प्राणायाम समस्त व्याधि- विनाशक एवं वृण्ढलिनी- उद्बोधक है। श्री कश्चिरी ने फौन्सली भाष उत्पन्न करी वाला कहा है, किन्तु घेरण्ड संहिता में प्राणायाम का उल्लेख घेरण्ड ने प्रवाह्यार के उपरान्त किया है जो विधि वा प्रीति होता है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम ने प्राणायाम का उल्लेख वाजनों के पश्चात् ही द्वितीय उपोक्त में किया है जो एक पुनियोजित प्रीति होता है। हठप्रदीपिका में वाजनों की दृढ़ता होने पर फिरकर शिवा- हार करता हुआ योगी, गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग है प्राणायामों का उच्चारण करें, दिया है। मध्वि पावसि ने भी राजयोग के तत्त्विय ग्रंथ 'योगदर्शन' में प्राणायाम का स्थान वाजनों के पश्चात् वीर प्रवाह्यार से पूर्व रखा है। यहाँ स्वात्माराम प्राणायाम का स्थान निर्धारित करने में पावसि के अनुगामी रहे हैं।

प्राणायामों की संख्या दोनो ही ग्रन्थों में उल्लेख है। घेरण्ड ऋषि ने घेरण्ड संहिता के चतुर्थ उपोक्त में " सतिः पूर्व- मेदस्व उज्वायी सतिती तथा । मस्मिन्ना प्रामरी मृच्छा केवली वाष्ट दृम्भाः " सतिः, पूर्व मेदी, उज्वायी, सतिती, मस्मिन्ना, प्रामिरा, मृच्छा एवं केवली । एक प्रकार वाष्ट दृम्भों का उल्लेख किया है। किन्तु सति दृम्भ के दो मेद " सतिः विविधः प्रीयः समस्व निर्मलः । समी वीचमुज्वाय निर्मल वीचवर्तिः । " उल्लेख किया है तथा दृम्भों की संख्या निर्धारण से पूर्व

१- हठप्रदीपिका २-१

२- योगदर्शन २-२६

३- घेरण्ड संहिता ३-४६

४- " ४-४७

घेरण्ड ने नाड़ी हीम विधान का निर्देश दिया है जो एक प्राणायाम का ही प्रकार है- "उक्त चन्द्रेण प्रवेष्टाहं बीजं नीलकंठः सुधी । कृत्वा नाक्या च कृष्णैर्नय धारयेत् । हासितन्मात्रेण वाहं कूर्मनाड्या च रेपेत् ।" "बीजीं चन्द्रमार्गं कर्वातु वाम त्वरं च गुरुं कर्तुं च यत्पातु बीजं मंत्रं का बीजं चारुं चप कर्त्ता हुवा कृष्ण को बीर फिर वत्सीय चारुं चपत्ता हुवा वत्सीय नासिका से वातु का रेप कर्त्तुं । कर्वातु वातु को निकाल दे । इस प्रकार घेरण्ड ने दस प्राणायामों का उल्लेख एवं उनके वर्णन की पूर्ण प्रश्रिया घेरण्ड संहिता में प्रस्तुत की है । "उक्ति" प्राणायाम के विषय में भी नाड़ी हीम के ज्ञान ही प्रश्रिया को वर्णन हुये उन्होंने लिखा है कि "उक्तिं द्विविधः प्रोक्तः कर्माद्य निष्कर्षः । कर्मां बीजमुच्चार्यं निर्गम्यं बीजं वर्त्तिः ।" जो (प्राणायाम) बीज मंत्र के उक्ति ही उते कर्म बीर जो बीज मन्त्र से रहित ही उते निर्गम कर्त्तुं हैं ।

उत्प्रेक्षीकृता में बाठ प्राणायामों का उल्लेख है- " कूर्मनाड्यावी, शीत्कारी, शीतली तथा । मल्लिका, आमरी, मुष्ठा, सावित्रीत्यष्ट कृष्णाः ।" कूर्मनाडी उच्चावी, शीत्कारी, शीतली, मल्लिका, आमरी, मुष्ठा एवं सावित्री ये बाठ कृष्ण हैं ।

घेरण्ड संहिता एवं उत्प्रेक्षीकृता के प्राणायामों की संख्या में समानता निम्न प्रकार है -

१- घेरण्डसंहिता ४-४६, ४०

२- " ४-४७

३- उत्प्रेक्षीकृता २-४४

घेरण्ड संज्ञिता	उत्तप्रणीफिता
१- नाडी शोधन प्राणायाम	१- पूर्व भेदी
२- वसिष्ठ	२- उज्वायी
अ- समं वीजमत्र वसिष्ठ	
ब- निगमं वीज मंत्र रसिष्ठ	
३- धूर्वभेदी	३- वीत्काररी
४- उज्वायी	४- शीतली
५- शीतली	५- मस्त्रिका
६- मस्त्रिका	६- प्राणरी
७- प्राणरी	७- भुज्या
८- भुज्या	८- चाविनी
९- भेदी	

प्राणायामों की संख्या के विषय में दोनों ग्रन्थकारों का निर्णय भिन्न भिन्न है। उः प्राणायाम (पूर्व भेदी, उज्वायी, शीतली, मस्त्रिका, प्राणरी एवं भुज्या) का ७- उत्तम घेरण्ड संज्ञिता एवं उत्त-
प्रणीफिता में समान रूप से है। घेरण्ड ने वही ग्रन्थ में नाडी शोधन, वसिष्ठ एवं भेदी का उत्तम उत्तप्रणीफिता से वविरिक्त किया है और वी प्राणायाम
वीत्काररी एवं चाविनी की प्रक्रिया का स्वात्माराम ने वही ग्रन्थ में घेरण्ड
संज्ञिता से वधिक उत्तम किया है। इस प्रकार स्वात्माराम एवं घेरण्ड ने प्राणा-
यामों की संख्या वसमान रूप से निर्धारित कर ग्रन्थों में विशिष्टता प्रदत्ति
करने का प्रयास किया है।

घेरण्ड संहिता में केशरी शुक्ल प्राणायाम का जो निर्देश किया है उसे अन्य प्राणायामों से अलग पढ़ने करने का प्रयास है, किन्तु जब भी किसी प्राणायाम को प्रयोगात्मक रूप दिया जाता है तो केशरी शुक्ल की प्रक्रिया सभी प्राणायामों में वा सखती है क्योंकि बिना शुक्ल के कोई प्राणायाम सम्भव नहीं है। वस्तु केशरी नाम से प्राणायाम का नामकरण करना घेरण्ड संहिता का निर्णय प्रतीय होता है।

सुटा एवं वन्द्य

घेरण्ड संहिता में सुटा, धारणा एवं वन्द्य का उल्लेख संहिता के प्रथम उपोक्त में उपलब्ध होता है। घेरण्ड पाँच प्रकार की धारणा एवं तीन (उद्धृतान, मूल एवं वासन्यार) प्रकार के वन्द्यों की सुटायों के वन्द्य-नैत ही स्वीकार करते हैं तथा उपोक्त के प्रारम्भ में ही इन पञ्चीक सुटायों के नामों का वर्णन किया है। छठप्रदीपिका में भी सुटायों का वर्णन वन्द्यों के साथ साथ ही मिलता है, इसके बहिर्विक्त सभी उपोक्त में वृण्डलिन के फायि-वाची शब्दों का भी उल्लेख किया है। वृण्डलिन के फायि शब्दों का वर्णन घेरण्ड संहिता में नहीं है। इसके साथ साथ शम्भवी एवं उन्मती सुटायों का समावेश छठप्रदीपिका के प्रथम उपोक्त में अन्य सुटायों के साथ न करते वरुण उपोक्त में किया है जो विविध वा प्रतीय होता है।

छठप्रदीपिका के प्रथम उपोक्त में कर्गुरु प्रस्ता एवं स्त्री की वज्रीली सुटा का सम्मिश्रण करके छठवीं वम्प्राय के मार्ग की ही एक नया मोड़ दे दिया है। वज्रीली के विषय में स्वात्मनाराम लिखते हैं कि “ वज्रीली के बन्धन से काश्य ही पैर छिदि होती है। वे पुण्य की प्राप्ति होते हैं, विन्दोनि एव योग (वज्रीली छिदि) की प्राप्ति कर लिया है।”

१- घेरण्ड संहिता - नमोसुटा ---- छवरी ३-१

विपरीतकरी ----- पञ्चधारणा । ३-२

वाग्निनी ----- श्रव्योगिनान् ॥ ३-२

२- छठप्रदीपिका- पैर छिदि व---- वर्ष योगवृद्धिद्वय ॥ ३-६६

कमोली मुद्रा का प्रकरण धेरण्ड संविदा में उप-
लब्ध हो जाता है जिसमें उक्त प्रयोगात्मक पदों वन्ध मुद्राओं के उद्देश्य है।
स्त्री के साथ जो मुद्रा की करने के लिए जो ग्रन्थ में कोई निर्दिष्ट नहीं है। नाथ
सम्प्रदाय की कमोली मुद्रा बफो वक्त प्रक्रिया है। जो प्रक्रिया का उद्देश्य करने
एक्योगियों के लिए स्त्री कर्मायोग का मार्ग प्राप्त कर दिया है।

उपगुरु प्रणाली के विनय में आत्माराम ने
"सम्प्राप्तिम्" ^१ उप-का प्रयोग किया है। सम्प्राप्त है सम्बन्ध आत्माराम
का "नाथ सम्प्राप्त" है ही रहा होगा क्योंकि एतद्विनिर्दिष्ट ^२ में नाथ योगियों
के नामों का भी उद्देश्य प्रथम उपलब्ध में प्राप्त है। उपगुरु की प्रणाली में ही
आत्माराम ने निर्दिष्ट किया है कि "मुद्राओं के उपलब्ध की जो सम्प्राप्ति
रूप है देता है, वही गुरु स्वामी एवं वाचनात् उत्तर है। उक्त (गुरु के)
वाक्यों में उत्तर हीका जो वाक्य मुद्रा के सम्बन्ध की ध्यानपूर्वक करता है, चाहे
वह सम्बन्धी या वन्ध मुद्रा ही वह उक्त के लिए विधि देखाती होती है।"

कुण्डलिनी के फार्मि कर्म के सम्बन्ध में आत्म-
राम ने उक्त फार्मिवाक्य नामों का उद्देश्य किया है। "कुण्डलिनी, कुण्ड-
लिनी, कुण्डी, उक्ति, उत्तरी, कुण्डी और वरुन्धी" ^३ ये सभी कुण्ड-
लिनी के भेद हैं। कुण्डलिनी के नामों का वक्त वक्त उद्देश्य करने आत्माराम
ने वाक्यों की कुण्डलिनी के वतिरिक्त वन्ध नामों की प्रयोगानुसार समझने के
लिए मार्ग सुलभ कर दिया है। क्योंकि स्पष्ट भेद है ग्रन्थों में कुण्डलिनी के वर्ग
में उक्त में है कोई भी नाम मिल जाता है।

१- एतद्विनिर्दिष्ट ३- १२४, १२५

२- " १- ५, ६, ७

३- " ३- १२४, १२५

४- " ३- १००

कुण्डलिनी की प्रतीति में उदग्रनीतिका में लिखा है कि, " जिस प्रकार कृषी के द्वारा उदग्रनीक कपाट (विवाद) खोले जाते हैं, उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वारा मोक्ष के द्वारों को खोला है। "

उदग्रनीतिका में वज्रोत्थी के ज्ञान ही उज्योत्थी और क्यरीत्थी मुद्रा का भी ज्ञान मिलता है। उज्योत्थी एवं वज्रोत्थी के विषय में डा० जमनाल गौतम ने उदग्रनीतिका के नाम से संस्कृति संस्थान, बोरोही के वर्ष १९७५ ई० में प्रकाशित की है, में लिखा है, " वज्रोत्थी के विषय में कहा है कि वज्रोत्थी मुद्रा के ज्ञान ही उज्योत्थी और क्यरीत्थी मुद्राएं भी हैं। कुछ विद्वान् उन्हें भिन्न मानते हैं, और कुछ किंकि विवेचना के साथ एक ही समझते हैं, इसलिए कुछ संस्थाओं में उज्योत्थी और क्यरीत्थी का वर्णन नहीं मिलता है। "

उज्योत्थी एवं क्यरीत्थी मुद्रा की प्रक्रिया का निर्दिष्ट करते हुए उसकी प्रतीति का उत्तम आत्माराम ने उदग्रनीतिका में लिखा है कि " यह योग (उज्योत्थी और क्यरीत्थी) पुष्पान, धीर, उत्सवर्धों और डेन रहित पुरुषों को सिद्ध होता है, डेनसुक्तों को सिद्ध नहीं होता। " आत्माराम की यह उक्ति का वर्णन करने में उनका वाक्य सम्मत: यह रहा होगा कि उज्योग की दुष्ट मार्ग को वसिष्ठोक्ति पूर्ण नहीं लिखा गया तो ही कौन बसावेगा। जसा उज्योग के कलि मार्ग को योगीन्मुख कर दिया जाय तो वह और जन- सामान्य अधिक आकर्षित होंगे। साथ ही साथ सम्प्रदाय के प्रकार एवं प्रकार का कार्य बिना किसी परिणाम के स्वयं ही खतर होगा।

परन्तु संस्था में वह प्रकार की किसी मुद्रा का

१- उदग्रनीतिका ३-१०१

२- " ५० १३४

३- " ३-६३

उत्तेज नहीं बाधा भी योग और योग दोनों साथ साथ देने वाली हैं ।

धरुण ने मुद्राओं के उत्तेज में के धारणा पाप्मी, वाक्मी, वाक्मी, वाक्मीय एवं वाक्मी का उत्तेज कर के तत्त्वों पर ध्यान करने की निर्दिष्ट किया है। तत्त्वों के ध्यान के विषय में उत्प्रेरिका में कोई उत्तेज नहीं है। धरुण ने के धारणा की प्रतीति विन्य प्रकार की है -

“ एक (के धारणा के) कि होने पर ऐसा कौनसा कार्य मूल पर है जो कि कि न ही है । उन के धारणाओं के कि होने पर मुख्य शरीर के ही वर्ग में जाना जाना ही कहा है। एक द्वारा उछली गति का के ध्यान ही जाती है और वैश्वरूप की प्राप्ति होती है । ”

शाम्बी मुद्रा की प्रतीति एवं उच्च गुण रही के लिए धरुण ने लिखा है कि -

“ दृष्टि की दोनों भूमध्य में स्थित कर लक्षण का है विन्य करता हुआ परमात्मा का दर्शन कर यह शाम्बी मुद्रा है, जो एक प्रकार के गोपनीय रहे । वैश्वरूप सामान्य गणिका के ध्यान प्रकारनीय है । शाम्बी मुद्रा कुसुम के ध्यान गुण रही योग्य है । ”

मुद्राओं में ही उत्प्रेरिका और धरुण दोनों के वन्तर्गत विपरितकारिणी मुद्रा का उत्तेज उपलब्ध होता है । वाक्मत्त एक मुद्रा

१- धरुण संख्या १- ५७-५८

२- “ १- ५१-५४

३- उत्प्रेरिका १-५८

४- धरुण संख्या १-११

काक नाम छद्मों में से छटाकर वाक्यों में रक्त दिया है। छटावीर के किसी भी ग्रन्थ में वाक्यों के साथ हीनामि नाम का कोई वाक्य उपलब्ध नहीं होता है। बहुत ही छटा की हीनामि कहा जाता है। यह स्मरणीय है कि चरणवीर आत्माराम दोनों ही श्री 'विपरीतकरिणी छटा' कहे हैं। यह छटा की प्रक्रिया एवं ज्ञान दोनों ही ग्रन्थों में समान हैं।

चरण एवं छटागीफिका की छद्मों का तुलनात्मक चार्ट

मुद्राओं का समान उल्लेख

चरण संज्ञा	छटागीफिका
१- महाछटा, महाबन्ध, महाविध, बन्नीसी, विपरीतकरिणी, सेवरी शाम्बी, उन्मनी, शक्ति- वालिनी, वातन्धरबन्ध, पुस्त- बन्ध, उल्लिख्यबन्ध ।	१- महाछटा, महाबन्ध, महाविध, बन्नीसी, विपरीतकरिणी, सेवरी, शाम्बी, शक्तिवालिनी, वातन्धरबन्ध, पुस्तबन्ध, उल्लिख्यब- न्ध ।

दोनों ग्रंथों में समान छटा

२- नमोछटा, योनिछटा, वादानी, माण्डली, वाक्विनी, पाणिनी, काली, मार्तण्डी, सुमिनी, पार्थिवधारणा, वाक्मयीधारणा, वाक्मयी धारणा, वाक्मयी धारणा, वाक्मयीधारणा ।	२- छटावीरी, कर्मावीरी एवं उन्मनी ।
---	---------------------------------------

पेरुण्ड संविदा एवं उलम्प्रीफिका के वन्दर्गत सुझावों का विवरण बाजारों के ज्ञान ही है। पेरुण्ड ने पथ्वीय एवं आत्माराम ने जीवत सुझावों की प्रक्रिया एवं उनके होने वाले परिणामों का उल्लेख किया है।

प्रत्याहार

पेरुण्ड कथि ने संविदा के चतुर्थ उपोक्त में प्रत्याहार का उल्लेख किया है। उस प्रकरण में कथि ने अधिक विस्तार में न जाकर वृक्ष विवेक ही किया है। उस विवेक की उन्नीसवीं विभागों में विभाजित किया है। उस में 'चट्टुवु पणन दूवरे में वात्पल्यत्त्व'। 'चट्टुवु पणन' में केवल चार श्लोक एवं वात्पल्यत्त्व में तीन श्लोकों का उल्लेख कर उपोक्त की कति की है। जहां पेरुण्ड ने प्रत्याहार को एक योग का एक का स्वीकार किया है जहां आत्माराम उलम्प्रीफिका में प्रत्याहार की स्पर्श तक नहीं करते हैं।

आत्माराम सुझा कथन के तत्पश्चात् वे राज्ञ की चतुर्थ उपोक्त के द्वारा समाधि की वीर से पारि हैं, जो उनकी अपनी विशिष्टता एवं निमित्तता है। मन-चापत्य की वृत्त निवृत्त करने के लिए नाद प्रकरण में ही आत्माराम लिखी है-

“ नाद के वन्दन में बंधा हुआ मन अपनी वप-त्ता का ठीक प्रकार से परित्याग करके फेंक करे हुए पत्नी के ज्ञान निरपेक्षा को प्राप्त हो जाता है। ”

उन्मर्षित श्लोक के वन्दर्गत भी मन-चापत्य की वृत्त करने के लिए नाद ही की प्रशंसा की है और प्रत्याहार पर कोई टिप्पणी नहीं प्रस्तुत की है।

धरंजय प्रयाणार वर्णन में मन की चपलता की
छटाने के लिए लिखी है-

“ गुरुकार- विरकार, सुनि में सुख या
बहु फिर वपनीं ते मन की छटाकर वात्मा के मत में करे । ”

वात्म सत्त्व के लिए धरंजय ने निम्न प्रकार
निर्देश दिया है - “ सुगन्ध वीर दुर्गन्ध ते मन की छटाकर वात्मा में लय
करे । ” धरंजय का वात्सल्य वहाँ वाचार्थिक सुखों से विमुक्त होकर मन की
वात्म वाचात्कार में लगे वीर उन सुखों की वात्मा का लुप्त करने, रहा
है ।

प्रयाणार की उद्योग का जो स्वीकार करने
में स्वात्माराम वीर धरंजय का मन निम्न है । मन वापस की समस्त रूप से
छटाने के लिए धरंजय प्रयाणार पर बल देते हैं , वहाँ स्वात्माराम वाद की
ही ज्वलन स्वीकार करती हैं ।

ध्यान- प्रारंभ

धरंजय ने संविता के अष्ट उपांग में ध्यान के
तीन हैं- स्मृत, ज्योतिर्मय एवं सूक्ष्म का निरूपण किया है । इन तीनों
का विस्तृत विवरण देते हुए विशेषता की वीर भी साधकों का ध्यान वाक-
र्णित किया है । धरंजय संविता में उल्लेख किया है कि उत्तिष्ठि ध्यानों की
विधि होने पर साधक स्वविधि होकर चरम लक्ष्य धरंजय ने लिखा चण्ड कपाडी
प्राप्त करता है ।

१- धरंजय संविता ४-३

२- “ ४-४

३- “ ४-५

को भीनीं ध्यानो में परिष्कृत करार जावधान होकर ध्यान में वन्द्य होने के लिए पैना वाञ्छ की है ।

स्वात्माराम " ध्यान प्रक्रिया " की छव्योग का का खेकार नहीं करते वस्तु छव्योगिका में कही भी छव प्रक्रिया का खेव नहीं निखता है ।

उपाधि एवं नाद योग

धरुण्ड ने संखिता के वन्द्यन (वन्द्यन) उपाधि के वन्द्यन वः प्रकार की उपाधियां- ध्यानयोग, नाद योग, रानन्द योग , छव सिधियोग , मन्त्रियोग एवं राजयोग का उल्लेख एवं उनकी प्राप्ति के वाधन की प्रक्रिया कातायी है। धरुण्ड ने खिता है-

" ध्यान योग उपाधि शान्ती छुटा है, नाद योग उपाधि खेवरी छुटा है, रानन्द योग उपाधि व्रामरी छुटा है, छव योग सिधि उपाधि वीनि छुटा है, मन्त्रियोग उपाधि मनीषुच्छा है वीर राजयोग उपाधि वुम्फ है सिधि वीवी है । "

स्वात्माराम ने छव्योगिका के वन्द्यन उपाधि के प्रारम्भ में ही उपाधि के पैवी का खी उल्लेख नहीं किया, वल्लि उपाधि के फ्यायि उपाधि का वणन करते छुर खिता है-

" राजयोग, उपाधि, उन्मी, मनीन्मी, वारत्त्व , छव, वत्त्व, वुन्मावुन्मा, परमफ, वनल्ल, वीर, निरावन्मा, निरुन्मा , वीमन्नुन्मा, वल्ला, वुर्मा, वव छव उपाधि के वी वाक्क वी^२ "

१- धरुण्ड संखिता ७- ५, ६

२- " ७- ३, ४

**आत्माराम में उत्पत्तीका में अनादि का
उत्पत्ति निम्न प्रकार दिया है-**

" जो यह और ऐश्वर्य मिलकर एक दूसरे में
विद्यमान हो जाते हैं, जो ही आत्मा और मन का रूप अनादि कहलाती है ।"

उसी कारण में अविच्छिन्नता की प्रक्रिया पर
लिखा है कि , " केवल स्थान में रहकर और घुमना नाहीं के कर्म की
विधि बाकर साधक प्राण वायु का घुमना में उबार करे । "

**उत्पत्तीका में नादों के चार प्रकार - आरम्भा-
वस्था, उत्पन्नवस्था, परिवर्धवस्था, निष्कारितवस्था एवं नामा वाच वर्णन ,
आत्मक आत्मा का परमपद , उत्पन्नवस्था में भेदावस्था का वर्णन की
ही मनीषीण है किया है। इस विधि है साधक की निरवस्था रूप है साम हीमा ।**

अनादि के द्वारा निर्दिष्ट वाच किया जाऊँगा
वाच की प्राप्ति होती है, जो कि वाच प्राप्ति की साधिका है। अनादि
का सर्व कर्तृत्व विस्तीर्णता । अनादि अनादि- निरवस्था अनादी है विरहित
सर्व वाच में हीम का परमपद में साधक विस्तीर्णता है ।

भेदावस्था एवं उत्पत्तीका की पार्थक्य प्रकृत्युनि

भेदावस्था में ही " पद " एक प्रकृत्युनि
है, यह पार्थक्य एक है । यह केवल शरीर के लिए ही नहीं बल्कि इस
आदि के लिए है विज्ञा एक जगत् के रूप में निर्माण हुआ है। जो हम

१- उत्पत्तीका ४-५

२- " ४-२६

३- भेदावस्था २, ६, ८

प्राप्त्य प्रक्रियाओं के प्रत्येक निरूपण में धारण संख्या के समान " ४ " के किसी पारिभाषिक शब्द का उल्लेख नहीं वाया है। उदा., फिला एवं दुष्मा की वार्तनिक शब्दावली है, के स्थान पर गंगा यमुना एवं वातरण्डा जैसे वाया-रण शब्दों का उपयोग किया है। वायक की ज्ञान वृद्धि हेतु दुष्मल्लिखी एवं समाधि के फार्मिवाली शब्दों का बाहुल्य है।

द्वितीय उपोक्त में तेवरी छुटा वर्णन में " गोपाच " , " वारुणी " एवं चतुर्थ उपोक्त उन्मली छुटा प्रश्न में " लिं " शब्द व्यवहृत हैं जिनका भाव समझना कलसाधारण की पूर्ण है बाहर है। क्योंकि उनका एवं सहाणा है निकलता है। उन शब्दों के प्रयोग वायक की प्रशिक्ष करने में सहायक सिद्ध हो जाती है। स्वात्माराम का उन शब्दों के प्रयोग का वसिप्रभाव " गो " है जिला " वारुणी " (मदिरा) है प्रजापद है गिरी हुए चीम एवं " लिं " है दुष्मा नाड़ी है है। प्रतीफिता के प्रारम्भ में ही उल्लिखित है कि वीर शर्मा के गलान्धकार की प्रान्ति है उवाही के लिए क्वात् वय- वापी है क्वान्तिक कामुक्ति प्रान्न कराने के प्रयोग है छ-प्रतीफिता की प्रकट करती है।

स्वात्माराम ने प्रथम उपोक्त में उल्लेख किया है कि " वीर दुःखों है प्रसिद्ध हुए मानव का वायकवाच्य मठ क्वात् परलपी उल्लेख है। वीरन वीगिनी का कम्पलपी क्वात् कम्पलवाच्य परमात्मा ही वायक उल्लेख है। " उनका वसिप्रभाव है कि कम्पल उवाह दुःख रूपी ज्वाला में पत रहा है वीर ल मान उल्लेख ही ऐसी विधा है कि उल्लेखी उरण में जाने है कामुक्ति की प्राप्ति हो जाता है। वही वतिरिक्त वय कीर्त वायन नहीं है। स्वात्माराम उल्लेख की प्रक्रियाओं की वसारी हुए मनुष्य की नाव तक पहुँचाने

१- छप्रतीफिता १-३

२- " १-१०

में एटप्रोगीफिका के वाक्यन के प्रत्यक्षीत रहे हैं, और यह विरल कथ भी है कि यदि मानव जब और यदि बहुर होना तो कल्याण को प्राप्त होना भी उज्ज्वल चरम कथ भी है ।

घेरण्ड संहिता एवं एटप्रोगीफिका का प्रार्थपर

घेरण्ड संहिता एवं एटप्रोगीफिका दोनों ग्रन्थों के विषय में जो तक कोई भी लिखित साक्ष्य नहीं मिला है उसके आधार पर यह धृष्टि की जा सके कि दोनों ग्रन्थों में कौनसा प्रार्थपर है ।

“ वैश्वधाम लीनवत्ता (महाराष्ट्र) के मार्च १९७८ में प्रकाशित घेरण्ड संहिता की प्रस्तावना में लिखा है कि घेरण्ड संहिता की अधिकतर पाण्डुलिपियों में नमस्कारात्मक वाक्य मिली हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि एटप्रोगीफिका का प्रभाव घेरण्ड संहिता पर भी पड़ा है । ”

भारतीय ग्रन्थकारों की यह परम्परा रही है कि कोई भी ग्रन्थ आरम्भ करते हैं पूर्ण नमस्कारात्मक वाक्य से ही प्रारम्भ करते हैं । घेरण्ड संहिता वर्ष १९७७ ई० एवं एटप्रोगीफिका वर्ष १९७५ ई० में संस्कृति संस्थान, बरेली से प्रकाशित हुई हैं और इनकी टीका डा० कमलानन्द गौतम ने की है । इनमें प्रथम उपोक्त के प्रथम श्लोकों में बहुत कम अन्तर है । इससे स्पष्ट है।- “ एटप्रोगीफिका में भी वादिनाथाय नमो नमो तस्यै यो-
पदिष्टा एतयोगविषा । विप्रायै प्रोन्मतराययोगमारुहमुपिन्दीरधिरोहणीम् ॥

घेरण्ड संहिता में- “ वादीश्वराय प्रणमामि

१- घेरण्ड संहिता पृ० १५

२- एटप्रोगीफिका १-१

उत्पत्ति की पद्धति का उपयोग किया। विराज्ये प्रोक्त राजकीयता का निष्कर्ष-
रूपणीय ॥

उत्पत्ति नहीं है स्पष्ट है कि दोनों के

उत्पत्ति का अर्थ समान है।

प्राग् धर्मिता में 'उत्' या 'उत्पत्ति' का अर्थ नहीं है। उत्पत्ति प्रत्यय में केवल दो अर्थों पर 'उत्' अक्षर का उपयोग किया गया है। 'उत्' अक्षर विज्ञान का अर्थ नहीं है। इस विचार का निष्कर्ष है कि प्राग् धर्मिता उत्पत्ति का अर्थ है।

प्राग् धर्मिता की विचार सामग्री की समीक्षा करने पर यह ज्ञात होता है कि यह प्रत्यय में अनेकों यौगिक प्रक्रियाओं का अर्थ कीटि का निर्देश उपलब्ध है जो कि उत्पत्ति में नहीं मिलता है। यौगिक प्रक्रियाओं के विचार सिद्धान्त के आधार पर यह निश्चित कहा जा सकता है कि प्राग् धर्मिता उत्पत्ति के अर्थ की है।

जो भी निम्नलिखित मूल्य द्वारा रखा 'उत्' अक्षर प्रत्यय द्वारा 'उत्' अक्षर प्रक्रिया' (प्राग् धर्मिता) एवं जो विज्ञान की यौगिक प्रक्रिया में प्राग् धर्मिता का अर्थ की उत्पत्ति नहीं मिलता है। इस विचार उत्पत्ति के अर्थ उत्पत्ति का अर्थ उपलब्ध है। यदि उत्पत्ति प्रक्रियाओं की प्राग् धर्मिता की प्रविष्टि प्राप्त होती तो उत्पत्ति अक्षर प्रक्रिया में उत्पत्ति, ऐसा अनुमान किया जाता है। इन अक्षरों के अर्थ ज्ञात होता है कि प्राग् धर्मिता उत्पत्ति है।

की रत्ना है ।

जैसे वीर राज्य छत्रपतीका में उपलब्ध है
जहाँ कहीं प्रविष्टि में ही योगियों की पुत्री में बलकपासी का नाम
जाता है । " बलकपातिष्ठया " ऐति परम् वीर बलकपासी के उपाय के
विरुद्ध वीर कीर्ति राज्य दृष्टिगत नहीं होता । जहाँ यह प्रतीत होता है
कि परम् वीरता छत्रपतीका है पुत्र की रत्ना है ।

प्रोफ. विद्या केन्द्र, काशी (गुपरा)
के संकाय है ग्रन्थ सं० २०८ एवं पाण्डुलिपि सं० ४१०३ में परम् वीरता की
हस्तलिखित प्रविष्टि पुस्तक १ है २२ तक एवं ग्रन्थ सं० २०० पाण्डुलिपि सं०
८२२ में छत्रपतीका की हस्तप्रविष्टि पुस्तक है १३२० तक का निरीक्षण
किया । यहाँ विषय उल्लिखित था । परम् वीरता- " यदि परम् वीरताया
हस्त योनि उत्तम राजा परम् बलक उपाय योनि नाम बलकपासीः
(७) । " छत्रपतीका - " यदि भी स्वात्माराम्यी विरुद्ध छत्रपति-
कायी हस्त विधान नाम कुलीनी उत्पन्नः । "

जहाँ- हस्तलिखित बालकपासी वरमा-
राज के संकाय में दोनों ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों के अन्त में विषय राज्य
उपलब्ध होती है ।

परम् वीरता के १२ वें पुस्तक पर " यदि
भी परम् वीरताया हस्त योनि उत्तम राजा परम् बलक उपाय योनि नाम
बलकपासीः उ वनेः विनाय स्वामी कर्मानन्दनः पुस्तक ॥ "।

छत्रपतीका के अन्त में " उपायानु "।
सं० १७६५ वर्षी भावना सुती-६ कुल विने भाव्य विषय भाव्य विनाय भाव व
कीर्ति भी उपासी मन्त्र । "

**उत्पत्तिवादी धारणा के आधार पर धर्म उद्भिदा
एवं उत्पत्तिवादी के मध्य प्रसार कम ही हो रहा है ।**

**धर्म उद्भिदा और उत्पत्तिवादी के बीच
की कृति क्यों ?** इस सम्बन्ध में निम्न कारण प्रकाश में लाये हैं । प्रथम कारण
ही यह है कि धर्म उद्भिदा के अधिकतर लोग उत्पत्तिवादी के मित्र हैं । दूसरा
कारण यह है कि धर्म उद्भिदा को प्रतियोगिता प्रणाली में धारण है ।
दोसरा एक कारण यह भी हो सकता है कि धर्म उद्भिदा धार्मिक कृति पर
आधारित ग्रन्थ है। ग्रन्थ का विकास सुलभता में ही अधिक हुआ है। उत्पत्तिवादी
इसी धर्म की कृति है ।

**उत्पत्तिवादी धारणा के आधार पर यह कथि
यह है कहा जा सकता है कि धर्म उद्भिदा उत्पत्तिवादी के बीच ही रहता है ।**

तृतीय अध्याय

संयोग बाधना च सु सामान्य

निर्दिष्ट

हठयोग का क्या एवं परिमाण

साधारणतया हठयोग का क्या यह योग जो हठपूर्वक किया जाय कदाचित् दृढ़ता के साथ किया जाय । संसार में कितने भी प्रयत्न योग हैं, यदि उन पर एक दृष्टि डालें और प्रायोगिक रूप देकर उनका अनुशीलन किया जाय तो भी योगों में हठ व दृढ़ता का आना करना पड़ेगा, किन्तु हठयोग के अनुपालन में विशेष जम की आवश्यकता होगी । वाक्यरत जनसामान्य की यह विचारधारा बन गई है कि हठयोग की प्रक्रियाओं को गुरुस्वधर्मों को नहीं बखानना चाहिए । कुछ तो हठयोग के नाम से ही भयभीत होते हैं । उक्त मुख्य कारण यह है कि हठयोग विज्ञान का समाज के अन्तर्गत ठीक ठीक प्रकार एवं प्रकार तथा उचित होने वाले वाङ्मयार्थिक एवं शारीरिक लाभों की प्रकाश में नहीं लाया गया । यह विषय क्रिया-बहुत रही और उक्त एक पक्ष प्रायोगिक एवं अभ्यास्य भी है। संसार में बहुत कम ही व्यक्ति उस विषय में पूर्ण पारंगत हैं। धरुण संविदा के अनुसार जमें आधिक क्रियाएं हैं । जो हठ- विज्ञानवेत्ता हैं वे ज्ञान के मध्य प्रकाशन के भय से रूना भी उचित नहीं समझते । वे शीघ्र स्वामन्त ज्ञान करते हैं ।

हठयोग विषय गुरुगम्य होने के परिणाम-स्वरूप गुप्त ही रही गई है, रेडियो, समाचार पत्र एवं टेलिविजन जैसे प्रकार माध्यमों से ही बला ही रहा गया । स्वात्मनारायण ने ही गुप्त रहने के लिए निर्दिष्ट किया है- " चिदि की उच्छा पाते योग राधक ही अत्यन्त गोपनीय रहे, यदि वह (हठयोग विषय) का (अन्वय गुप्त रूप से अन्तरंग

वाक्य के स्तर पर) किया जाता है जो प्रत्यक्ष ही हीन विधि प्रदान होती है। यदि ऐसा प्रमाण कर दिया गया तो वास्तविक ही जाती है ।
 स्वात्माराधन का एक अन्य उक्ति भी प्रतीत होता है, क्योंकि उद्योग की जाती ही जाती ही जाती है (जो योगिनियों) के ही साथ करने का निर्देश है कथा के धर्म रहस्यीकृत कर दिया तो उद्योग के वाक्य ही हीन ही साथ ही वाक्य में योगियों का भी वाक्य ही जाती है । इसलिए वह विद्या की वाक्य है वाक्य गुप्त रहकर केवल पात्र विद्या की ही देने का निर्देश है । यहाँ तक उक्त प्रकार का प्रमाण है गुरु-परम्परा ही वाक्य ही जाती है ।

उद्योग का कार्य विभिन्न विधियों में प्रकट प्रकट किया है । ' वापस्कय ' के अनुसार उद्योग का कार्य- ' हट्टन वता-स्कारेण योगः । प्राणावायमादिद्विधाभ्याम्प्राणराजयोगे विनम परमात्मना-सात्कारेण विद्युत्ति निरीधायकी योगे । ' उद्योग प्राणावायमादि द्विधावी के वाक्य है विद्युत्ति का निरीध करी परमात्मा के वाक्यकार करने की ' उद्योग ' जाती है ।

उद्योग की वाक्यः योगितात्मी ने ' प्राण-निरीध भान वाक्य ' वा है । ' विद-विदाम्प-वादि ' में ' ह ' का कार्य पूर्व (प्राण) तथा ' ठ ' का कार्य पन्द्र (वायु) वाक्य पूर्व पन्द्र के योग की ही ' उद्योग ' जाती है । ' हट्ट ' में ' ह ' और ' ठ ' के योग है ही ' हट्ट ' वाक्य का निर्माण हुआ है । ' उद्योगवाक्य ' में ही ' ह ' को पूर्व प ' ठ ' को पन्द्रवा प्रकट वा है, तथा पूर्व पन्द्र के वा-योग की उद्योग वा है ।

१- वापस्कय प्र. ६. ५३-६

२- विदविदाम्प वादि १, के

३- उद्योगवाक्य १, २१

‘योगशास्त्री’ ‘हठयोग विठेनाथ’ में हठयोग के विभिन्न कार्य प्राप्त होती हैं -

ह + ठ + योग	=	प्राण + कपान + योग
ह + ठ + योग	=	सूर्य + चन्द्र + योग
ह + ठ + योग	=	वशिष्ठा + वाम + योग
ह + ठ + योग	=	यमुना + गंगा + योग
ह + ठ + योग	=	विष्ठा + रुद्र + योग
ह + ठ + योग	=	रघु + ऐश्वर्य + योग

हठयोग सम्प्रदायों ने उपर्युक्त छद्म और विष्ठा के योग की ही श्रद्धापूर्वक हैसियत में चन्द्र- सूर्य, वशिष्ठा- वाम, यमुना - गंगा, प्राण- कपान, रघु-ऐश्वर्य योग रचा है।

‘हठरत्नावली’ में विष्ठा के दुर्गिणी, सूर्या, वशिष्ठापारा, काशाग्नि, लक्ष्मी, चण्डी एवं रुद्र के चन्द्रा, रुद्रि-पाशा, गंगा, वामा आदि पर्यायवाची नाम प्राप्त हैं।

‘हठयोग प्रदीपिका’ के ज्योत्स्ना टीकाकार ब्रह्मगुप्त के मत में सूर्य का वात्सल्य प्राण वायु एवं चन्द्र का कपान्नायु है। इन दोनों का योग कर्मायु प्राणायाम के वायु का निरीध करना ही ‘हठयोग’ है। जब हठयोग की कठोरता प्रगट हो रहा गया है। तब हठयोग का यही कार्य, पुनः कार्य के सम्मिलित ज्ञान प्रकट है।

शरीर में सूर्य एवं चन्द्र का योग एवं बरा है सुख

उपर्युक्त परिभाषा में यह स्पष्ट किया गया

१- हठयोग विठेनाथ पृ० ६४

२- हठरत्नावली पृ० २, १४३, १४४

है कि "ह" का कर्षण पूर्व एवं "ठ" का कर्षण चन्द्र है, वीर पूर्व एवं चन्द्र के योग को ही उद्योग कहे हैं। उद्योगियों ने पूर्व चन्द्र का भी स्थान हमारे शरीर में ही निर्धारित किया है।

"उठ रत्नावली" में विपरीतकरी मुद्रा का निर्दिष्ट कही हुई "नाभि (पूर्व) को ऊपर एवं ताहु (चन्द्र) को नीचे गुरुपेशों के अनुसार करे। जो विपरीतकरी मुद्रा कही है। उक्त नित्याभ्यास करने से सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है तथा चरान्नि प्रसूत होती है।"

महायोगी गोरक्षनाथ ने पूर्व वीर चन्द्रमा का स्थान गोरक्षा वंशिका में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है -

"वर्णिकपी पूर्व नाभि में रहता है, कृत्स्न रूप चन्द्रमा ताहुमुख (उच्छार) में नित्य स्थित है। ताहु मुख में नीचे की वीर मुख करके उक्त बाबा चन्द्रमा जिस कृत्स्न की दृष्टि करता है, उसे ऊपर की वीर स्थि हुर वर्णिकपी पूर्व नाभि में रहता हुआ ही पान कर लेता है। जो योगी विपरीत कर मुद्रा को जानते हैं, वे उस कृत्स्न की वर्णिकमुख से बनाकर अपनी मुख में ले लेते हैं।"

उत्पत्तीफला में पूर्व एवं चन्द्रमा का स्थान को निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है-

"उर्वनामिहस्तालीहर्ध्वभावुरः ^{उपर} ^{उक्षी} ^३ ^३ ^३ नाभि कर्षात् पूर्व वीर ताहु कर्षात् चन्द्रमा नीचे। स्वात्माराम का तात्पर्य

१- उठरत्नावली २. ६६

२- गोरक्षापद्धति २. ३२, ३३

३- उ० प्र० ३. ७

यहाँ विपरीतकर्णा हुआ है ही है, जिसके योग से शरीर बरा रहता ही जाता है। पेरण्ड संज्ञिता में भी अन्य छठ्योग ग्रन्थों के समान ही 'नाभि' में सूर्य एवं वायु में चन्द्र है। सूर्य के कृष्ण पान से जीव बराबरस्था की प्राप्ति होता है। इसका उल्लेख मिलता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के शरीर में ही सूर्य एवं चन्द्रमा का स्थान है। वैसाकि छठ्योग शास्त्रों में उल्लेख है कि वायु मूल जो चन्द्रमा का स्थान है वहीं कृष्ण टफ़ता रहता है और नाभि सूर्य स्थान में यह कृष्ण जाकर मलम ही जाता है। विपरीत हुआ कर्मा केवरी हुआ द्वारा उस कृष्ण का पान करने से रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु जादि से मुक्त ही जाता है।

मानव शरीर में तीन शक्तियाँ होती हैं जिनमें वायु तीन पर योगी सूर्य चन्द्र का योग कर उभता है। ये हैं मन, वायु (प्राण) एवं बुद्धि। इन तीनों शक्तियों की साधना से ही सूर्य चन्द्र का योग कर्मा छठ्योग की साधना में योगी प्रवृत्त ही उभता है। और छठ्योग की साधना से कर्मा से विमुक्त ही जाता है। योगबीज में योगी की लोक प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण कहा है- "योग देह (योग साधना द्वारा योगाग्नि में फल देह) कड़ी बलवती है (नास) और कर्मा से विमुक्त लोक प्रकार की शक्तियों से परिपूर्ण और परमात्पुष्ट होती है, उसे देवता भी नहीं प्राप्त कर सकती।" ऐसा छठ्योग का महत्त्व है।

पेरण्ड इस शरीर की कर्मा छी के समान मानते हैं। जैसे मिट्टी के कर्मा छी में बल मरने से पड़ी गल कर नष्ट ही जाता है तथा फलकर फिर नष्ट नहीं होता, उसी प्रकार योगाग्नि में इस छट रूपी शरीर की फलने से फिर वह शरीर पुन ही जाता है। इस साधना से ही

१- पृ० पृ० ३-२६

२- योगबीज ५२

३- पृ० पृ० १-८

दृष्टिलिनी शक्ति का उद्बोधन होता है। उद्योग में सर्वप्रथम मन संयमित करना नितान्त आवश्यक है। मानव शरीर में मन एक वस्तु शक्ति के रूप में कार्यरत है। इसलिए मनः शक्ति का परिज्ञान होना अत्यन्त उपयोगी है। "गौरख-बानी में मन के सम्बन्ध में बताया है कि मन को विज्वाय में लेने से शरीर मुक्त हो जाता है। मन में ही दुःख बसा रहता है, जो वस्तुतः सच है। इस वस्तु को पहचानने वाला साधक मन में ही अत्यन्त परमात्मा से साक्षात्कार करता है।" "मन को वृत्ताति करने के लिए प्राण वायु का निरोध आवश्यक है, क्योंकि प्राणवायु ही मन का सम्बन्ध है। गौरखनाथ ने गौरख-बानी में इस प्रकार का उल्लेख किया है।"

वस्तुतः महायोगी गुरु गौरखनाथ द्वारा प्रवर्तित (चर्चा) योग मार्ग उद्योग ही है। नाथपंथी साधना पद्धति पर पाहुषा एवं शाक्त मत का प्रभाव उल्लिखित होता है। ऐसी जन्म के प्रारम्भ में पाहुषा एवं शाक्तमत पुष्टता को प्रारम्भ हो रहे थे। इसः जन्म प्रभाव पड़ना स्वामासिक ही था, फिर भी योगेश्वर गौरखनाथ ने उपर्युक्त मार्ग को एक पुष्कलक्षित, दृढ़ एवं नवीन क्षेत्र प्रदान किया। श्री गौरखनाथ ने इस साधना पद्धति में शीघ्र उद्योग कर ली किया बहुत एवं समसाध्य बना दिया, यिनि विन्दु- प्राण तथा मन को विविध साधना के रूप में अपनाया गया।

उद्योग साधना में कालिक साधना पर विशेष बल दिया जाता है। इस क्रिया बहुत साधना में प्राणायाम का महत्त्व सर्वोपरि है। वस्तुतः उद्योग प्रश्रियार्थ स्वस्वायत्मान- प्राप्ति का मार्ग है। साधक दृष्टिलिनी वागर्ण की उल्लेख है स्वरूप ज्ञान वर्णित करता है। दृष्टिलिनी का जब लिंग से साक्षात्कार होता है तभी वात्मा को स्वस्वज्ञान की प्राप्ति

होती है ।

एक प्रकार से छठ्योग की वास्तु, षट्कर्म, प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्धादि की क्रियाओं की ध्यान में रखी हुए शरीर प्रधान ध्यान करें तो शरीर की मर नहीं होगी । स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का वास्तव रूप वाचरण मात्र है, इन दोनों का वैश्व निरन्तर विद्यमान रहता है । स्थूल शरीर का ध्वन, व्यापार, सूक्ष्म शरीर के मात्र रूप तथा वाचनाओं की अवस्थिति रूप से प्रभावित रहता है। स्थूल शरीर का निर्माण सूक्ष्म शरीर के अणुओं से होता है । दोनों एक दूसरे के संयुक्त तथा स्वात्मकता से संयुक्त हैं । जब वाचना में वाक् की वाक्ता का निर्णय शरीर के वाक्ता-प्रकार की ही ध्यान में रखकर किया जाता है। तबमें निश्चित नियमों का विधान भी शरीर को अमरत्व प्राप्त (दीर्घ दीर्घ प्राप्ति) करने तथा वाक्ता के लिए होता है ।

घट्टक इस शरीर की कल्पना के समान मानती है, (उनका मत है कि योगी को) योगाग्नि में फाकर (तपाकर) घट्टक शरीर की शुद्धि करना चाहिए । घट्टक का वाक्तायें क्यों यह है कि शरीर जब तक छठ्योग की प्रक्रियाओं का अनुशीलन नहीं करेगा तब तक शरीर से वाचना योगाग्नि नहीं हो सकती । अतः, शरीर की छठ्योग की वाचना हेतु वाक्तायें एवं शुद्ध होना आवश्यक है । इसलिए वाक्-दीर्घ हेतु छठ्योग में षट्कर्म का विधान है ।

जिसे संख्या में छठ्योग विधा की उत्पत्ति स्वीकार किया है । जिसे संख्या के प्रथम पद में ही मन्वान् जिसे कहते हैं कि " जब वाक्ताओं को देखकर और बार बार विचार करते यह निश्चित किया कि योगशास्त्र उत्पत्ति है । जिसे संख्या के प्रथम पद में इस विधा की

१- पृष्ठ ६० १-८

२- जिसे संख्या १-१७

जि विषा तथा महाविषा क्वा है ।

छठीयोग का महत्त्व

मनुष्य की ज्ञान शक्ति के विकास के साथ साथ उसके जीवन का चरम वास्तविक स्वरूप रूप है उसके हृदय में कभी कभी भावित होता है । दुःख निवृत्ति कसा वागन्ध की उपलब्धि - ये दो पार्थनिक लक्ष्य समाप में सुपरिचित हैं । सामाजिक प्राणी इन्हीं को चरम पुरुषार्थ के रूप में निःशेष स्वीकार करते हैं । किन्तु योग द्वारा पूर्णत्व की प्राप्ति को ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य मानना सर्वाधिक सुलभ प्रतीत होता है। मनुष्य का जीवन बन्ध-बन्धान्तरों के र्ण-विपाक से क्वा हुआ और बन्धःकरण मत-विहीनतादि वागर्णों से वागन्ध है । इन्हीं वागर्णों के कारण उसकी क-मुक्ति नहीं हो पाती है । ऐसा पार्थनिकों का मत है । उन समस्त बन्धनों एवं वागर्णों से उसे स्वाधीनता नहीं मिल पाती । इस प्रकार पूर्णत्व की प्राप्ति ही दूर रही पूर्णत्व मार्ग में फलार्पण भी नहीं होता है । पूर्णत्व कथन्त दुर्लभ कस्वा है। उसे वाच तक किसी मनुष्य ने प्राप्त किया है कसा नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा कसा, पर, उस मार्ग में न्यूनाधिक परिमाण में कुछ योग क्खर हुए हैं, क्का क्तिहास काली है ।

साधारणतः निर्विकल्प विबुध ज्ञान के उपय के पस्वात् देह में कस्वान करना कन्ध नहीं होता । क्कल्प विविध क्कल्प की प्राप्ति करने के लिए देह क्पात् शरीर का मोह त्यागना ही क्कल्प के मार्ग में क्खर होता है। इस विराट् प्म में पत्नी के लिए योग के द्वारा देह की सुरक्षित रूप में क्पी क्पीन रक्ता क्कन्त वागर्ण है ।

का: हठयोगियों को सर्वप्रथम उपन देश को स्थिरत्व प्राप्त करने में ही विशेष प्रयास करना पड़ता है। देश स्वयं का उद्देश्य होता है देश को बरारस्थित करके कमलत्व प्राप्त करना। योग के द्वारा स्वयं प्राप्त कर लेने के बाद वह स्वीमुक्त रहित हो जाती है और फिर कभी विकार प्रवृत्त नहीं होती है।

प्राचीन काल में ही नहीं वाच भी सिद्ध की देश में संश्रय विरोध में हठ योग के द्वारा कथम्बु मुक्त नाभ से देश सिद्धि की श्रिया विशेष साधित होती है। " उपाय मत्त में हट जान तथा चीन देश में वाचार्थ लावीले उस मार्ग में दीक्षित होकर कुछ काल में परम उत्पत्ति की प्राप्ति के मार्ग में कटार हो लेते हैं। मास्तवर्ण में हठयोगियों तथा बौद्ध, जैन, शक्त एवं वैष्णव प्रभृति उपासक देश सिद्धि के रहस्य से कमल थे। सिद्धा में वाच भी हठ योग के द्वारा वातु तथा मन को स्थिर करके कसा पाद के बन्धनत संस्कार करके पार के प्रयोग से देश सिद्धि की जाती है। यह प्रसिद्ध है कि ऊँचाचार्य के गुरु गोविन्द भक्तपाद ने उस प्रक्रिया के द्वारा निम्न सिद्धि देश को प्राप्त किया था। बीराही सिद्धों का इतिहास भारतीय और सिद्धों साहित्य में सुप्रसिद्ध है। माधवाचार्य ने अपनी सर्वज्ञ संज्ञा में "रसगर्व" पर्व पर लिखी हुए प्राचीन कारिकाओं का उदाहरण देते हुए बहुत से देश सिद्ध कथम्बु योगियों का नामोल्लेख किया है। वे समस्त योगी वाच भी बलवत् देश में विद्यमान रहकर काल में सर्वत्र विचरण करते हैं।

" योगवीथ में गरिषा नाभ का कथन है कि योग के कटार न तो कोई पुण्य है न कोई दुःख और न पूजन जान ही है। " स्वैराखरोपनिषद् में योग के विषय में निम्न प्रकार कहा गया है- " क

शरीर योगान्मिम्य ही जाता है तब उसकी कारीगरी, परा एवं मृत्यु प्राप्य नहीं होता है। योगविष्ठ में महर्षि ऋषिष्ठ ने प्राणायाम का महत्त्व निम्न प्रकार उल्लेख किया है -

“ है राम । शरीर कपी रूप की गति के लिए हेतु ने मन और प्राण का पुनः किया है। बिना इनके शरीर शिवा-
सील ही ही नहीं जाता । प्राणायाम है मौलिक पुनः, और वाय्वात्मिक
बानन्ध की प्राप्ति होती है। राज्य प्राप्ति है हेतु मौल्य तक की चिदि
परमानन्द की प्राप्ति होती है । एतद्वि प्राणायाम के विज्ञान का अध्ययन
करना चाहिए । प्राण की उपस्थिति कार्यशीलता, गतिमत्ता है सूक्ष्म, सूक्ष्म
एवं कारण शरीर में निरन्तर गतिशीलता को रखती है । ”

यह निर्विवाद है कि हठयोग शास्त्र की समस्त प्रक्रिया की वाय्वात्मिकता मन एवं प्राण का परमपद में लय है । शास्त्र
मन और प्राण पर सक्रिय प्राप्य कर पुनः में अभिव्यक्त, वस्तु निरन्तर, परम-
त्व के वाय्वात्मिकता है चिर किम में स्थित ही जाता है। हठयोग में प्राणा-
याम की शास्त्रा है पन्द्रनाड़ी (ललाटे) और पुनः नाड़ी (भ्रूज) में स्थित
वायु की पुनः प्राप्ति कर प्रारम्भ में उसके प्रीति के द्वारा ^{सहस्रार} एतद्वि है
इति पन्द्रनाड़ी का पान भी कर्त्तव्य है शास्त्र के रूप में हठयोग की ही प्रधान
प्रक्रिया है। एत प्राण शास्त्र की चिदि होने पर योगी स्वरी मुक्त त्व कर
वाक्य में उद्गते की शक्ति प्राप्य कर जाता है।

योगदर्शन के सिद्धिपाद में महर्षि ऋषिष्ठ
ने उल्लेख किया है । फिर शरीर और वाक्य के सम्बन्ध में लय करने है

१- लैलाखरीपनिषद् २-१२

२- योगविष्ठ ६-६-११४ से ११७

वीर उसी वस्तु में ध्यान करने से आकाश में पत्ती की शक्ति का वाता है^१।

योगी जब उदानवास पर जब ध्यान कर लेता है, तो बल, कीचड़, कण्टकादि से उसके शरीर का संयोग नहीं होता वीर योगी की ऊर्ध्वगति भी होती है। क्योंकि वह में कारण कर सकता है।^२ योगी द्वारा वह में कारण की शक्ति प्राप्त करने का एक वीर मुष्ट प्रमाण सतप्रदीपिका के 'प्रावनी शुम्भक प्रकरण' में उपलब्ध होता है। शरीर के मध्य में प्रयुक्त उदानवास से परिपूर्ण उदर वाला वायु काय वह में भी कल्पत्र के समान सुलभक कारण करता है।

चित्त के बन्धन का कारण कर्म संस्कार है। पुनरात्म कर्म विपाक के लिए वह चित्त किसी एक शरीर में बंधे रहने के लिए बाध्य हो जाता है। बन्धन के कारण हम कर्म संस्कारों को जब योगी समाधि के अन्तर्गत द्वारा निमित्त करते चित्त को निर्मुक्त बना लेता है। साथ ही जिन भिन्न भावों वीर चित्त की गति को नहीं प्रकार जान लेता है। हम उसमें वह सामर्थ्य का वाता है कि वह अपनी चित्त को शरीर से बाहर करके दूसरे मूत्र या पोषित किसी भी शरीर में प्रविष्ट कर सकता है। चित्त के साथ साथ इन्द्रियाँ भी वहाँ शरीर जाता है वहाँ अपनी वाप पत्ती वाता है।

योगदर्शन के अनुसार 'बन्धन के कारण कर्म की निमित्तता से वीर चित्त की गति का नहीं भाँति जान होने से दूसरे के शरीर में प्रीति किया जा सकता है।' 'पेरण्ड ने योग की अत्यन्त शक्ति

१- योगदर्शन २-४

२- योगदर्शन २-३२

३- उद्वेगवर्तन २-३० सतप्रदीपिका २-३०

४- उद्वेगवर्तन २-३० योगदर्शन २-३०

पूर्ण बताया है। " नास्ति योगात्परं वत्स^१ ।" इसी प्रकरण में धृष्ट-
ने उल्लेख किया है कि योग द्वारा ही तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होती है^२।

बीष्मसुभगावगीता में योगिराज कृष्ण ने
योग के महत्त्व की वक्तूरी हुए योगी की तपस्वी, ज्ञानी, वीर कर्मी के भी
बतकर उल्लेख किया है।

बीमात्मा का त्वि-पद में अभिन्न ही जाना
ही उद्योग का प्रतिपाद है, जिस राजयोग में समाधि अवस्था अनुत्पत्ति की
प्राप्ति है, उद्योग में, उन्मत्ती तप, कमलकटा, निर्भनबाध, उद्योगावस्था,
सुरीयकर्म एवं बीवन्मुक्ति का फल प्राप्ति होता है। यही बीमात्मा वीर
परमात्मा की वीर्यता है। उद्योग का परमव्यय षट् कर्म भेदन द्वारा कुण्ड-
लिनी बागवत तपा वैराग्य की प्राप्ति है। कुण्डलिनी प्रसाधार में अशुद्ध
वीर प्रभु योगी ही रूप में स्थित रहती है। यद्यपि देह में स्थित कुण्डलिनी
स्वभाव के भेदन है, तथापि प्रभु न होने के कारण बन्धनकारिणी है, जब
तक वह पुष्पावस्था में^३ जन्म मरण फल प्राप्ति है। बाधन होने पर उद्योग
तक संसार करती हुई योगियों की उनके हृद व्यापक वात्मा के स्वरूप का ज्ञान
करा पती है। वस्तु योगी की कुण्डलिनी का उद्बोधन करना चाहिए।

उद्योग जीवन का विज्ञान है, यही देह-
विधि, मन की स्थिर एवं वात्मा के परमपद में प्रतिष्ठित करने का अनुत्पत्ति
प्राप्ति करने का वीर्य साधन है। यह जीवन के मुख्यफल का मापकण्ड एवं
निष्पत्ति है। यह जीवन की सत्य वीर नैतिक वातावरण के अनुकूल योगिक

१- पं० पं० १-४

२- योग समाधाय तत्त्वज्ञानं च उन्मत्ती ।

- पं० पं० १-५

३- बीष्मसुभगावगीता ६-४६

करते हैं और शारीरिक, मानसिक एवं वाय्यात्मिक प्रयोगशाला है। उठयोग है चढ़कर भीचोन्मुख ऐसे उपर मार्ग नहीं। यही शिव-विद्या, महाविद्या और प्राणपरक वायना की कठ विधि है। 'वन्द्यापत्त्यः' एवं कर्म की उत्पत्ति, स्थिति और प्रत्यक्ष विधि होती, क्योंकि कर्म की उत्पत्ति स्थिति और प्रत्यक्ष का निमित्त कारण वह प्रत्यक्ष है। वैशान्त विधि की भाव विज्ञाता करता है, उठयोग समाधि में दुःख का निवृत्तता प्राप्त करते हुए विद्या के बन्धनों को काटकर सर्वथा सर्वशक्तिमान परमस्वरूप सर्वव्यापक, शान्तपठार चेतन - तत्त्व यो ब्रह्म, कर्म, विद्या और वायना के सम्बन्धित नहीं एवं पुरुष विवेक है, का वास्तविकता करता है।

सुखों के लिए योग की आवश्यकता

अपि भौतिक, सामाजिक, वाकिक और वास्तविक प्रवृत्तियों में भिन्नता होने के कारण वायुनिक मानव का जीवन भिन्न ही होता है, फिर भी जीवन में उसकी वायुनिक समस्याओं में है जो एक जान ही रहती है। वह सर्वत्र में वायुनिक मनुष्य की एक ही समस्या में स्थानीय एवं सामाजिक कर्म विद्या व्यापी बहिर समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। वास्तविकता सम्बन्धी एक ही दुःख है भिन्न तथा निरन्तर परिवर्तनशील होने के कारण, अन्तर्धान, सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक वस्तुओं की प्रकृति का ज्ञान और जीवन की सुखार्थक भावों की उपयुक्त विधि तीन निजाली की समस्याएं मानव के अन्त उठ खड़ी हैं तथा भौतिक कर्म में बड़ी लाठी लाठी विद्यमान गवा है। वस्तुतः इन समस्याओं का समाधान वास्तविकता और उनके कारणों की उही जानकारी द्वारा, जिसका सम्बन्ध व्यक्ति

१- वैशान्त १-२

२- योगदर्शन १-२४

को मानसिक शक्ति है ही, उपलब्ध हो जाता है ।

स्थानीय बीर विलम्बापी बीनों प्रकार के फटनों पर एक साथ विचार करने पर हम पाते हैं कि मानसीय समस्याओं की प्रकृति ऐसी होती है कि शरीर एवं मन है उनका सम्बन्ध है। बाय के भौतिक - वादी युग में शरीर बीर मन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्न चला रहा है। अभी तक उसकी कोई विचारता हाथ नहीं आया है । जिन लोगों ने बीमन के धरातल पर बीं यह निष्कर्ष कर लिया है कि शरीर बीर मन बीनों को एक साथ स्वस्थ रखने के लिए योग- विज्ञान ही ऐसी कुंजी है जिसकी उपयोगिता समस्या उस हो जाती है या बिन्दुओं किसी अनुसन्धीत योगी कम्पा राधक की राय है योग-विज्ञान की विभिन्न प्रक्रियाओं का स्वा-स्वायन कर लिया है । वे मसीभाति कसे परिचित हो गये हैं कि बीमन के सम्प्र वागन्ध की कुंजी योगान्यास ही है। अब धीरे धीरे प्रयत्न के मस्तिष्क के यह बात निकलती जा रही है कि योगान्यास वायु- संस्थापियों की ही प्रयत्न नहीं है बल्कि यह विज्ञान ही यह धार्मिकता करता है जो प्रयत्न को नास्कीय बीमन के स्तर से उठाकर पूर्णत्व प्राप्त कराने में पूर्ण उत्तम है ।

कमपि दृष्टांत की प्राचीन परम्पराओं से यह निष्कर्ष करना कठिन है कि बीमन वागन्ध कम्पा वन्ध प्रक्रिया वाक्यों, प्रयत्नों कम्पा सुविधों को क्याविधि ठीक रहेगी एवं जिन वायु का बीमन भी नहीं है।

“ दृष्टांतिका में जैत दिया है कि “ वाक्य सुना, वृद्ध, वसि वृद्ध , रोगी वा दुर्बल (केवा) भी ही योगांगों वस्ति निरासत्य रूप से वन्धास करने पर (कम्पा) चिदि को प्राप्त होता है । ”
 यह वापार पर योगान्यास में वाक्यों के लिए कोई विधि नहीं है । वापना

में वातस्य होकर उत्पत्ता है। उक्त है तो उसके रोगादि विनष्ट होकर वातस्यता की प्राप्ति होती है। वायुनिक यौगी स्वात्माराम की उपस्थिति वात है सम्भव नहीं है। यहाँ पर एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या वातकों वातिकाओं, कुतियों- कुतों, रोगी एवं स्वस्थ की योग की क्रियाओं का सम्बन्ध समान कर्मा समान रूप से करना चाहिये ? यदि समान रूप से सभी को एक ही क्रिया कराई जायगी तो सभी कर सके हैं कर्मा नहीं। यदि समान क्रियाओं को सम्बन्ध कराया जाय तो कौनसी क्रिया किसी करानी है। इस बात पर भली प्रकार विचार करना होगा। यदि वातक के बलावत्त का निरोधन नहीं किया तो हानि ही होगी। इस ग्रन्थ में कुछ योगियों के अनुसार एवं वातकों के दैनिक सम्बन्ध के आधार पर वातकों, वयस्कों एवं कुतियों के विचार्य योगाओं की प्रक्रियाओं का कर्म करने का प्रयास किया गया है।

वायुनिक क्रियाओं का शरीर पर प्रभाव

वातस्य स्वात्मा के लिए प्रत्येक वातन प्राणायाम, अन्य एवं कुछ का कर्मा विशिष्ट गुण है, क्योंकि हृन्मत्ता की स्थिति में जब किसी को वातन कर्मा अन्य क्रिया कराई जाती है तो हृन्मत्ता का पर तो प्रभावी होती ही है साथ ही साथ कुछ शरीर के अंगों एवं परमाणुओं का परिवर्तन भी: भी: करने में पूर्ण उत्साह की है। " वायुनिक प्रसाधुत्तर वात, फित्त एवं कफ है तीनों दोष शरीर के अन्तर्गत हर समय वर्तमान रहते हैं। " जब किसी एक दोष का शरीर के अन्तर्गत वितरित हो जाता है तो शरीर रोगी हो जाता है। वातनादि हमारे शरीर के बड़े हुए

१- (क) वायुः पित्तं कफश्चात्तः शरीरौ दोषौ ह्येव । परब० पु० अ० १

(ख) वातः पित्तश्लेष्माण्येवैव त्रयम् ऐवम् ।। सुबु० पु० अ० २१

बीज की सर्वप्रथम प्रभावित होती है। इसके साथ ही साथ पावन प्रणाली, रक्त संस्थान (हृदय कुकुब्ध शिरा और धमनियाँ) यस्तिष्क तथा उसी सम्बन्ध नाड़ी तथा संक्रियार्थ प्रभावित होती है। इस प्रकार शरीर का जोड़ा हुआ बीज सम्बन्धना नाड़ी तथा संक्रियार्थ प्रभावित होती है। इस प्रकार शरीर का जोड़ा हुआ बीज सम्बन्धना पर जो बात है और शरीर पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। वन्धा स्वास्थ्य रखने के लिए कुछ वाक्य मुद्रा एवं वन्धादि की उप-योगी चित्त हो करती है। यदि वन्धा के बन्दर वनियन्त्रिता बहती और वन्धा निरन्तर नहीं किया तो इसका परिणाम लाभकारी नहीं होगा।

वाक्य प्राणायाम, मुद्रा एवं वन्धादि करने के लिए स्थान, बीज एवं वस्त्राद्यु के विषय में ज्ञान के उत्पन्न किया गया है। वाक्यों का विवरण उद्योग की पूर्ण परम्पराओं के अनुसार दिया गया है, इसके विविध वायुनिक योगियों के प्रवृत्ति वाक्य भी पूर्व- नमस्कार, उवाचन, ज्ञानाज्जादि की इस ग्रन्थ में उत्पन्न नहीं किया गया।

मुद्राओं के लिए योग

एक बीज मुद्रा की स्वस्थ रखने के लिए प्रतिदिन का वाक्यादि का सम्भव कार्यक्रम की तात्काल निम्नवत् है -

क्रम सं०	क्रिया का नाम	विवरण
१	विपरीत करनी मुद्रा (तीर्थाक्ष)	१।४ मिट से १२ मिट तक स्थिर, जहाँ १।२ मिट प्रति वन्धाव कदाति हुए।
२	कल्याण	१।२ मिट से ६ मिट तक, प्रति वन्धाव १ मिट कदाति हुए।

३- मुद्रासन	३ छिन्न है ७ क, एक क में १० सेकण्ड स्थिर, प्रति पदा (१५ दिन) में एक क बढ़ाते हुए
४- उल्लासन	“ “ “
५- पशुरासन	“ “ “
६- अर्धवृक्षस्यसन	१।४ मिट है १ मिट तक बायीं एवं दायीं कीर, बला बला ।
७- पश्चिमात्तानासन	१।४ मिट है १ मिट , १।२ मिट प्रति वचारा बढ़ाते हुए ।
८- पशुरासन	१।६ मिट है २ मिट, १।४ मिट प्रति वचारा बढ़ाते हुए ।
९- शवासन	२ मिट है १० मिट तक, २ मिट प्रति वचारा बढ़ाते हुए ।

सुक्ती के सिद्ध बन्ध मुद्रा एवं प्राणाधाम

क्रम संख्या	बन्ध, मुद्रा , क्रिया प्राणाधाम	विवरण
१	उच्छिन्नान	३ है ७ क, एक वचारा में एक क बढ़ाते हुए ।

मुर्गासन, चक्रासन और ध्रुवासन नहीं करना चाहिए ।

४- कृमि के रोगों की योगसूत्रा एवं पल्पिपीत्थान बाजा बन्धक देर तक नहीं करना चाहिए ।

५- किसी कृमि में बली २ प्यराष्ट होती है वे उद्धिवान, नीति, कपात्माति एवं मलिका न करें ।

६- कपात्माति उज्यायी एवं मलिका का बन्धाव कम्भीर कुत्कुच वालों को करना विषेय है ।

७- किं व्यक्तिगों का उज्य हस्त बाप १५० उज्य एवं नीचे १०० एन० एम० प्रायः रहता है, उन्हें कोई भी बाजादि किता उताव के नहीं करना चाहिए ।

८- योग की क्रिया ऐसा जाती है किना कुछ लयि पीये ही करना चाहिए । यदि बलरक्त ही ही एक पष्टा ज्ञं एक कप तरस कार्य है लयी है ।

९- बन्धाव के बाधि पष्टे पत्वात् पीज्ज लेा उक्ति ऐना ।

१०- योगान्धाव के लिर नीटा कम्भर, स्पन्ध का विधीना कसा दरी क्वादि का विधाना ठीक ऐना ।

योगान्धाव का उज्य एवं क्रम

१- उद्धिवान, नीति, कपात्माति मलिका एवं उज्यायी का बन्धाव प्रायः ही करना चाहिए ।

-२- नीति कहे हैं पूर्ण १ कमा २ कप धुसुना
कप पीड़ा नक डाकर है ही पी पेट के लिए हाफकारी होना ।

३- कपास नाति, मस्किता एवं उज्जायी, जिता-
कन कमा मृपाकन लाकर ही ।

४- बाक बायेकास करना ठीक रिता, कभीकि
नाति पैरियों में दिन में एक बायायी है ।

५- पीमकुटा, उज्जायी एवं कपासादि का कपास
बायेकास करना ठीक नहीं ।

६- पीमकुटा बाकनों के बाप तथा लाफन के पूर्ण
ही कपास नाति ।

७- पीमाम्पास प्रायः कमा धाव निम्न रूप है
कही है हाफकारी होना ।

कर्मज बाक, पीमकुटा, कप, जिता वीर
उसी बाद में प्राणायाम । कपासादि प्राणायाम के समान ही समकना
नाति ।

८- पीमिक कपास है शरीर में प्रायः स्वेद
निकला है, किसी नारा शरीर कपकी रचना ही ऊपरी छाक पर बा
पायी है। कपलि स्नान ही आवश्यक है ।

९- शरीर है किसी पूर्ण कपकी पी रचना पर
सही है उसे मोटि चोड़िया है हनु हनु कर बाक करना आवश्यक है ।

१०- बाक, स्नान, बाकनादि है पूर्ण कमा
कन है कन ३० मिट बाद में कपा हाफकारी होना ।

लियाँ

१- लियाँ भी प्रत्येक वाक्ता में प्रक्रियाओं को करके स्वास्थ्य लाभ कर सकती हैं ।

२- मुक्ती गन्धर्वस्था व वाक्ता प्रत्येक के समय व्यायाम का कार्यक्रम स्थगित रह सकती हैं ।

वाक्ता वाक्ताओं के लिए परिकल्पित योग

वाक्ता योग का प्रकार गुरु-परम्परा के न होकर धन के लालच के कारण जल जल सम्पत्ति वाक्ताओं को पैतृ में प्रदान करके, पुत्रों की वीर समाचार पत्रों के माध्यम से ही रहा है । यह प्रकार- बहुत वाक्ता में वाक्ता- वाक्ताओं की योगाभ्यास करना वाक्ता कहा नहीं , किसी प्रकार का निर्दिष्ट उपलब्ध नहीं होता है । परिणाम यह होता है कि वाक्ता वाक्ता की हठयोग की क्रियाओं करके शरीर को हानि पहुंचा रही है । किसी योग के नाम से कहा ही जाती है । यह निश्चित रूप से स्पष्ट है कि हठयोगियों ने सभी ग्रन्थों में वाक्ताओं के लिए योगाभ्यास करने की संसुति नहीं की है ।

हठयोगियों में वाक्ता प्रकरण में वाक्ताभ्यास में उल्लेख किया है- " वाक्ता वाक्ता हुआ ही, बुद्ध या वसिष्ठ ही, वाक्ता रोगी वा बुद्ध ही, योग के सभी लोगों के व्यायाम वाक्ता रहित होकर करने के वह (वाक्ता में) विधि प्राप्त करता है । "

यही स्पष्ट ही जाता है कि वाक्ताओं के लिए

गलन योग की धारणा बहुत नहीं। प्राचीन योगी दूसरी है, यदि बालक के लिए योगाभ्यास आवश्यक होता तो दुःख, पृथ, रोगों, दुर्घट के उन्निवृत्ति के साथ साथ 'वास' कर्म की भी सम्पत्ति कर ले। और योगाभ्यास का मार्ग क्या के लिए प्रस्ताव कर देते, किन्तु बालक-बालिकाओं के शारीरिक विकास के दृष्टि-कीर्ण का ध्यान में रखी हुए बालक-बालिकाओं की योगाभ्यास का उन्निवृत्ति नहीं किया है।

बालक-बालिकाओं में : वास्तव में बालक के शरीर का विकास की अवस्था में शारीरिक विकास बराबर रहता है और योग के कुछ बाध, पुनः कर्म एवं प्राणाभ्यास का विपरीत प्रभाव विकास पर पड़ता है, इसलिए बालक-बालिकाओं की वास्तविक कर्म करी योगाभ्यास प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। वे देश तक स्थिर रहने वाली क्रियाओं की हीकर की शिक्षा, कर्मभार, भीषण बाध, कष्टान्न के विविध बाधार्थ बाधन एवं प्राणाभ्यास की विकास में बाधनी ही बनता होती है। देश तक स्थिर रहने वाली क्रियाओं बालकों की साम्यात्मिक बाधियों पर दुष्प्रभाव डालता है।

कम प्रत्यक्ष यह उक्त है कि बालकों की योग के लाभ हीनो है जो कर्म के अन्तर्गत ही शान्तिपर वेद वास्तविकी में प्रमाण करी पाये जाते हैं। फलतः बालक यह है कि वे योगी कर्म-बाधार्थ की गणना में नहीं जाते बल्कि कर्म कर्मों की विस्तारण धारणा हीनो है, जो कि कर्मभार स्वल्प है। दूसरी बात यह है कि कम प्रसार के योगी प्रयोगों की धारणा के परिणाम-स्वरूप बाधनी ही जाते हैं।

भीष्मकृतपुनर्विज्ञान में उन्निवृत्ति है कि " योग प्रष्ट गुरुणा गुणमानों के हीनो के अन्तर्गत अन्तर्गत हीनो की प्राप्ति हीनो (उन्निवृत्ति) बहुत बन्नी तक निवारण करी गुणार्थ वास्तविकी की धार में कर्म

होता है। क्या उन लोगों में न बाकर जानवान् योगियों के ही हस्त में अन्य होता है। निःसंदेह यह प्रकार का भी अन्य है, बसि दुर्लभ है। क्या बाकर योगी पूर्ण अन्य के सम- विपक्ष के ही यह संसार में पीछराम होकर संवरण करते हैं।

अन्तर्गतता की बातों पर विचार करने के पश्चात् एवं बाकर पाकिजों के शारीरिक विकास और स्वास्थ्य की सुदृढ़ रहने के लिए स्वस्थताम होनसता के योगजन में स्वामी बुद्धिमान्द द्वारा परीक्षित निम्न पाकिज के अनुसार योगान्धाव करने हेतु संशुति की है।

बाकर- पाकिजों के अन्धाव हेतु पाकिज

क्रम संख्या	योगान्धाव हेतु क्रिया का नाम	विवरण
१	पुल्लोका	१ से ७ तक तक तथा २ से ५ तक तक विचार १ तक प्रत्येक १५ दिन के बाद ब्यापें।
२	वर्धमानाज	
३	अमुराज	
४	हलाज	पहले वर्धमानाज २ तकिण्ड रुकें प्रत्येक क्रिया (पीच) पर एवं पूर्ण हलाज चारों क्रियाओं के बाद २ तकिण्ड रुकें। ३ से ५ तक तक (१ १५ दिन वा ५ अक्षीय)
५	परिपमोत्तान	१ से ७ तक तक ५ तकिण्ड विचार, १ तक १५ दिन के बाद ब्यापें।
६	कर्मस्थान	
७	योगद्वारा कर्म उत्थिमान	१ से ५ तक तक तथा १० तकिण्ड विचार एक तक प्रति अन्धाव ब्यापें।

- ८ विपरीतकरी परत बाईं शरीर उठाकर बन्धाव करें, किन्तु २
 डेकिण्ड प्रत्येक क्रिया (पीच) पर रहें । जब
 वाहन पूर्ण छि हो जाये तब १० डेकिण्ड प्रति
 क्रिया (पीच) पर रहें । २ से ५-१५ मिन | २५-५५ मिन
 ९ उज्ज्यायी ७ से २१ तक, ३ तक प्रति बन्धाव करें । १ ५२५५५५५५

बालक-वाक्छायाओं के लिए विशिष्ट क्रिया

- १- बालक एवं वाक्छाया ६ वर्ष की वायु पर ही
 योगान्धाव प्रारम्भ करें, एकी पूर्ण नहीं ।
- २- उज्ज्यायी एवं उद्विग्यान १२-१३ वर्ष की वायु
 से पूर्ण नहीं करना चाहिए ।
- ३- जो सुक एवं सुखी पूर्ण दण्डित योग का पूर्ण
 कौशल नहीं कर सके वे बालकों के कौशल से योगान्धाव प्रारम्भ कर सकते हैं ।
- ४- बालकों के कौशल को प्रशस्त : कार्य दोनों ऊपर
 किया जा सकता है।
- ५- उज्ज्यायी एवं उद्विग्यान केवल प्रशस्त : कार्य ही
 करें ।
- ६- बालकों का कौशल कम से कम है । इसलिए उनकी
 कौशल क्रिया ही नहीं नहीं चाहिए ।
- ७- बालकों का कौशल परतम है, लेकिन वाक्छाया-
 वस्था में करना उचित नहीं ।
- ८- यदि किसी बालक का स्वास्थ्य ठीक नहीं है

१- वाक्छाया- स्वामी सुसत्यामन्द पृ० १४२

वीर योगाभ्यास शीघ्र करना चाहता है तो किसी अनुसारी व्यक्ति की सहायता लेकर लें।

६- पाठकों के शीघ्र की प्रारम्भ में सुक लें सुखी दोनों ही कर लें हैं।

१०- उपर्युक्त के विवरित सभी ध्यानध्यानियां पूर्ण की उत्तम कर दी गई हैं।

योगाभ्यास के लिए स्थान एवं छुट्टी निर्माण

योगाभ्यास हेतु छुट्टी में पुराण, पवित्र स्थान, छुट्टी व स्वच्छ वातावरण का विनिश्चित महत्त्व है। स्वामीजी ने छुट्टी में योगी के लिए दत्त एवं छुट्टी निर्माण के लिए निम्न उल्लेख किया है-

“ धार्मिक दत्त एवं दत्त राज्य जिसमें कोई उपद्रव न हो, जहाँ योगी का वास्तव है उनके भारों और चार चार तक संकट, फल, सब वीर वानि न हो। ऐसे स्थान में छुट्टी में योगाभ्यास करना चाहिए। धार्मिक दत्त और दत्त राज्य में होने का क्या एक वनिश्चित की वनिश्चित करता है कि योगाभ्यास हेतु कार्य एवं वनिश्चित का स्थान स्थापित है। इसके लिए वातावरण की वनिश्चित आवश्यक है। पवित्र स्थान में ही गई ध्यान करवाती होती है। ”

स्वामीजी ने “ पुराण ” का कर्तव्य वनिश्चित उल्लेख किया है कि यदि राजा निर्दुष्ट करवावारी होगा तो उस राज्य में वनिश्चित एवं वनिश्चित होगा तथा प्रजा सुखी नहीं होगी, ऐसे राज्य में वातावरण-

१- वातावरण- वनिश्चित १९२

२- वनिश्चित २१२

जिसे सब योगियों को ब्रह्म याज्ञानार्थ नहीं मिलता जिसे योग-ब्रह्म में व्यवधान होता है। इसलिए योग-ब्रह्म के लिए उपक्रम रहित स्थान होता ब्रह्म-स्थल है। उपक्रमग्रस्त योग में मय, रंज, बाधक होता है। वह अभी योगी के लिए विपरीत होता है। बुद्धि का उत्कर्ष यहाँ जिस राज्य में ब्रह्म बहुत उत्पन्न होता है, काव्युद्धि - वसिष्ठुद्धि के परिणामस्वरूप भी ब्रह्म ही अभी न रहे। अभी बुद्धि रहता ही क्योंकि योगी को शरीर स्थायी वातावरण की प्राप्ति में बाधा उपस्थित न हो। बुद्धि का उत्कर्ष यहाँ जिस राज्य में वैश्व भिन्न भिन्न ही नहीं 'बुद्धि' है, और यहाँ पर ब्रह्म नियंत्रण ही होती है।

'ध्रुव-प्रमाण' का वाक्य बार बार परिमाण है। प्राचीन समय में ही वायु का एक गव और ही गव का एक ध्रुव होता था। वाक्य यह है कि यहाँ योगी का वाक्य ही उनके चारों ओर एक ध्रुव वास्तु बार बार वायु तक फैल, वसिष्ठ एवं वस (कीक) इत्यादि नहीं होती बाह्य। स्वात्माराधन ने वसुधैविता में 'विश्वान्वित वस' का विशेष स्तर किया है, क्योंकि ब्रह्म जिसे भी समय की या होती है। रात्रि के समय ब्रह्म है वसने के समय फलर वसिष्ठ एवं वसुधैविता वाक्य सिद्ध न हो। 'मक्ति' कये स्वा-वस्य 'वसिष्ठ' मक्ति में स्थित रहता बाह्य। 'मक्ति' का उत्कर्ष यहाँ होती हुई है। स्वात्माराधन के अनुसार योगी को छोटे स्थान की वास्तव्यता है। बहुत पठ या ब्रह्म ब्रह्म के लिए लिख नही है। स्वतः प्रम पद्यों एवं हीन है रहता ही है यही छोटी मक्ति प्राप्ति है।

योग के ब्रह्म है मक्ति (हुट्टी) के लक्षणों के विषय में स्वात्माराधन ने लिखा है :

" हुट्टी का पदार्थ होता ही (जिसे कोई पद वादि न प्रीत कर के) क्या ब्रह्म कि और गूढ़ रहित ही, क्या उत्तम

एवं योग बन्धुओं के वसति तथा गाय के गोबर के पिन्ना लिपा हुआ हो। कुटी के बाहर के स्थान में एक पण्डप बना हो, जिसमें एक पेदी और हुन्दर हुआ तथा प्राकार (पत्तार दीवारी) के वह कुटिया पिरी हुई होनी चाहिए। इस प्रकार के योग- कुटिया के लक्षण उठवीन बन्धावी विदों ने बताया है।^१

स्वात्माराम ने उठ प्रीफिका में उल्लेख किया है कि -
 “ उठ (उपरुक्त) विधि के यह कारगर और जमी प्रकार की भिन्नाओं के मुक्त होकर, गुरु के उपदिष्ट मार्ग के योग का ज्ञान कम्पाउ करे। ”

घेरण्ड संहिता में योगी के स्थान के विषय में बताया गया है कि -

“ दूर पैठ में अवस्थित होता है, वर्ण्य में रक्षण- हुन्दर, पन-बुल में वाचना का प्रकार होने का ज्ञान होता है। ज्ञाः उन योगी का परिचय करना चाहिए। हुन्दर धार्मिक राज्य में साथ पार्थी की वहाँ सुकसा हो, ऐसे उपक्रम रहित पैठ में कुटी कारगर पत्तार- दीवारी बनाये, जिसके वाचा- रिक्त भाग में वाचाय हुआ वादि भी हो। वह कुटी न बहुत नीची न बहुत ऊँची हो। गाय के गोबर के सिमी हुई हो, और कीर्तन वादि उसमें प्रोत न करे। ऐसे मुक्त स्थान में प्राणावायु का कम्पाउ करे। ”

घेरण्ड ने योगी के स्थान की परिभाषा स्वात्मा- राम के अनुसार ही की है। योगी ही के स्थान के विषय में ज्ञान विचार है। घेरण्ड ने दूर पैठ, जंगल और राजधानी (उधर) की योगाभ्यास के लिए निर्णय बताया है। स्वात्माराम ने दूर पैठ जंगल एवं राजधानी के विषय में और टिप्पणी

१- उठप्रीफिका १।१३

२- २११४

३- घेरण्ड संहिता ७।३-७

वह प्रतीक्षा में नहीं थी। पैरुण्ड ने प्राणाश्रय के लिए स्वान्म स्थान की संयुक्ति की। प्राणाश्रय के लिए न तो कौशाग्रसुखी और न निर्जन ही स्थान की किसी तरीके की सुरक्षा की पर उत्पन्न की। कौशाग्रस में वंश का का स्वप्न होता सम्भव नहीं। ऐसा पैरुण्ड का मत है की योगान्वासी के लिए उचित ही प्रतीक्षा होती है। पर और कौशाग्रस दोनों ही कारण से ही किसी छोटे हुए का की स्वप्नवा और प्राणाश्रय दोनों ही में है एक ही की सिद्धि नहीं हो सकती। पैरुण्ड ने स्वान व हृदी का उत्तम प्राणाश्रय के पार्श्व उपरी में किया है। बाज, कुआ एवं चन्द्रमौ के लिए ने मलिका एवं पैरुण्ड राज्य की वाय-एक नहीं सम्भव है। स्वात्माराधन ने पैरुण्ड राज्य, धार्मिक पैरु, धुमिका एवं उपर-रहित स्थान की वनिवायीका एवं प्रथम सम्भव है। स्वप्न स्वप्न वर्णन वास्तव में पूर्ण ही किया है।

योगान्वासी के लिए काल-निर्णय

पैरुण्ड योगान्वासी वारम्भ करने के लिए जो की भी परतत्पुर्ण स्वीकार करते हैं। पैरुण्ड का मत है कि "स्वप्न, विशिष्ट प्रीत्य और वर्णा जो में योग वारम्भ न करे। इन सुखों में योग वारम्भ करने के रोग उत्पन्न होती है। वसन्त एवं शरद में ही योगान्वासी प्रारम्भ करे। वसन्त एवं शरद में वारम्भ करने के सिद्धि प्राप्त होती है तथा रोग की निवृत्ति होती है यह ध्यान रखें।"

प्राणाश्रय का वन्वासी करने के लिए पैरुण्ड वसन्त और शरद की ही उपरुक्त तथा अन्य सुखों की अनुपम स्वीकार करते हैं। वसन्त तथा शरद स्वप्न उपरुक्त है क्योंकि इन सुखों में न तो अधिक गर्मी है

वीर न अधिक डीर है। प्रारम्भ में छात्र की योगाभ्यास करने के हेतु नहीं व
हकी के कारण होने वाली किराई का सामना नहीं करना पड़ा है। अन्य
सुखों में ही उत्पत्ति को सम्मानना होती है।

योग की उच्च छात्रा में छात्र के लिए कीर्ति
की भी वास्तव नहीं हो सकती। छात्रा में सीखता होने के कारण नहीं नहीं
का सम्मान तब नहीं होता।

कर्मों की किराई का भी ऐसा ही था है कि
“ वास्तव के रूप होने के कारणों का सम्मान नहीं होता है ” स्वतन्त्रता
में योग प्रारम्भ करने के लिए वह प्रदीपित में सुखों का कोई उत्पत्ति नहीं किया
है।

योगी का विचार

योग छात्रा में नियमित विचार की वास्तविक
की है। प्रत्येक का था है कि भी छात्र योगाभ्यास के अन्य उत्पत्ति विचार नहीं
करता उच्च छात्र में ही प्रारम्भ के ही उत्पत्ति होती है, वीर उनकी (ही
के कारण) योग विधि नहीं होती है।

योगाभ्यासपूर्विका में नियमित योग एवं योगी-
रूप । योगी में सुख- प्रत्येक उच्च नियमित होने एवं योगी योगी का योग प्रत्येक
प्रकार के सुखों की विनष्ट करता है ” वह प्रकार का उत्पत्ति विचार है। यह
योग न ही बहुत अधिक होने वाली वीर न विनष्ट उत्पत्ति करने वाली की है।

१- योगी व. छात्रा ५० ५५

२- योगी व. छात्रा १६

३- योगाभ्यासपूर्विका ५१०, १६

ही न कुछ चीने वाले की बीर न कुछ जाने वाले की प्राप्ति होता है।^१ "

पातुका प्रतीपनिष्पत्ति में वाहार पर निम्न
उत्तर प्राप्त होता है :

" कल्प वाहार का परिवर्तन करने के
लिए कुछ ही बातें हैं। वाहार कुछ ही चीं फिल की बुद्धि स्वयं ही चीं जाती
है। "

योगदर्शन वाचस्पति के प्रथम सूत्र की व्याख्या
करते हुए स्वामी श्रीउमानन्द ने कुछ वाहार विचार पर निम्न टिप्पणी दी
है-

" मित्राहार लिम्ब, पीठा, मित्राहार,
कुछ परिमाण के चतुर्ध भाग के न्यून, शिव की सम्पूर्ण प्रीति के लिए चीं किया
जाता है, यह मित्राहार कहा जाता है। तामसी, राक्षसी, पिंदा के प्राप्ति के
लिए तथा गरिष्ठ, वात, कफकारक, वसि ऊष्ण, कट्टे, परपी वाही, वसि
रुपा हूँ हूर, छे हूर, बूटे, नला करने वाले, उत्तम तथा स्वाध्याय की
एक निष्कर्षनी वाले भीषण का त्याग करें। "

कल्याणविनिर्वाह " पीठा का वैष्णव वाचस्प-
ति के " नामक छे के अन्तर्गत स्वामी श्रीउमानन्द गिरि ने वाहार बुद्धि
पर निम्न प्रकार के उत्तर दिया है-

" जब वाहार कुछ होता है, तब कल्प
वासी अन्तःकरण कुछ होता है, कल्प के कुछ चीने पर प्राप्ति स्मृति वासी पूर्ण-

१- पातुका प्रतीपनिष्पत्ति ॥१६

२- योगदर्शन वाचस्पति - स्वामी श्रीउमानन्द पृ० २६०

३- कल्याण विनिर्वाह - वाचना की पृ० ५३-५४

हटा बना बीर वर्णा का पापी योगी का वैयत्कर भीषण है ।^१ "

एक हठनामली में योगी के लिए निम्नलिखित पक्षि फलार्थ का उल्लेख मिलता है - " कृमा, वम्बुका, लज्जा, विष्ठा, उष्मा, ही उष्ण, कटारं मिति कस्तु, तिरु खं उरुगों का पैर, पडली खं म, करे का गति, वरी, पट्टा, कैव, पासुन, हीग बीर सुकुन वादि है ।^२ "

एक प्रतीफिता में विशेष रूप से लिखा (बुपाज्य) मुर (स्वादिष्ट) वाहार फेट के कुरपति की हासी रहती हुए जिस की प्रसन्नता (शारीरिक स्वात्मानु बीर वात्म कल्याण) कस्तु परमात्मा पित्तन उद्यम) के लिए प्रवृत्त करना ही मिताहार कहा जाता है । "

" तिस उन्मीरये " का वाक्य है कि योगी की उन्मी पक्षि परमात्मा की उन्मीर कर दिया पाय, उन्मी वर प्रभाव मात्र रह जाता है। उस प्रकार वात्म- प्रसन्नता कस्तु परमात्मा की प्रसन्नता के फल-स्वरूप योगी प्रवृत्त करना योग उद्यम के लिए महान् पारमार्थिक लाभ है । मुर के कुरम रूपत तीन योगी वाहार प्रवृत्त करना वादिष्ट, फेट में योगी भाग हासी रहती है वर खं उवाह- प्रत्याह के लिए सुविधा रहती है । योगी फल जाता है, फेट में विकार उत्पन्न नहीं होती^३ "

एक प्रतीफिता के प्रयोगफल में योगी के वाहार हेतु निम्न विवरण दिया है- " सुखाहु बीर वण्डी वरु फल वनि वाता योगी " गुरु, वावत, बी बीर हाठी वावत, पी, फलन, मिनी, म्मु वपा हाँठ, परपत, उष्ण, मुर की वात, विपत वर, योगीन्द्रों के लिए लिखर है । "

१- हठनामली १।७२

२- " १।७३

३- हठप्रतीफिता १।५

४- " १।५२

“ हाक वर्ग में पंचाङ्ग का वात्पर्य बीजन्ती, ब्रह्मा, भुवनाणी, मेधाव वीर पुनित मे पांच हाक सिकारी हैं । उन्हें मेघ सिकारी कहा गया है। ज्योत्स्ना टीकाकार ब्रह्मानन्द ने किसी वाचस्पतिक ग्रन्थ से उन्हें उद्धृत किया है । ”

मिताहार प्रश्न में ही ‘ हस्तप्रदीपिका ’ में (योगान्वाध में तत्पर) योगी को शरीर पोषण करने वाला, पशु गो के दुग्ध वीर दूध से दुग्ध जमी धातुओं को पुष्ट करने वाला तथा फोमिभित्त पोषण करने के लिए निर्दिष्ट किया है । ”

मिताहार के उत्पन्न पेशाब उत्थिता के पंचमी-पेश में निम्न वस्तुओं की योगी के वाहार के लिए संशुद्धि की है-

“ हाथ की बायल गों का जल, गों का बाटा , डूंग, उड़न, का बादि का पोषण सुधी रहित स्वच्छ करने करना चाहिए । परसल, कटल, मानकन्द, क्लोस, करेता, कन्दूर, बरकर, कब्दी, पैला, मूला , वीर बीजार्थ बादि का हाक बलाण करे । कच्चे या पके केले के दुग्ध का वण्ड वीर उत्तम पुष्ट, वैज, उदित कच्चा हाक, खु का हाक, परसल के फले, खुवा वीर हुसुर का हाक हा अच्छा है। उसे स्वच्छ हुसुर, स्निग्ध वीर सुरस द्रव्यों से कोणज्युक्त बाधा फेट पोषण करे वीर बाधा हाही रहे । मित्राणी ने ही मिता-हार कहा है। उपर के कां भाग को वन्ध से तीसरे भाग को बल से पूर्ण करे वीर पांच भाग को वायु उपारार्थ दिव्य रहता चाहिए । इसी प्रकरण में ‘ शुद्ध हुसुर स्निग्ध ’ बादि श्लोक पेशक ने दूध वन्ध लाने के लिए निर्दिष्ट किया है । इन फलार्थों के अतिरिक्त विपरीत गुण धर्म वाली वस्तुओं की (योगान्वाधों के लिए

१- योगान्वाध- हस्तोप विनिर्णय ५० ३८

२- हस्तप्रदीपिका १६३

३- पेशक उत्थिता ३१७ से २२ ७७

निषेध बताया है ।

योगी का निषिद्धाहार

“ उत्पत्तीफिता में कटु (कड़वा) ताम्र (लट्टे) तिक्त (तीक्ष्ण) कषयिक नम्लीन , ही शक, वात ही मिवं, काँची, तित- वरुणों का वेल , मदिरा, फली, कही वादि का माध , दही, मट्ठा , कृष्णी , डेर, तित , वरुणों की ली (मीष्य फार्थ) हींग, लहसुन, प्याप, वादि का केन योगियों के लि वक्त्र (वस्त्रिकर) है ” का उल्लेख किया है । ”

एही प्रणि में स्वात्थाराय ने बताया है कि
“ फिर के वान पर गर्म किया (बाही) रुखा, वक्त्रिक नम्र के युक्त, लट्टे क्वार वादि के युक्त की विहित नहीं है, भीषण हानिकारक है ।

पेरण्ड के अनुसार योगाभ्यासी के लि निम्न फार्थों की वान के लि निषेध किया है, “ कड़वा, ताम्र लण एवं तिक्त, यह पार रू वाही वस्तुर्ध भुने हए फार्थ, दही , लड्ड , भारी शक, मदिरा, वाड वीर माध (कटुल) का त्याग करें । केन, मूर, प्याप, पेठा, शक , वण्ड, गोया, कषा, कटिवार डेर, डाल, कदम, जम्बीरी नीबू, लहसुन , विष्ण, कमारु, त्रिफाल, हींग, केन वीर गोभी वादि का मध्या योगारम्भ में निषेध है । मार्ग मम , ली कम्पीन, वक्त्रिक केन (वक्त्रिक के वाफा) भी योगी के लि उचित नहीं । यह मक्खन, फूस, डूध, गुड़ उक्कर, वात, वादुहे लयि । पाँच प्रकार के केले, नारियल, क्वार, लौक वादि वस्तुर्धों का केन करें । ”

उत्पत्ती, वायफर, हींग, उत्पेयनात्फ फार्थ

१- उत्पत्तीफिता १। ५५

२- पै० पै० ५। २३ के ३२ तक

बाहुन, वरु वीर खुर का जैन नहीं करे । योगी के लिए डीप्र पत्ते बाते प्रिय,
 लिम्ब, घातुवीं की पोषण वीर मनीसुख फार्प ही ठाने बातिर । घुसी
 वस्तुद, पाप वीर वाचना उत्पन्न करने वाली उष्ण, वासी, वकि ठण्डी , वीर
 वति उग्र वस्तुवीं की योगान्वासी प्रयोग न करे । प्रातःकालीन एवं उपवासादि
 उरीर की कष्ट पहुँचाने वाली क्रियाएं योगी के लिए स्वाभाव्य हैं । एक बार भोजन
 करना , निराहार रहना, कब्रा एक पक्षवाद भोजन करना भी योगारम्भ में
 स्वाभाव्य है। इस प्रकार के विधि- विधान से प्राणायाम का अभ्यास करना बातिर ।
 प्राणायाम प्रारम्भ करने से पूर्वकिय प्रति दूध, घृत का जैन वीर कम्पादन व धार्य
 दोनों का भोजन करे ।

धेरुड ने योगी के निराहार एवं निषिद्धा-
 चार के विषय में धेरुड संज्ञित में एक प्रतीक्षा की कल्पना वकि विस्तृत उल्लेख
 किया है। धेरुड संज्ञित के ज्ञान उद्योग के अन्य ग्रन्थों में ज्ञाना विस्तार से ज्ञा-
 वार एवं निषिद्धाचार का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। कटु, विष, छूटे एवं लण
 दुग्ध, बाते वदिहा की भी ग्रन्थकार वक्तिकर पाती है । लिम्ब, खुर, गव्य
 एवं उरीर की पोषित करने वाले पदार्थों की एक योगियों के लिए सामान्य स्वी-
 कार कही है । उग्र का पहुँचाने बाहु संवरण के लिए संशुति करते हैं । उपरुक्त
 वाक्य एवं निषिद्धाचार का उल्लेख यही है कि योगी सर्वथा स्वस्थ रहे तथा
 वाचना में किसी भी दिन विराम उत्पन्न न हो ।

योग-वाचना में वाक् वीर वाक् कारण

योग वाचना में निराहार, निषिद्धाचार
 वदिहिम्ब उल्लेख ग्रन्थों में वाचना सम्बन्धी अन्य उपयोगी निर्दिष्ट भी उपलब्ध
 होती हैं । एक ह्वायवती में लैव किया है कि “ विर वक्क ने नीद बन कर
 दी है, निराहारी , निषिद्ध एवं स्वाद- प्रत्यास पर वक्तिर कर दिया है,

वीर कन्यास प्रतिदिन करता है, वह योगी ब्रह्म के समान है।^१ "

जिह संख्या में योगी के लिए निम्न विवरण मिलता है, " अधिक प्रयत्न, प्रातःकाल स्नान, शरीर में तैल मर्दन, स्वर्ण बादि की चोरी, शिवा, मृत्पत्र के लेख, बर्तार, काजें कर्मात् प्राणी के भ्रम न करना, उपवास, भूत, पक्षा, प्राणी को पीड़ित न करना, स्त्री का लज्ज, वस्त्र लेना, प्रिय-वस्त्र बहुत बोलना, अधिक भोजन करना, वह सभी योग में बाधा उत्पन्न करने वाली है। कर्मात् लज्जा को त्याग देना चाहिए। "

कन्यास करने के सम्बन्ध में जिह संख्याकार ने उक्त किया है कि " भोजन करते हुए उसी समय कन्यास कर चुकित होव, तब बाधा कर्मात् कन्यास न करे। "

" उक्त उक्त चन्द्रिका (कन्यासि) में बालक के विषय में लिखा है कि " यदि बालक के बड़ी-छोटी योग पिटि न हो तो योग का क्या बोध है, और किन्हीं पद न पढ़ें तो योगी का क्या बोध है। "

साहित्य स्पष्ट है कि योग-साधना करने वाले को बालक का त्याग करके निरन्तर नियमित रूप से कन्यास करना चाहिए।

" उक्त उक्त चन्द्रिका " के प्रथम उपोद्घ में निर्दिष्ट है कि " नायिका, कन्यास विधीन, उग्र स्वभाव, क्षुमाहीन वफावहीन

१- उक्त इन्द्रावली ११७०

२- जिह संख्या ११२६ के २० अ

३- .. ११७३

४- उक्त उक्त चन्द्रिका ११२६

जब बलि की योग की विधि नहीं होती है। " इसलिए शास्त्राचार्य योग्य
की वास्तविक वास्तविक उत्तर में विचार, नियमित व्यास, शास्त्र व्यास, मि-
पात्री, फल है योग करना जब कुछ हीना वास्तविक है, नहीं तो योग विधि
नहीं होती।

एकत्रीकृत में शास्त्र के लिए वास्तविक कारणों
का निम्न प्रकार उल्लेख किया है, "कथम्भी भोजन (विधि शरीर में विचार
बलि पर वास्तविक वास्तविक है तथा पठनादि फल ही वास्तविक है) व्यास-भन (विधि
कथम्भी होती है) निरुक्त वास्तविक विधि (विधि मन में शीघ्र, तीव्र, पीठ वादि
की वास्तविक वास्तविक उत्पन्न होती है) विचार उत्पन्न होता है। विधि की
प्रकार के निम्न प्रकार विधि विचार करना फल कि जहाँ जहाँ एक व्यास में बैठ
कर ठीक, फल फल है वास्तविक है, कथम्भी वास्तविक वादि। फल-फल (विधि
की प्रकार के विचार उत्पन्न है और वास्तविक वास्तविक होती है) तथा वास्तविक
(विधि मन विचार जहाँ ही वास्तविक है) योग की नष्ट कर देती है- जहाँ योग
शास्त्र में वास्तविक पढ़ती है।

वास्तविक योग में वास्तविक कारणों का
निम्न प्रकार फल है कि "उत्पन्न (योग शास्त्र के प्रवि उपपन्न
उत्पन्न-हुति जब वास्तविक) वास्तविक (विधि वास्तविक है उत्पन्न न होती
हुत निरुक्त वास्तविक) फल (पीठवादी व्यास में वास्तविक) उत्पन्न
(वास्तविक-परमात्मा में वास्तविक - की वास्तविक) निरुक्त (वास्तविक में वास्तविक
की उत्पन्न) तथा फल-उत्पन्न के वास्तविक (वास्तविक फल) है योग (वास्तविक)
में विधि उत्पन्न वास्तविक होती है।"

वास्तविक योग में वास्तविक कारणों का

१- यह योग वास्तविक १४२

२- यह योग वास्तविक १४२

३- यह योग वास्तविक १४२

कि " की साधक (कल्याण) में लक्ष्य है, उधो की धिदि प्राप्ति होती है, जो किना दुस्र कल्याण परायण नहीं है, उधे किउ तरह किदि भिउ लक्ष्यी है । यदि कोई साधक में काशी नई विधिनी का ही पाठ मात्र करे हे वीर उनी कि योग धिदि होमवी तो उउ तरह (कदापि) योग धिदि नहीं हो लक्ष्यी । उही प्रश्न में वापि लिखा है कि " केवल केवल धारण (गुरुणा वस्य) करने हे धिदि नहीं भिउ लक्ष्यी वीर न केवल योग कर्मा हे लक्षण हे ही किही साधक की योग धिदि प्राप्ति ही लक्ष्यी है । धिदि की प्राप्ति का ही उउ मात्र कारण, किना में सम्प्रदाय है वह मात्र लक्ष्य है । "

पेरुण उक्तिर में योग के लक्ष्य एवं साधक कारण निम्नोक्तार के प्रश्न में वर्णित है । कहा है पेरुण ने उत्पत्तीका के समय कोई भी नही विधा है । तत्त्व ज्ञान प्राप्ति के विषय में प्रत्य उत्पत्ति में निहित है, " कि कर्मा वादि कर्मा का प्रत्यक्ष कल्याण करने हे साधकों का योग लक्ष्य है, वीर ही योग का कल्याण करने हे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है । " ऐसा पेरुण जनि का वा है ।

उउ कल्याण के लक्ष्यी लक्ष्यी का लक्ष्य लक्ष्य परिमाण, प्रकृति का प्रत्यक्ष, दुस्रों के लिए योग की आवश्यकता, योगी किनाओं का लक्ष्य पर प्रमाण, योग- विविधा वादि में वायुनिक लक्ष्य, दुस्रों के लिए योग, वायु प्राणावायुवादि करते उक्त लक्ष्योक्तियां , योग- कल्याण का उक्त एवं प्रश्न, लक्ष्यी के लिए योग, वायु- वायुनिकों के लिए वायुनिक योग । वायु- वायुनिकों के कल्याण हेतु वायुनिक, योग-कल्याण के लिए, स्वयं एवं लक्ष्यी निर्माण, योग-कल्याण के लिए वायु निर्माण, योगी का

१- उत्पत्तीका ११५, १५

२- के १० ११५

निष्कर्ष: योगी का निष्कर्षकार, योग साधना में राज्य और राज्य कार्यों का वर्णन किया गया है। वही कथाएँ में राज्य जीवन- विधान के अन्तर्गत आते-
 कर्मादि - धीरि, वरि, नेरि, नीरि, ब्रह्म एवं कपालादि एवं पारम्य वरिवा
 के अनुसार राज्य कार्यों के विषय में उल्लिखित किया जा रहा है।

चतुर्थ अध्याय

उत्थान में षट् कर्म-विधान

छत्वीम में चतुर्कर्म-विधान

वातुर्कर्म में- स्वस्थ व अस्वस्थ शरीर का उपाय

योगाचार्यों ने व्याधि को योग का सर्वप्रमुख विफल स्वीकार किया है। वातुर्कर्म विधान परह ने भी 'वारीक्य को, मुख्य जीवन में प्राप्त्य पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का मूल माना है।' काय लीक- पारलीक पुरुषार्थ के सम्पादन में श्रम की रत्न के लिए वारीक्य होना अत्यन्त आवश्यक है।

वातुर्कर्म में स्वस्थ व्यक्ति का उपाय इस प्रकार दिया है- "वातमा, फल एवं उन्मिषी के प्रत्यक्ष रत्न के साथ साथ (शरीरगत) धीन, अग्नि, वातु मल-क्रिया की उपायस्था हो।" वातु उपाय ही धृष्टि का व योग- उपाय का मुलाधार है, व विजयता है ही विकार की उत्पत्ति होती है। जब धीन, वातु, अग्नि एवं मल क्रिया में विजयता वा पाली है ही शरीर वारीक्यता की प्राप्त होती है।

चतुर्कर्म का महत्त्व

छत्वीम में शरीर के बीमारों को दूर करने के लिए एवं वाधीयन शरीर के अन्तर्गत ऊर्ध्व एवं नीमता की रहे, निम्न उपायों

१- धर्मी काम मोक्षानामारीक्य मुक्तुत्तम ॥

- परह ३५०-३१९४

२- उपायः समन्वित समवातु मलक्रियः ।

प्रत्यक्षात्मनिद्रयताः स्वस्थजयमिधीयी ॥

- पु० पु० १५४९

में कोई विशेष न हो विधि है: क्रियाओं का विधान है। उन निर्दिष्ट (नेति, धीति, वादि) के द्वारा पाण्डित्यी संस्थान, एतत् संस्थान, स्वात् संस्थान, पाप्म संस्थान, पुन संस्थान एवं नाही संस्थान व शरीरगत अमृत ग्रन्थियों के दोषों का निष्कासन होकर पूर्णतः पट् शुद्धि हो जाती है, और शरीर वारोम्यता की प्राप्ति होती है। वारोम्यता एवं कलम्यता की पहचान व हटावार्थ विभिन्न प्रकार की है- "धातुओं की विमलता की विमल, व समस्तता की शुद्धि, पुन की वारोम्य तथा विकार की दुःख की उन्म की है।"

अद्वैत विचार में परम व स्वात्पाराम की वस्तुस्थिति

स्वात्पाराम वस्तुस्थिति में अद्वैत के

विचार में उल्लेख करते हैं-

"किसी शरीर में केवल शरीर की वस्तुता ही, उसे यौन-पाप्मता के पूर्ण अद्वैत के द्वारा शरीर शुद्धि करनी चाहिए, यदि केवल शरीर शरीर का वस्तुता न हो तो उन वः कर्मों की न करे।"

स्वात्पाराम वस्तुस्थिति के अन्तर्गत अद्वैत की वस्तुस्थिति पुन ही परिस्थिति में जाननी है उनका मत है कि यदि शरीरगत वस्तु एवं कर्म की शुद्धि हो तो निर्दिष्ट कर्मों की करे कल्पना न करें।

परम पट-शुद्धि के लिए वस्तु वस्तुओं की संशुद्धि करी है- "होम, पूजा, स्नान, वाप, प्रयत्न और निर्दिष्ट पट-पट् कमाना चाहिए।"

परम व वस्तु वस्तुओं के पुन पुन शरीर-

१- विकारी धातुवैद्यार्थ पाप्म शुद्धिहृन्मयी ।

हृन्मय वारोम्य विकारी दुःखः प ॥ ५० पु० २१४

२- व० प्र० २१२

३- व० व० ११६

हिन सर्व मानसिक स्वास्थ्य परिणामों का निर्ययन किया है।

शरीर का मय है कि -- "मदु कर्म द्वारा
 जीवन् , बाह्यी है दुर्बला, सुखायी है स्थिरता , प्रत्याहार है धर्म , प्राणा-
 धाम है ताप, ध्यान है श्रेय कर्म- प्रत्यक्ष तथा समाधि द्वारा निश्चितता
 कर्मों का प्रत्यक्ष फल की उपलब्धि होती है। यह ज्ञान है कल्याण करने पर ज्ञान
 में निश्चित रूप है मोक्ष प्राप्त होता है --

यह- हृदि के लिए शः कर्म ही बर्ताना है
या शक्ति अधिक होने परास्तिर का विषय में किसी ने भी सीमास्थ नहीं किया है ।

रहनामसी में बाठ किसानों का विवरण दिया है यथा-

नमस्करणी, पीठन एवं पञ्चमनादि ।

उपरोक्त संकेतों काय-सीज से हुए पत्र के
द्वारा दिया है जहां नीचे दिए हैं सभी बिंदुओं की प्रतिक्रिया नहीं करना चाहिए ।
ऐसा संकेतों को नकारा नहीं जा सकता है ।

उल्लेख किया है यथा-

“धीरि, वसि, नेरि, माटव, नीलिनी
 लं कलाकालिनि । यः यद् लं नीलीय लं गरीर बुद्धि नै छिह नै । विपिन

- १- पे० पं० ११६०, ११
२- पञ्चतन्त्रावली ११२५, २०
३- पञ्चमीपिठा ३२५-२५

गुणों का उद्धार करने वाले होने से यह योग परमों द्वारा प्रकट है ।”

परम की घट- मुद्रि के घट- बाधनों में
घट की की की स्वीकार करी है :

“ धीरि, वरि, नेरि, लीरि (नीरि)
 घटक की कथाकथा ।”

अनुष्ठी की उद्धार विधीक करी उक्त
अनुष्ठी की प्रकटि करी न कथाविधि मुद्रि की विधाय में स्वात्मा-
राम की परम की मय की स्वात्माराम ने कर्ष विधि गुणों का अनुष्ठी
करे वाता कलाका है, किन्तु कर्ष की अनुष्ठी से वाताक उद्धार वाली की
अनुष्ठी की कथाकथा उक्त उक्त की

धीरि कर्ष

परम कीरि में धीरि के चार प्रकारों का
उद्धार किया है-

“ कर्षधीरि, वरुधीरि, मुद्रिधीरि कीर
मुद्रि कीर । इन चार विधीकी की करी कीर उद्धार कर लेता है ।”
कर्षधीरि के भी परम ने चार की प्रकार कलाका है- “ वाता उद्धार, वाताक उद्धार,
अनुष्ठी कीर वरुधीरि । यह घट- लीरि चार प्रकार की कर्षधीरि है ।

वाताक धीरि

“ कर्ष की कीर के उद्धार कीर की कलाक

१- कीर की ११२२

२- कीर की ११२२, २६

३- कीर की ११२२

४- कीर की ११२२

धीरे धीरे वायुपान करे। पूरी तरह वायु से उबर पूर्ण करने पर उबर में परि-
वाहक कर उत्पत्त्या रोग करे। यह वातघात गौणीय क्रिया है। इसके द्वारा
शरीर निर्मल होता है, और समस्त रोग नष्ट होकर, चरान्नि दीप्त होती
है।"

वातघात- धीमे से जम, दाह, मुँह के जल
एवं अन्य फिज्ज रोग नष्ट होती है, तथा कृण्डलितों का उपवोधन होती है।
यह क्रिया तीव्रतम प्रकृति की है। इसलिए दाहक को बलाघात का अनुमान करते ही
उसे करना चाहिए तथा शीत जल में उसे सम्बधानी से करे क्योंकि इसके प्रभाव से
शरीर शीतल हो जाता है इसलिए धानि भी हो सकती है। ग्रीष्म जल में विरे-
चनः लाभकारी रहती है। इसके चार पाँच बार ठीक प्रकार करने से कुछ काल
के लिए व्यास रोग्य हो जाती है।

उक्त प्रतीफला में वातघात धीमे का उल्लेख
नहीं मिलता है।

वारि चार धीमे

घेरण्ड के अनुसार वारि चार धीमे की
परिमाण्य यह प्रकार है -

" लीः लीः मुँह द्वारा जल पीकर कण्ठ
पर्यन्त पेट को पूर्ण करे फिर उसे बलाघात की भाँति से निकाल देना चाहिए।
यह वारि चार शरीर को शुद्ध करने वाली प्रथम गौणीय क्रिया है, जो इसे
प्रत्येक विरेचन से कहते हैं, ये वैद्यवाची के अनुमान से प्राप्त करते हैं।"

घेरण्ड ने वारि चार धीमे की प्रक्रिया

१- पै० सं० १/१५, १६

२- १/१७, १८

कालाहि धुव उसकी प्रतीति का उत्प्रेषण किया है जो उसे प्रकटन से करता है उसे
 पैसा का का शरीर प्राप्त होता है। यहाँ पैसाओं के समान शरीर का उत्प्रेषण
 धरुण्ड का स्वयं शरीर है है, क्योंकि वारिष्ठार धीति है शरीर के सभी धीति
 वर के विरोध है धीतिमान (उत्प्रेषण) है बाहर निकल जाती है ।

वृद्धाधिकार में वारिष्ठार धीति का उत्प्रेषण
 उपलब्ध नहीं है।

वर्णिष्ठार धीति

धरुण्ड के वृष्टार वर्णिष्ठार धीति का प्रकार
 है-

“ वेदधुण्ड में नाभि को एक ही बार
 लगाने से उपर के उत्प्रेषण रोग विवृष्ट होकर वृष्टारिष्ठार प्रतीति होती है। यह
 वर्णिष्ठार धीति धीतिमानों को विविष्ट होने वाली है। यह परम गोपनीय है, इसका
 प्रकटन न करना चाहिये । ”

धरुण्ड संविष्टा में वर्णिष्ठार धीति के द्वारा
 उपलब्ध वर्णिष्ठार को वृष्टारिष्ठार धीति की प्रतीति करता है। प्रारम्भ में उसे २५
 बार ले: ले: ले: । कुछ काल के पश्चात् फिर धीति धीति धीति धीति धीति धीति धीति
 है धीति है उपलब्ध संविष्टा वृष्टारिष्ठार का निवृष्टार होता है। धीति वृष्टारिष्ठार धीति
 धीति करता है धीति धीति धीति है। प्रारम्भ में यह धीति धीति धीति धीति धीति धीति
 धीति है उन्हें कुछ धीति धीति धीति है, कुछ काल के पश्चात् धीति धीति धीति
 धीति धीति है धीति धीति के धीति में धीति का धीति है। वृद्धाधिकार में वर्णिष्ठार-

घर का वर्णन नहीं मिलता है ।

बहिष्कृत धीति

घरण्ड वंशिता में बहिष्कृत धीति की प्रक्रिया निम्न प्रकार की है-

“ काक- बंधु मुझ बनाकर वायु को पीकर पेट में भर ले । उस गौर हुए वायु को देख पष्टे तक रोक कर कभी मार्ग (मुखा प्रवेश) से निकाल दे । ”

प्रस्ताल क्रिया

बहिष्कृत धीति प्रकरण में ही घरण्ड ने प्रस्ताल क्रिया का उल्लेख निम्नवत् किया है-

“ नाभि पर्यन्त बल में लड़े होकर उचित नाड़ी (जिसकी) को बाहर कसे , उसे पीकर पूर्ण रीति से धाफ कर (फिर हाथों से धी लाकर) उन नाड़ियों को पुनः उदर में रखे । यह प्रस्ताल क्रिया-वाची को भी दुर्लभ है । धाफ कर तक देख पष्टे तक पेट में वायु रोकने की सामर्थ्य न प्राप्त कर ले तब तक वह बहिष्कृत धीति को न करे । ”

घरण्ड ने बहिष्कृत धीति के अन्तर्गत दो कठिन-तम क्रियाओं का उल्लेख किया है, पहली काफ़ी मुझ के द्वारा वायु को उदर के अन्दर से बाहर देख पष्टे तक रोक कर कभीमार्ग से निकाल दे । दूसरी प्रस्ताल क्रिया को भी कभी के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। प्रस्ताल क्रिया कठिन की कठिनतम एवं गैर-कठिन क्रिया है। एक क्रिया से क्यानासायु से दुर्लभ कभी रोग नष्ट

बीजन के पश्चात् जन्म के होते होते कण दातों के कर्म एवं कर्तों में ली रह जाती हैं जिसे कारण दातों की कई विधुत हो जाती है और उनके अन्दर रोग पैदा हो जाती हैं- की दातों के इन व मवाद (पूरा) जाना , एवं गर्म पानी लाना, मूछों में कम्बोरी जाना तथा दातों का पिला । दातों पर काला पीला विषाक्तिय द्रव्य भी बना हो जाता है । उन कणों दूर करने के लिए तैर -रुच कम्पा मुह पिट्टी का प्रयोग प्राप्त करना चाहिए । उन दातों के अन्त में दातों के अन्त वन्त नैन का भी प्रयोग किया जा सकता है । दातों की अधिक मजबूत बनाने के लिए लीच एवं मुन- विच्छेद के अन्त नीचे के दातों को ऊपर के दातों से दबाया जाय तो दात निश्चय रूप से मजबूत होते हैं ।

विषा-हीन

पेरुस ने विषा हीन का क्या कारण है ?
 उक्त उक्ति दिया है । " का विषा हीन का कारण कहता हूँ । यह दातों
 तन्विका बीज वरु मरण रोगादि की मृत्त कर पैदा है । "

प्रयोग

" उनकी, मज्जा, कालिका उन दातों
 कुलियों की मृत्त के अन्दर छल कर विषासुत की साफ की । बार बार ऐसा
 करने से रोग बीज नष्ट हो जाता है । "

बार बार मज्जा (मज्जा) से विषा का
 मार्ज कर बीज नष्ट, हीन की पिट्टी से ली: ली: बाहर की वीर लीच । निम्न

१- पृष्ठ १० से १५ तक

२- १५ से २५ तक

प्रति प्रत्यः कार्यं कुरु प्रीतिं का कल्याण करना चाहिये ; ऐसा करने से निजका सम्बन्धी ही जाती है ।

चित्रा जीवन में एक ही मातृका का
 पुत्रों की प्रतीक दिया था कहा है। वह पुत्रों के प्रतीक है चित्रा है जीवन अधिक
 वापिस लया बुद्धि हीन ही वापिस । जीवन का प्रतीक पुत्रों द्वारा जीवन करने
 के वापस लया चित्रा वापस हीन है।

कर्म धीरि

“तभी, कागज के चीर से चीरों जमी
के रंग की निम्न हूँ। प्रतिदिन देखा कन्धार करने से एक प्रकार काद व्यक्त
होता है”

SECRET

“ वाणिज्य राज्य के लुप्टि से व्यापार का मार्ग की । इस नीति के अनुसार वे कच्चा खनिज नष्ट होता है, वाणी निर्मित होकर विदेश दुर्घट प्राप्त होती है । प्रविष्टि और उद्योग पर, युक्ति के उपरांत व्यापार व वाणिज्य में (निवेश) उद्योग व्यापार करना चाहिए । ”

कूँटे की क्यालान्ध है कपूर धामधानी है ।
 प्रीत करना चाहिये । कूँटे पर नाहूँ भी क्या हुआ नहीं जीत चाहिये कभी
 कभी धामधानी नहो है कूँटे का नाहूँ उन धनि है हूँ या उन्हा है चाहिये
 कूँटे का नाहूँ धाक रहना चाहिये ।

1- ~~पुस्तक~~ ~~संख्या~~ 1122

4-11-68 1134.43

दण्ड धीरि प्रयोग

कामल प्रीति प्रदीप

॥ १॥

आधुनिकता में पॉपि की प्रक्रिया का उद्देश्य

६-१०४०

100-11479

1992

निम्न प्रकार है- " चार कुंठ विस्तार (पीड़ा) और पन्द्रह हाथ बाका (उम्मा) के वस्त्र को वल में मिलाकर गुरु द्वारा काये हुए निर्मित है धीरे २ फट के बन्दर से बाँधे , और फिर धीरे धीरे ही प्रत्याहार करे, वह धीति कर्म कहलाता है । यह क्रिया के प्रभाव से हाँसी, खाँस, स्नीहा के रोग, कुष्ठ और बीच प्रकार के कफज रोग कस्य दूर हो जाते हैं, जिनमें श्वास नहीं है । "

शेरूज की वस्त्र धीति का प्रकार है - " चार कुंठ पीड़ी उम्मीस हाथ कम्मा पम्मीस हाथ उम्मी धूपन (महीन नमन बाँधे) वस्त्र की फट्टी को धीरे धीरे निगले, तथा जुनः जे निगलता बाँधिए । गुल, ज्वर, स्नीहा, कुष्ठ , कफ और फिस को ठीक करती है । (शरीर) बारीक होकर पुष्ट होता है, तथा दिन भर दिन । बलिष्ठ होता चला जाता है । "

वस्त्र धीति चट् कर्म विवेक में स्वात्माराम योगीन्द्र की प्राम क्रिया है तथा शेरूज ने कस्य निर्मित हुए धीति प्रकरण में वस्त्र धीति के प्रस्ताव तथा पुन अधुन के पूर्ण किया है। वस्त्र धीति के लिए दोनों ही महीन वस्त्र के लिए संस्तुति करते हैं। धीति छिड़ करने के लिए महीन वस्त्र की फट्टी लेकर सर्व वल में मिलावे, यदि कोई कृमि वस्त्र में होना लो उमाच हो बाँधिए । धीति को शारंग में निगले से फले शस्त्र कम्मा धूप या अन्य मरु सरल पदार्थ से चिवा करती बाँध लो निगले में चरखा रखी । फिर गुरु द्वारा निर्मित करने पर जुनः जेः निगले , पुरा पुरा निगले पर उल्ले जन्मिन् छिरे को दाँत के नीचे ठीक प्रकार पदावे । यह वस्त्र उबर में बाँध कर टिक जाय तब ठीक प्रकार चला कर धीरे धीरे बाहर निकाले । जब यह बाहर बाँधनी लो जिनमें श्वास और फिस के विकार लो होंगे । फिर जे गर्म पानी में हाफ कर धूप में सुलाकर रात पैना

१- यह प्रतीकित संस्कृत २५

२- यो सं० ११३६, ४०

वाहिए । यह कक, फिटल एवं पैर के विकारों को दूर करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। कक, दवा, ब्रोन्काइटिस जैसे बीच प्रकार के रोग तथा बुन्ट, स्त्रीछा वादि के विकार बहुत घनाप्य होते हैं ।

मूत्र रोधन

पेरन्ड का निर्दिष्ट है कि " जब तक मूत्र रोधन न हो तब तक कपान की श्रुता रहती है, इसलिए प्रकृत्यपूर्ण मुख्य पोषण करना चाहिए । उच्छिन्ना की पद का दण्ड या फक्का क्लृप्ति द्वारा पत के साथ कृत्यपूर्ण मुख्य पोषण करना चाहिए । मूत्र रोधन से कौन्ड की कठिना, वाय, क्लोर्नडा दूर होती है। कान्ति बढ़ती है, चटरान्त का दीफा होता है । "

नक्करणी

सात्पादाय ने नाट्यपूर्ण विधिपन में ही " नक्करणी " श्रिया का उल्लेख किया है- " कपानवासु की ऊपर कण्ठान्त में पहुँचा कर उदर में गये हुए फार्म का उद्गम करो है, इसके प्रत्युत्तरिक कन्यास से नाड़ी बहुत बलीबुद्ध होना, उच्छीग के विल वापारों के पत में नक्करणी कहलाता है । "

पीनिवास फूट नक्करणी की प्रश्रिया की निम्न प्रकार बताते हैं - " लोठ विविध पानी, नारियल का पानी, कसा घृथ मिठा पानी कण्ठ तक पीकर पत बीर वायु को उदर के अन्दर रोक कर, इसके पश्चात् वायु के द्वारा अन्त उरोर का रोधन करे बीर वासि मार्ग से निकाल दे । इस उच्छीगी " नक्करणी " कहते हैं । "

पी फूट पी ने नक्करणी की प्रश्रिया निम्न

१- पी० पी० ११४१, ४२

२- पी० २० २१

३- पी० २० २१ २०

प्रकार कालापी है- " हाथियों के कुण्ड में जिस प्रकार हाथियों का राजा सुलोचन जीता है, उसी प्रकार वह श्रियाओं में गणकरणी बैठे है । १ "

धरुण्ड ने गवहरणी नाम की किसी स्त्रिया
का उत्सव नहीं किया है।

हठप्रदीपिका में वसिष्ठकर्म

वायु वस्ति विधान

इहं स्तुतावती के अनुसार वायु वस्ति कथं
निम्नलिखित है- " उपर में वायु को एकत्रित करने का मार्ग है निम्न है,
इसी वायु वस्ति करते हैं । "

पद्मवस्ति विधान

इहं स्तुतावती में पद्म वस्ति कथं- " नामि
स्थान तक पानी में छोड़ दीकर पश्चिम के अनुसार कुंजी द्वारा प्रवेश में प्रविष्ट करे
तथा द्वारा मार्ग है फट में कीट पद्म पर है । विचित्रकर्मणी (पश्चिमोत्तान की
स्थिति में) करते हुए निर्मल दीकर द्वारा जाण के पद्मात् पद्म को हुनर मार्ग है
बाहर निकाले । "

वस्ति कर्म में सावधानी

इहं स्तुतावती में वस्ति कर्म करते समय निम्न
सावधानी रखने का निर्देश दिया है- " वस्ति क्रिया करने के तीन फट्टी (उपर
निम्न) तक नीक न करे , शान्तिपूर्वक समीप पर बैठे तथा निताहार करे । "

घेरण्ड का वस्ति पैद

घेरण्ड का कथन है कि " पद्म व हुनर ,
वस्ति के दो पैद हैं । पद्म वस्ति , पद्म में तथा हुनर वस्ति , भूमि पर की जाती
है । "

१- पृष्ठ ११४२

२- पृष्ठ ११४३, ४४

३- , ११४५

४- पृष्ठ ११४५, ४५

बल वस्ति कर्म प्रयोग

उत्कट वाचन लाकर नामि तक बल में रहे,
हुता प्रीति में बल की नली लाकर पाहु (हुता) का वाचन प्रसारण करे ।
ऐसे बल वस्ति करते हैं । ”

शुष्क वस्ति कर्म

घोरुट का शुष्क वस्ति विधान- “ परिष्करी-
स्तान करते हुए वस्तिनी हुता के द्वारा पाहु का वाचन प्रसारण करे (हुता
की स्तः स्तः पत्तारि) इस प्रकार के वस्ति के बीच बीच दूर होती हैं तथा
चठराप्ति दीप्त होती है । ”

बल वस्ति कर्म लाभ

घोरुट में बल वस्ति के विभिन्न लाभों का वर्णन
किया है - “ प्रीति, उदर विकार, दूर पाहु के रोग दूर होती हैं, तथा काम-
रोग के रोग दूर हो जाता है तथा उदर निर्विकार होकर दूर हो जाता है । ”

हठयोग साधना के अन्तर्गत अष्टकर्मों में वस्ति
विधान हठयोगियों की एक अनुष्ठान है । यदि किसी साधक को किसी कारण-
वश वस्तिकर्म छिद नहीं होता है तो स्वका कार्य समाप्त हो जाता है ।
वस्तिविधा के प्रकार हैं शुष्क (नाटि - दृष्टान्त) पृथ्वी-रोग, वात, पित्त,
कफ, रोग अथवा रोग व्यर्थ हो जाती है, इसमें लाभ नहीं । बल वस्ति के अन्वय
रोगों के रोगों की वस्ति, हुता, धिर का भारी रोग एवं अरु पारी (वाधा
शीतो) एवं समाप्त होता है । वस्ति के अन्वय करते रोगों से पाहु (रोग, रोग,
रोग, पित्त, रोग, एवं वस्ति) दूर होती है, अन्तर्गत (वात, वात, पित्त, पाहु,

१- पृष्ठ सं० १/४७, ४८

२- .. १/४४, ४५

उपस्थ - कर्मेन्द्रिय बीर बीज, नेत्र, त्वक्, विष्वा बीर प्राण ज्ञानेन्द्रिय) में स्फूर्ति एवं उचित जाती है। वन्द्यःकरण (मन, बुद्धि, पित्त, वदंकार) में बुद्धि वसा कान्ति जाती है। बहरानल प्रतीच होता है (हुंकर मुख जाती है) वन्द्य-
नि वादि विकारों का सम होता है। मनुष्य, प्रेत, प्रर मुख विकारों में भी कामकारी है। पेट के दुमि भी बिना बीजवि प्रयोग के निकल जाती है। यक्ष
बीर पीडा के रोगों को दूर करने के लिए अत्यन्त चिद है।

नेति कर्म विधान

चतुर्धर्मा में नेति का तीसरा स्थान है।
उत्तरनामती में नेति की परिभाषा इस प्रकार मिलती है- " दूरे की मुख
के समान छोड़े चार कीट (छ लेन्व) लम्बी नखरुस धाने की नेति होती है।
नासिका में प्रीत करते हुए मुख में होकर निकले, दोनों तिरों को फट कर ना-
सिका में धाने पीछे करे। तिरों ने की नेति कहा है। "

नेति लाभ

नेति से कपास रोधन होता है, दुष्टि दिव्य
होती है तथा स्कन्ध से ऊपर के रोगों का ज्वर होता है।

बी व्यास देव जी ने " बहिरंग योग " में
नेति के निम्न लाभ बताये हैं - " नेति कपास को दूर करती है, नासिका ,
कण्ठ के मल को निकालती है, कुक्कुम नहीं होने देती, नखरों को कण्ठ में गिरने से
रोकती है, तिर पीडा दूर करती, दुष्टि को बढ़ाती, पीसिया को रोकती तथा
स्कन्ध से ऊपर के भाग में होने वाले रोगों को नष्ट करती है। "

१- पृ० १० ११ ३७ से ४०

२- बहिरंगयोग पृ० ३१४

उत्प्रेक्षीकृत में नेति कर्म-विधान निम्न प्रकार

६- " एक वासिष्ठ (१ फीट) दूत की ओर उसे अच्छी तरह पिना कर नासारन्ध्र में प्रविष्ट कर (बाधकों की) मुठ द्वारा बाहर निकाला बाहिर । छिद्र की नेति होती है । यह क्रिया कपास का शोधन करने वाली दिव्य दृष्टि देने वाली तथा स्कन्ध बन्धि के ऊपर के भाग के सभी रोगों की तीव्र दूर करने वाली है । ऐसा स्वात्माराम योगी का मंत्र है । "

पेरण्ड संख्या में नेति कर्म-विधान का एक प्रकार उल्लेख मिलता है- " एक वासिष्ठ (एक फीट) के धान की नासिका में डालकर कुछ दे निकाला नेतिकर्म होती है । इसके प्रयोग से ऐसी छिद्र होती है, कफ, शूल नष्ट होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है । "

नेति के प्रयोग से पूर्व उसे गर्म जल से धोना बाहिर । नासिका के एक छिद्र से नेति करने के पश्चात् उसे जल से साफ कर दूसरे छिद्र से भी निकाला बाहिर । यदि दोनों नासारन्ध्रों से एक ही पिन नेति निकाला सम्भव न हो तो, एक पिन एक रन्ध्र से तथा दूसरे पिन दूसरे रन्ध्र से वाम-दक्षिण स्वर वाली के क्रम से ली: ली: निकाले । कभी कभी नेति नासारन्ध्र में निकाले पर नासारन्ध्र में बड़े हुए गाँठ जमा भुज, सुजाम या कफ की गाँठ के रुक जाने से स्पर्श न बाहर बीच में ही रुक जाती है, उस समय तो पच-राष्ट होने लगती है जमा होकर बहुत बसती है, लगे साधक को पचराना नहीं बाहिर । धीरे स्पर्श कर बच्चा करना बाहिर । नेति जब नासारन्ध्र पार कर गले में गटक जाती है तब ली: ली: सावधानीपूर्वक नेति की बाँधें हाथ के कुंठा तथा उर्वनी से बाहर निकाल कर चार पाँच बार बाँध पीछे गर्जना कर पिछे नासारन्ध्र में रुका हुआ कफ या अन्य विषादीय मल नेति के साथ निष्कृत कर बाहर वा बा-लेगा । प्रारम्भ में नेति का बच्चा किन्हीं कुम्भी बाधक द्वारा सीखा बाहिर ।

१- पृ० प्र० २३०, २१

२- पृ० पृ० १४६, ५०

सहस्रनामकी में नीति-क्रिया (सीखी)

के दी है- " वायु सर्व वाय्वरः । वायु में वायु की वीर कण्ठावस्थितिया
वायु है वीर वाय्वर में वायु की वीर । दोनों स्थानों की वायु की वीर मुक्त-
कर वीर की वीर है पुनः । वीरि सर्व की वीरियां ने प्रजा की है । "

कहते नहीं नाहीं फिर पिछवा की सुगति ।

उन चीजों को बार बार सुनाने की आवश्यकता होती है ।

सामग्रीयिका का नीति कल- " कथा
 रानी की पौर पुत्राकर के को बारी- बारी से बालक को नति है पुनर्पति ।
 किती बारा यह नीति कल कहा गया है । नीति कलानी में उल्लिखित है । नीति
 के अन्वय में कलराणि प्रतीय होती है, बाक्य उचित बाक्यकारी होती है
 कला(शरीर) के कलम नीतियों को नष्ट करती है । "

विहंगम संविद्या का नीति कर्म का प्रकार है-

“उपर की नीची पाल्व में कम पादि के हुनवि । की रीणी की निनट कर क-
राणि क्तायो है ।”

- १- उ० १० २६ ३९.३३ म मम
२- उ० ३० २६ ३९.३५
३- उ० ४० २६ ३९

दोनों पैरों को ठेढ़ कोट की डूरी पर रखकर
 और दोनों हाथों को घुटनों पर स्थिर कर कन्धा जगह की और झुककर वायु
 की रेफ की विधि से वायु नाकारण्ड है निकासी हुए पेट की पीठ की और जानना
 चाहिए, एवं उरुह पक्ष उद्धिष्ठान बन्ध करना चाहिए । जब उद्धिष्ठान जानने का
 बन्धावली पाय एवं पेट के अन्दर के दाहिने बाएँ नलों को वेगपूर्ण धुमाना चाहिए ।
 एवं क्रिया को नीचि जगह लीखी करी है । एके बन्धाव से उरुह की पावन-
 क्रिया निवन्धित रहती है तथा बीज्य दोष नष्ट होती है । वात-पित्त-कफ
 निवन्धित रहकर वायु स्वस्थ रहता है।

वाटक कर्म

उठरनामती में वाटक की बीटक की वंता
 की है- “ नेत्र दृष्टि को निरन्तर हम से व्युपता होने तक एक बिन्दु पर लाये
 रही । जो वाचार्थी ने बीटक कहा है। बीटक से नेत्र ज्योति व्युत्कर तन्त्रादि रोग
 नष्ट होती है । जो रत्नों की पेटो के जमान गुण रहता चाहिए । ”

उत्प्रेक्षीफिका में वाटक कर्म एवं प्रकार है-
 “ एकाग्र पित्त होकर दृष्टि एक बिन्दु पर लय कर स्थिर कर व्युपता होने
 तक पेटे । वाचार्थी ने जो वाटक कर्म कहा है । यह नेत्रों के रोगों को नष्ट करता
 है । तन्त्रा, वातस्य वादि के लिए कपाट हम है। जो स्वर्ण पेटो के जमान विषा
 कर रहता चाहिए । यह कनपूरक गोपनीय है । ”

धैर्य संस्था में वाटक कर्म की प्रक्रिया उठ-
 प्रेक्षीफिका के जमान बताया गयी है। धैर्य ने जो वाचार्थी हुआ विधि में लय-
 शरी बताया है- “ वाटक का बन्धाव करने से वाचार्थी हुआ की विधि होती

१- उठरनामती १। ५२, ५३

२- उत्प्रेक्षीफिका २। ३२, ३३

है। नेत्रों के उन्नी रोग नष्ट होती हैं। वायु की दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।^१

गुलाबन से बँटकर धातु या फलर की की
 किसी छोटी वस्तु जसा कागज पर कासा बिन्दु बनाकर किता पत्र बताने उपा-
 दित कित्त है वृषास होने तक देखी रहना चाहिए। यह वाटक कर्म विधान है।
 रात्रि में नीमकली, तिल के तेल जसा पी का दीपक बल कर एकटिक पर प्रकाश
 छाती हुए वाटक करना वास्तविक कथ्यक लाभदायक है। वाटक के बन्ध्यास से नेत्र
 वीर मस्तिष्क की उज्ज्वलाता बढ़ जाती है, वास्तविक वायु की बल गति कसा
 वास्तविक है। नेत्रों की गुलाबन बल से धीना चाहिए। वाटक का जब अधिक बन्ध्यास
 हो जाता है तब वायुकी मुद्रा छिद होने लगती है। वाटक के तीन फल है- वायु
 मध्य वीर वायु। नेत्र बन्द करके बाँधों के मध्य में पुण्य या नाभि में वस्तु दृष्टि
 की भावना करके देला वायु वाटक है। किसी लय या धृष्ट फल पर दृष्टि
 स्थिर करके देला मध्य वाटक है, चन्द्रमा नक्षत्र या प्रकाश पर दृष्टि स्थिर करना
 वायु वाटक है।

कपाल पौति कर्म

उत्तरनामही में कपाल पौति कर्म की विधि
 का कथन निम्न प्रकार है- " वेग पुनः वापि (नाशरन्ध्र) से रोक कर फिर
 उठी से पुरक कर वापि से रोक कर, पुनः वापि से पुरक करके वापि से रोक कर।
 यह कपालपौति है। कफ एवं पित्त के कारण उत्पन्न कित्त वीर्य को नष्ट कर
 कपाल को दुब कर प्रलम्ब का जीवन करती है। "

उत्तरनामिका में कपाल पौति कर्म का एक
 प्रकार वर्णन मिलता है-

" लोहाकार की धीकनी के चले के उमान

१- पृ० १० १। ५३

२- पृ० १० १। ५५-५६

दीप्त गति से रेश्म पुरक ही कपास भाँति र्म प्रसिद्ध है। यह र्क विकार को नष्ट करने वाला है।^१”

घरुण्ड संख्या में कपास भाँति तीन प्रकार से उल्लिखित किया गया है-^२ “ वात्तुम, ऋतुम और शीतुम । तीनों प्रकार की कपास भाँति र्क विकार को नष्ट करती है।^३”

वात्तुम कपास भाँति

जड़ा (बाँये नाखारन्त्र) से वायु पुरक कर फिलाता (बाँये) से रेश्म करे, पुनः फिलाता से पुरक करे पन्त्र (जड़ा) से रेश्म करे । इन दोनों क्रियाओं के करने में तीव्रता न करे । हल्का बन्ध्यास करने से र्क दोष नष्ट होता है।^४”

ऋतुम कपास भाँति

“ नाक के दोनों रन्त्रों से बल हीन और उभे मुख से निकलने से तथा मुख से बल हीन कर नाक से निकलते । हल्को ऋतुम कपास भाँति करती है । हल्के र्क दोष नष्ट होता है।^५”

शीतुम कपास भाँति

“ मुख द्वारा शीतकार करके बल पीकर नाखा-रन्त्र से निकलते । जो शीतुम कपास भाँति करती है। हल्का बन्ध्यास करने से (चायक)

१- पृ० प्र० २।३६

२- पृ० सं० १।४४

३- पृ० सं० १।५५-५६

४- .. १।५७

काम्य के समान ही जाता है। वृद्धावस्था से कम जाता है, कफ के रोग नहीं होते तथा ज्वर भीड़ित नहीं करता।^१ "

जीतुकर्म कपाल नाति है कफय व फित्तय रोग समुत्त नष्ट हो जाती हैं। शरीर स्वस्थ एवं निर्मल हो जाता है। मस्तिष्क की उज्ज्वलता तीव्र हो डीक होती है। महर्षि धरुण ने यह क्रिया को स्वात्म्य के लिए अत्यन्त स्थिर तथा शरीर का प्रीत्यर्थ करने वाली बताया है। यह प्रकार योगी का बन्धास प्रबल हो पाय हो उल्लेख पर पुरी वादि नहीं पड़ती है, दुन्दर शरीर के साथ दीर्घायी हो जाता है।

जटुकर्म समीक्षा

योग विधि के लिए स्वात्मभाराम का कथन है कि " वायु की भीति वसि वादि जटुकर्म (के बन्धास) से शरीर की समुत्ता तथा कफ दीर्घादि नहीं है मुक्त हुआ पुरुष प्राणात्म्य को, तो बताया ही विधि प्राप्ति हो जाती है। "

जटुकर्म से शरीर की समुत्ता एवं कफ दीर्घा का कम होकर शरीर की समस्त धातु समान कल्याण को प्राप्त होती है। स्वात्मभाराम योग विधि के लिए जटुकर्म की संस्तुति उषी कल्याण में करते हैं जब वायु में स्थिर एवं कफ कल्याण से प्रसन्न हो। यदि इन विकारों से प्रसन्न नहीं है तो जटुकर्म की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करती।

स्वात्मभाराम ने उल्लेख किया है कि " प्राणात्म्य के बन्धास से ही (शरीर) के सभी दीर्घ नष्ट हो जाती है। ऐसा हुए

१- पृ० ६० श १५, २६

२- पृ० ६० श २३

कर्म का वर्णन किया है। छठरत्नमालीकार जीनिवास मूट ने दो प्रकार की (चतुर्दश वायु) वस्तुओं का भी उल्लेख किया है किन्तु वस्तु-कर्म के पूर्व वस्त्र-कर्म करने के पलायन हैं ।

“ नाभि पर्यन्त पद में स्थित होकर गुदा प्रोष्ठ में (तर्जनी) बलुली की प्रोष्ठ कर वस्त्र दिया है पैर के अन्दर पद की प्रोष्ठ करे । ” चाय ही गुदा प्रोष्ठ में वायुस्थित पद की बाहर निकाली की विधि भी उन्हीं वस्तुओं है -

“ बलानुसार चाय पर स्थित रहते हुए निर्जल होकर विभिन्नरणी (पश्चिम-उत्तान) करते हुए पद विरक्त करना चाहिये । वस्तु-कर्म के पश्चात् तीन घड़ी (७२ मिनट) तक (गरिष्ठ) भीष्म न कर तथा भूमि पर बैठे निराहार (हला सुपाय्य पात्र) ग्रहण करे । ”

जीनिवास मूट ने स्वाम्याराम द्वारा उल्लिखित पद वस्त्र करने के लिए गुदा प्रोष्ठ में बाँध की नती की उत्कट वायुन करी हुए प्रोष्ठ के लिए विरोध किया है। उनका कथन है कि “ हमारे मा में बाँध की नाह के प्रोष्ठ के लिए उच्च साम्राजा वासि योगी हो सफल है । इसलिए हमने उसी के सफलता अन्य मार्ग निकाला है, जिसे “ पष्टी ” वासि योगियों ने समीचीन स्वीकार किया है । ”

मूट जी की वस्त्र कर्म के द्वारा पद वस्त्र करने की प्रक्रिया में अधिक सावधानी रखी पड़ सकती है, क्योंकि गुदा के अन्दर नाहून लकर रक्त बहने लगता है। इसलिए प्राथमिक्य काल में नाहून काट कर

१- पृ० १० ११४३

२- .. ११४४, ४५

३- .. ११४८

बाँवें काम की तर्पनी कुंही कसा हुआ है जाकारानुसार मुँही, ऊपरून्य, नागर कसा हड्डिया बण्ड का भी उपयोग समीचीन होगा। उन चक्रे उपयोग है पूर्ण पूरा, बन्दन, नारियल, चरुओं का दैत, ग्लेशरीन या वैलून दैत को ला दिया जाय तो उत्तिम रहेगा। वस्त्र दिया करने के पश्चात् मुँहा प्रीत में पुष्कता जाती है। खास दिया के पश्चात् भी मसल कसा नारियल का दैत कसा ग्लेशरीन का उपयोग करना चाहिए। वस्त्र के पश्चात् दो घण्टे तक किताम तथा सुनिम्न तिमही (मुँग की दासक तथा चायस मिलाकर) भिजाहार में उक्ता रहती है। वस्त्र कर्म दिन के समय प्रातःकाह ही करना चाहिए तथा दिन में किताम एवं भिजाहार तथा राति में हूँ न लगे तो उत्तिम होगा। यदि किसी प्रकार काम न करे तो पुनः तिमही कसा हूँ मौसमी फल चायकाह लगे या उलो है। दिन में कठिन कम वर्धित है।

वस्त्र कर्म वस्त्र धारण है की कसा बाँव की नली के उपयोग है लकड़े पूर्ण उद्दिष्टान बन्ध तथा वस्त्रिनी मुँहा का बन्धास परना-परक है। यदि उद्दिष्टान बन्ध और वस्त्रिनी मुँहा का बन्धास नहीं है तो वस्त्र कर्म सम्भव नहीं होगा क्योंकि वस्त्र करने के लिए मुँहा का वास्तुन-प्रवारण अनु-मिष्ट कम है होना चाहिए जिसके वह व्यष्ट माना में प्रीत कर रहे और यदि किसी बाधक की उद्दिष्टान-बन्ध की प्रक्रिया नहीं जाती है तो उदरगत दोनों नते नहीं उठेंगे तो भी वह प्रीत नहीं होगा। खास उद्दिष्टान बन्ध एवं वस्त्रिनी मुँहा जिह होना आवश्यक है।

वस्त्रिनी मुँहा एवं उद्दिष्टान बन्ध की दिया तथा मुँहा प्रीत को निम्न करते है कि स्वात्माराम, गुरुण्ड एवं बीनिवाज्जट ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

नमो भगवते

स्वात्माराम, धैर्य तथा भट्ट नेति द्वारा
कपाल उद्यम हेतु समस्त हैं । स्वात्माराम वीर धैर्य ने एक पितृत्वि कर्मात्
६ एवं सम्बन्धी मन्त्रात् प्राप्त के धर्म की नेति का उत्प्रेत किया है। भट्ट ने नेति की
उत्पत्ति है: पितृत्वि कर्मात् ५४ एवं सम्बन्धी नेति का उत्प्रेत किया है- " एक पञ्चम
प्रात के धर्म की है: पितृत्वि परिमित बुद्धिन्ध एवं बुद्धि की प्रात के वाक्यार की प्रात
नेति होती है । "

भी नष्ट हो जा कि नैति पञ्चक धर्म की
 प्रकृति के प्रकृति की वास्तविकता के समान ही, यह भी ठीक प्रतीत होता है किन्तु वः
 वास्तविकता की नैति की सम्पूर्ण उक्ति नहीं है। उक्त मुख्य कारण यह है कि नासा-
 रम्भ प्रकृति के पञ्चक नैति का वास्तविक प्रकृति से टकराती है वही ध्वस्त होने लगती
 है। और उक्त समय यह प्रमाण होता है कि वह शीघ्र ही निकाला जाय, यदि
 वः वास्तविकता की नैति का प्रयोग होना ही निकाली में विद्यमान होमा। उक्त
 वास्तविकता नैति- प्रकृति की वास्तविकता में नासा-रम्भ में प्रमाण होता है किन्तु मार्ग
 वास्तविकता है किन्तु कारण उक्त नैति के नासा-रम्भ ध्वस्त करने में रक्त
 जाने की सम्भावना होती है। वाः नैति की सम्पूर्ण एक फोटो ही प्रमाण है।
 नैति की वास्तविकता के विषय में वास्तविकता तथा ध्वस्त ने कौन प्रमाण नहीं किया
 है। प्रमाण में वास्तविकता की नैति वास्तविकता वास्तविकता तथा वास्तविकता उक्त उक्त
 प्रमाण वास्तविकता वास्तविकता, किन्तु नैति प्रकृति के समय होती रहे। प्रमाण के प्रमाण
 उक्त प्रमाण वास्तविकता के विषय में वास्तविकता कर लेना वास्तविकता। प्रमाण के पञ्चक ध्वस्त
 वास्तविकता वास्तविकता।

ਮਾਇਤਿ ਕਾਮਾ ਹੀਲਿਖੀ

स्वाध्यायाम ने प्रबल वेग है यह ही जानी

पाखी ने पुनाने की नीति नामकरण किया है^१।

घेरण्ड ने उसी प्रक्रिया की सीखी क्या है।

इन दोनों ने एक ही प्रकार की नीति कर्म का वर्णन किया है।

भीमिमास भट्ट ने छठरत्नावली में वाक्य एवं वान्तर नीति का उल्लेख किया है^२। वान्तर नीति में भट्ट ने 'छठ वीर फिंगला की फेट में बला बला पुनाने के वान्तर नीति क्या है।' भट्ट का नीति की वाक्य वीर वान्तर नीति बला बला नामकरण करने का एक उपयुक्त प्रतीति नहीं होता, क्योंकि नीति क्रिया प्रारम्भ करते समय छठा फिंगला उचित उपर के दाहिने वामें की उठाकर समस्त अक्षर पैर के साथ पुनाने जाती है। जब तक ये वान्तरिक नहीं नहीं उठें तब तक नीति चिह्न नहीं होगी। अतः वाक्य वीर वान्तर नीति का भी बला बला नाम दिया है, उपयुक्त नहीं मान फ़ैला, एक प्रयोग की दृष्टि से एक ही नीति है। अस्तु, स्वात्पाराम तथा घेरण्ड की नीति कर्म क्रियात्मक फला तथा स्वात्म्य क्या है दोनों एक मात्र के ही हैं।

घाटक कर्म

चतुर्कर्म के अन्तर्गत, वीर-निदि के लिए घाटक का अन्वय परमात्मक है। भीमिमास भट्ट ने घाटक की 'घोटक' वीर 'घाटक' नाम दिया है। स्वात्पाराम तथा घेरण्ड ने इसे 'घाटक' नाम से उल्लेख किया है। स्वात्पाराम ने घाटक की 'कन्तस्वाटक' नीति क्या घाटक फेटक 'सर्पपिटी के लक्षणा गुचा रत्ने के लिए उल्लेख किया है।

१-पृ० ३० अ० ३४

२- पृ० ३० अ० ३१

३- .. अ० ३४

४- .. अ० ३४, ३५

पेरुड की "ताम्बी कुता वायि पुन" ^१
ताम्बी कुता की विरिक्ता विदि के लि बताया है

व्याख्यान की ने "वहिरण योग" में निम्न प्रकार वाटक की प्रक्रिया की है- "मैनी की तन्त्रि जानी वह पाती है कि विन में तारे दीठ वायि है तथा पुखी पुष्टिपात है - तात्पर्य ही वायि है । वायुय धारणा व्यान का वह विशेष रूप है वह पाती है, मानसिक वह की भी बुद्धि होती है । पाप्मिण्य, कर्मीय, वाक्मिण्य वाक्मी में की वायि पाती धारणा वाटक है की होय विद होती है, वाटक है की ताम्बी तथा उम्मी कुता विद ही लखी है ।"

क्यापि स्वात्माराम कीर पेरुड वाटक-प्रक्रिया योग-विदि के लि सावकारी स्वीकार करने में ताय ताय लम्ब है , क्यापि योग विदि हेतु वाटक वायुय का सुत्यान होती लखी हुय लखी मुनी का विपुल उल्लेख नहीं किया है तथा निन निन प्रकृति पर वाटक करना पावित , ये भी वर्णन किया जाना अनिवार्य है ।

स्वात्मार्ति

स्वात्माराम ने हीरास्तर की धर्मिनी बली के व्यान होयनति के हेतु पुन करने की स्वात्मार्ति कहा है स्वात्मार्ति की एक प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए वह एक प्रकार की दूर करती है, वर्णन किया है ।

पेरुड ने वाटकन, कुरुकन एवं हीराकन योग प्रकार की स्वात्मार्ति का उल्लेख किया है ।

१- पृ० पृ० १। ५१

२- वहिरणयोग पृ० ३१५

३- पृ० पृ० ३। ३६

४- पृ० पृ० १। ५४

वाल्क्य कथास भाषि की प्रक्रिया के वर्णन में कथा स्वामीभाराम ने एक प्रश्न की 'कथनी' कथी चीज नहीं है कथी के लिए चीज दिया है, यथा धरुण्ड 'कथनी न तु धारिण' कथी कथी: कथी: प्रश्न एक के लिए ही संशुद्धि करी है। यह प्रकार कथनी की वाल्क्य कथासभाषि में 'कथी' का अन्वय है।

कथासभाषि एक, धरु के विचार की दूर करने के लिए उत्पन्न किया है। कथी कथासभाषि की किसी कथनी कथनी के वाल्क्य प्रारम्भ करना ही उपलब्ध किया। स्वामीभाराम द्वारा कथासभाषि चीजकथि के प्रश्न-प्रश्न करने का चीज दिया है। यह कथासभाषि की कथासभाषि का रूप है। प्रारम्भ में यदि चीज नहीं कथनी के कथासभाषि प्रश्न एवं कथनी पर विचार एवं है कथनी है। कथनी प्रश्न कथनी की यह भी कथनी में कथनी है कि प्रश्न एवं कथनी कथनी एवं के लिए कथनी कथनी है। यह कथनी कथनीकथि कथनी की कथनी है। प्रारम्भा-वस्था में चीज कथनी कथनी के लिए उपलब्ध नहीं है। कथा 'कथनी न तु धारिण' धरुण्ड द्वारा दिया गया कथनी की कथनीकथि किया।

स्वामीभाराम ने कथनी के वर्णन में कथनी-कथि, कथनीकथि कथनी प्रश्न की कथनीकथि की कथनी कथनी दिया है। धरुण्ड की कथनीकथि-कथि कथनी, कथनीकथि एवं कथनी के कथनी कथनी की कथनी एवं है कथनी के लिए कथनी कथनी है।

यह कथनी के कथनीकथि कथनी की कथनीकथि एवं कथनीकथि का कथनी, कथनीकथि का कथनी, कथनीकथि के कथनी में धरुण्ड व स्वामीभाराम की कथनीकथि कथनी एवं के कथनी, धरुण्ड की कथनीकथि, कथनी कथनी, एवं कथनी कथनी की प्रक्रिया एवं कथनी कथनीकथि कथनी, स्वामीभाराम द्वारा

कर्मकाण्डी का वर्णन तथा साम । वसिष्ठर्षे, वसिष्ठ ऋषि एवं पञ्चमूर्ति के विष्णु
 सामों का उल्लेख । वेदिक कर्म विधान एवं साम । गौडि कथा लीला की प्रश्रिया
 ६०१० में उल्लेख , गौडि वर्णन । गौडि के साम । वाट्ठ कर्म, एवं साम । कथा-
 गौडि की प्रश्रिया एवं लीला लीला ऋषि । तथा उनकी शारीरिक साम । स्वात्माराधन
 की कथाकाण्डी पर टिप्पणी । अक्षुर्ष कर्माणा कथादि का उल्लेख किया गया
 है । कवि कथाय के कथाकाण्डी काधन विधान व्यापकीयगी काधन एवं कथ्य लीला
 के वापसी का वल वल उल्लेख तथा उनकी लीला वसिष्ठ शारीरिक सामों का वर्णन
 किया गया ।

पंचम अध्याय

संयोग में वाचन-विधान

बहुलांग ५ वाक्य-विधान

शरीर के ऊपर निम्न प्रभाव पड़ता है - " शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर के वैराण्ड (टिश्यू) को स्वस्थ रखने के लिए तीन मुख्य बातों का रक्त- रसाय ठीक प्रकार करना चाहिए । क्या-

१- शरीर के वाय्वारिक भागों में स्थित प्रक्रियाओं का ठीक प्रकार पोषण ।

२- मत्त पुन विच्छेदन क्रिया नियमित

३- नाड़ी संस्थान स्वस्थ बना रहना । "

वातों के वन्धास से उत्पन्न सभी क्रियाएं नियमित होती रहती हैं ।

शरीर स्वसंचालित मशीन के समान है। निरन्तर चलती रहने से मशीन के कई बॉर छोटे सभी पुर्न मिलते हैं, इस पितावट को यौगिक वातों से दूर किया जा सकता है। जब वातन क्रियावां को किया जाता है तो रक्त संवाहक की गति तीव्र होती है और रक्त वाहक धमनियां सम्पूर्ण शरीर में हुए रक्त के साथ साथ प्रोथीन (प्रोटीन) लैट (फेट्स) बीनी मुक्त पदार्थ (शुर्ग) लण (साइट्स) व ... विषाक्त (वा स्त्रीक) वैराण्ड तक पहुंचाती है जिसके कारण हमारा शरीर वाय्वीयन स्वस्थ बना रहता है।

वातन की परिभाषा

वात्की तीन उति करने लुट (वात् + लुट) वात्तम्^२ " बेली का प्रकार । स्थिरज्ज तत् सुतज्जेति स्थिरज्जत्तम् (वातन पर का विशेषण) निरन्तर तथा सुत्तारी । स्थिर निरन्तरं यत् सुतं सुत्तापदं तदा- एन मिति सुत्तार्थः । वात्की^३ वात्की वा^३प्रेति वात्तम् । " स्थिर सुत्ताजम् ।

१- वात्ताज् पु० ११४

२- योगसूत्र (तत्त्ववेत्ताखी- योगसाधिका) पु० ३६१

३- योगसूत्र स० ४६

सुखपूर्वक निश्चल बैठा जाय उसे वासन कहते हैं। प्रायसि के इसी सूत्र पर महाराज योग ने निम्न व्याख्या दी है- "उस विषय में जैसे फलान, वीरान, मन्त्र-ज्वादि जो विषयों के दृष्ट हो वही करे परन्तु जिसमें शरीर कम्पादि न हो और सुख हो।"

राजयोग प्रणीत प्रायसि ने वासन को समाधि की ओर उन्मुख करने के लिए ही उसका कार्य योग्य घोषित कर दिया है, किन्तु उद्योगाचार्यों ने वासनों के शारीरिक व समाधि लाभों का विस्तार से वर्णन किया है।

उद्योग में वासनों का स्थान

प्रायसि योगदर्शन १ "वासन" का तीसरा स्थान रखी है - "यम, नियम, वासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में वाठ का है।"

हरिदत्ताचार्य ने भी 'सिद्धि सिद्धान्त-पद्धति' में वासन का तीसरा स्थान ही स्वीकार किया है।

वीरविवाच मठ ने "उत्तरनामाली" में योग के वाठ कर्णों को स्वीकार किया है तथा "वासन" को प्रथम कर्ण स्वीकार करते हुए उल्लेख किया है- "भरि द्वारा वासन को उद्योग का प्रथम कर्ण बताया है, क्योंकि द्वारा स्थिरता, स्वच्छता एवं कर्ण वासन प्राप्त होती है।"

१- योगसूत्र - योगवृत्ति २४६

२- योगदर्शन २३६

३- सिद्धि सिद्धान्त पद्धति २३२

४- पृ० १० ३१४

चट्टी के काल स्वात्माराम ने भी वाचन की
हठयोग का प्रथम की ही स्वीकार किया है। क्या-

“ वाचन हठयोग का प्रथम की है, इसलिए
कहि वाचन की कही है, वाचन करने से वाचक की स्थिति, आरोग्य एवं की वाचन
की प्राप्ति होती है। ”

धरन्ध ने योग के चार शास्त्रों में वाचनों की
दुपरा स्थान दिया है^१। इसलिए धरन्ध संज्ञित के दुपरी उल्लेख में वाचनों का वर्णन
किया गया है। धरन्ध वाचनों से पूर्ण चतुर्णों का उल्लेख करते हैं।

स्वात्माराम की वाचनाभ्यास से स्थिता,
आरोग्य एवं की वाचन की उपलब्धि होती है^२ किन्तु धरन्ध ने “ वाचनकर्मिणो मुदम् ”
कहि वाचनों से मुदम् वाचनी है तथा “ मुदमाभिरता ” मुदमा से स्थिता होती
है, का उल्लेख किया है।

वाचनों के अभ्यास का क्या प्रथम है स्वात्मा-
राम और धरन्ध दोनों ही स्वीकार करते हैं। स्वात्माराम ने हठयोग का प्रथम
का नाम है तथा चट्टी शिवाजी की हठी कथा रता है। धरन्ध चट्टी की
कहि की उल्लेख करते हैं। क्या स्वात्माराम का यह समीचीन प्रतीति होता है।
इति चट्टी की शिवाजी कलि तथा किता मार्गस्थ के नहीं ही लक्ष्य है किन्तु
वाचनों का अभ्यास कथक मात्र है ही किया जा लक्ष्य है। वाचना के प्रथम वर्ण
में ही हठयोग के वाचरण वाचन की वाचक के लिए कथा है। चट्टी की

१- ह. प्र. १/१८

२- प्र. प्र. १/१६

३- ह. प्र. १/१७

४- प्र. प्र. १/१०

तो योग की उच्चारणस्था में उच्चारण करने की आवश्यकता होगी। साधारण वाक्स्था में निरीग रहने के लिए वाक्स्थान-विधान ही उपयुक्त होगा।

उठ्योग में वाक्स्थान-विधान

उठ्योग में वाक्स्थान-विधान की सभी योगी स्वीकार करती हैं किन्तु वाक्स्थान की वाक्स्थानों की संख्या के विषय में भिन्न नहीं है।

‘ज्यामिन्दु उपनिषद्’^१ में चिदाक्ष, मन्त्राक्ष, चिदाक्ष तथा प्रमाक्ष - चार वाक्स्थानों का उल्लेख मिलता है।

योगसूत्र उपनिषद् में प्रमाक्ष तथा मन्त्राक्ष की वाक्स्थानों का निर्देश है^२।

योगसूत्रोपनिषद् में चिदाक्ष, प्रमाक्ष, चिदाक्ष तथा मन्त्राक्ष - चार वाक्स्थानों की ही स्वीकार किया है।

वराहोपनिषद् के प्रथम अध्याय में ११ वाक्स्थान-क, प्रम, धूम, मन्त्र, कुम्भ, वीराक्ष, स्वस्तिक, मन्त्र, चिह्न, मुक्त तथा गोमुख का वर्णन उपलब्ध है।^३

उठरत्नावली में वारीय्य एवं सुती रहने के लिए वीराक्षी वाक्स्थानों का वर्णन किया गया है।^४

उठप्रतीक्षा में वाक्स्थानों का वर्णन- ‘वशिष्ठ वादि मुनियों और मत्स्येन्द्र वादि योगियों ने जिन वाक्स्थानों को स्वीकार किया

१- ज्यामिन्दु उपनिषद् ४२

२- योगसूत्रोपनिषद् १।४

३- योगसूत्रोपनिषद् २६

४- वराहोपनिषद् ॥ १५, १६

५- उ० १० ३।७

है, उनमें से कुछ प्रमुख वाक्यों का उल्लेख किया जाता है^१।

एकप्रीफिका में वर्णित वाक्य - “स्वस्तिक, गौमुख, वीर, कूर्म, कुम्भट, उत्तानकूर्म, धनुर, मत्स्येन्द्र, पश्चिमीत्तान, मयूर, लज्ज, सिंह, फल्गु, सिंह तथा मद्र - इस प्रकार कुल पन्द्रह वाक्यों का वर्णन किया गया है। वाक्यों की संख्या के सम्बन्ध में स्वात्मपाराम का मत है कि “सिंह जी ने बीराही वाक्यों का कथन किया है, उनमें से चार (सिंह, फल्गु, सिंह एवं मद्र) वाक्य वास्तविक कहता है^२।” इस प्रकार पन्द्रह वाक्यों का उल्लेख करते हुए चार की ही वास्तविकता कहा। इस कथन का उद्देश्य व्याप्त योग्य वाक्यों से रहा है।

वाक्यों की संख्या के विचार में धेरण्ड का कथन है कि “संसार में जितने जीव जन्मते हैं, उतनी ही संख्या वाक्यों की है। सिंघी ने बीराही उक्त वाक्य बताये हैं, उनमें से बीराही विनिष्ट है। उन बीराही वाक्यों में से मर्त्यलोक में कर्त्तव्य वाक्य पुनः सम्पन्न हो गये हैं।”

धेरण्ड संख्या के कर्त्तव्य वाक्य - “सिंह, फल्गु, मद्र, मुक्ता, वज्र, स्वस्तिक, सिंह, गौमुख, वीर, धनुर, फूल, गुप्ता, मत्स्य, मत्स्येन्द्र, गौरवा, पश्चिमीत्तान, उत्कट, लज्ज, मयूर, कुम्भट, कूर्म, उत्तानकूर्म, उत्तानमण्डूक, वृषा, मण्डूक, गरुड, वृषभ, लज्ज, मकर, उष्ट्र, मुर्ख, योगासन। ये कर्त्तव्य वाक्य मर्त्यलोक में सिद्धि प्राप्त करने वाले हैं।”^३ ऐसा धेरण्ड का मत है।

१- पृ० ३० १।१८

२- .. १।३३

३- पृ० ३० २।१, २

४- पृ० ३० २।३ से ६

हठप्रदीपिका एवं पैरुण्ड चंदिता में वर्णित वासन

शिष्ट, कर्म, सिंह, मूढ, स्वस्तिक, गौमुख,
वीर, क्षुर, मूढ कर्मा लव, कर्सेन्द्र, पश्चिमीत्तान, मधुर, कुम्हट, कूर्म,
उत्तानकूर्म ।

हठप्रदीपिका में वर्णित वासन वासनों का
उत्तम पैरुण्ड चंदिता में किया है जो निम्न है- भुक्ता, कर्म, गुप्ता, कर्से,
गौरवा, उत्कट, संकट, उत्तानमयूर, पुष्पा, मयूर, गह्वर, पुष्पम, उत्तम, मकर,
उम्ह, मुक्ता वीर योगासन । इस प्रकार स्वात्मभाराम में पन्द्रह वीर पैरुण्ड वर्णित
वासनों की परिभाषा एवं उनके होने वाले शारीरिक व वाय्व्यात्मिक लाभों का
उत्तम किया है ।

वासनों का वर्गीकरण

हठयोग के प्राचीन ग्रन्थों में वासनों के शारी-
रिक और मानसिक लाभों का वर्णन तो वर्णित^{किष्ट}पूर्ण किया है और कौनसा
वासन ध्यान करने योग्य है और कौनसा स्वास्थ्यकारक है, इस प्रकार का वर्गीकरण
उपलब्ध नहीं है।

बर्नेस्ट वुड का वासन वर्गीकरण निम्न
प्रकार है- " हम वासनों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, कुछ वासन
ध्यान करने योग्य होते हैं, बिना वाक्य लम्बे समय तक बिना कठिनाई के बैठ
सकता है । दूसरे वासनों का उद्देश्य स्वास्थ्य को सुदृढ़ करना है, उन्हें करने में
वाक्य को अधिक समय नहीं लगता है । "

- १- We may divided the postures into two groups (i) Those
intended to be retained for a long time in meditation
(ii) Those intended for bodily fitness, most of which
are meant to be retained for a very short time, in
some cases only few seconds.

स्वामी कुञ्जबिहारी का वाक्य वर्गीकरण

निम्न प्रकार है-

“ वाक्यों को दो प्रमुख भागों में विभा-
जित किया जाता है, वारोम्य एवं व्यान योग्य। ”

वारोम्य हेतु वाक्य

शीर्ष , छाग, कुंग, धनुष, शल वादि ।

व्यान योग्य वाक्य

पद्म, सिद्ध, स्वस्तिक, सम वाक्य वादि ।

संस्कृतोक्ति एवं पारम्परिक रीति में उपलब्ध
वाक्यों के आधार पर व्यान योग्य (मेडिटेटिव) तथा वारोम्य हेतु
(कल्पात्मक) वाक्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है :

व्यान योग्य वाक्य

सिद्ध, पद्म, मङ्ग, स्वस्तिक इत्यादि ।

ष्ट शीघ्रार्थ वाक्य

मुक्त, पद्म, सिंह, गीर्वाण, वीर, धनुष, पूषा, गुरु, मत्स्य,
परिचामीत्तान, मत्स्येन्द्र, गीर्वाण, उत्कट, कंट, मयूर, कुम्भ, कूर्म , उत्तान
कूर्म , उत्तानमयूर, वृषा, मयूर, गरुड, वृज, शल, मकर, उच्छ, मुनि एवं
गौमास वादि ।

१- Asanas are divided into principal groups :- Cultural and meditative, Sirsha, Sarvanga, Bhujanga, Dhanus, Shalabha etc. are cultural whereas Padam, Siddha, Swastika and Sama are meditative.

ध्यानीपयोगी वायनों की प्रक्रिया एवं लाभ

छिटावन

सुन्दरदेव ने ६० ६० ५० में छिटावन की प्रक्रिया

निम्न प्रकार दर्शायी है-

“ वाम पाद के गुल्फ के उपर्य के नीचे सीमन के शिर का उत्पीड़न करे और दाहिने पैर के गुल्फ की उपर्य के ऊपर पैर पर बना कर रहे। दाहिने जंघा और बाहु के बीच में बायें पैर की पंजाय, वाम जंघा और बाहु के दाहिने पैर की पंजाय। शिर और उपर एक सीध में रखे है मन्द बुद्धि भी बढ़ती है। बुद्धि को ऊर्ध्व करके छिटावन में स्थित रहना चाहिए जो छिटावन कही है।”

मीनिवास भट्ट का कथन है कि “ एक पैर की सही को सीमन पर रहे और दूसरे पैर की उपर्य के ऊपर रहे। नैय बुद्धि को प्रमथ्य में रखी हुए उरीर को छुट्टि एवं जपल रखकर हन्डियों की नियन्त्रित करे, यह सम्पाद मोक्ष मार्ग में जो कपाटों को तोलीवाला, छिटावन कहलाता है।”

छिटावन के विषय में ध्यान विन्दूपनिषद् का कथन है कि “ बायें पैर के सीमनी भाग को पंजायें तथा बायें पैर की पैर के ऊपर रखकर सीधे बैठे, जो छिटावन कही है।”

१- उक्त धर्म पत्रिका २३ क

२- उक्तनामकी ३। २४

३- ध्यानविन्दूपनिषद् ४२

एक प्रतीफा में चिदात्म की परिभाषा

“ यौनि स्थान (यौनिनी) पर बायीं पैर की खड़ी की छातर बायीं पैर की पैर के ऊपर दृढ़ता से रीत तथा पुन्य के निरुद्ध ठोड़ी की ठीक से रीत । निरुद्ध ठोड़ी एक रीत दृष्टि से भूमध्य की पेशे । यह कल्याण यौनि मार्ग में की कपाटों की सीलने वाता, चिदात्म व्यवस्था है । ”

पेरुण्ड वरिदा^२, गौरण तव^३, गौरण पदाति^४ में भी चिदात्म की परिभाषा एक प्रतीफा के संरूप ही उल्लिखित है। योगीन्द्र स्वात्पारम्भ ने ए० प्र० में वर्णन किया है -

“ पैर के ऊपरी भाग में बायीं खड़ी की रीत बायीं पैर के ऊपर बायीं मुक्क (खड़ी) की रीत ही यह चिदात्म है । यह चिदात्म की ही वपर हीम कलात्म तथा जीम हीम मुक्कात्म व मुक्कात्म कली है । ”

जीम कलात्मपरक ग्रन्थ उन्हीं वक्त वक्त वाक्यों के रूप में मान्यता पेशी है। पेरुण्ड वरिदा में कलात्म, मुक्कात्म व मुक्कात्म के वक्त वक्त वक्त विर है । स्वतन्त्रता है प्रकाशित एक प्रतीफा में चिदात्म प्रकरण में उपलब्ध रूप पेशित- “ स्वापो प्रज्ञानन्द ने ज्योत्स्ना टीका में चिदात्म के चार प्रकारों का उल्लिख वक्त वक्त किया है। ”

१- ए० प्र० २। ३५

२- ए० प्र० ३। ३

३- गौरणतवक =

४- गौरण पदाति ११

५- ए० प्र० ४। ३६ २। ३६ ५ ३७

६- ए० प्र० ५। १६ स्वतन्त्रता जीमवाता है प्रकाशित

विद्यार्जन-प्राप्त व लब्ध

स्वप्नदीप वाणि नष्ट होती है^१।

स्वामी व्याख्यान में विज्ञान के तथ्यों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है-

“ सभी नाम के अनुसार ही स्व वाचन में गुण लेकर सत्का नाम “चित्-वाचन” रखा गया है। स्व वाचन में मुख्यतः स्वतः स्व वाणि है प्राण तथा हृद् अभ्यास करने लगी है। वीर पुष्पुम्पा का नाम हुली लता है, एवं प्राण, हृन्निव वीर का ही स्थिता, उपलब्ध में स्थित हृद् - वाक्लिनी नादियों के लड़ी द्वारा करने से उत्पन्न हुई विविधता के कारण प्रलय की वृद्धता होती है वीर कामनाओं में बसती उग्र अभिप्राय शान्त होने लगी है। अन्य सत्त की योग्यता वाणि लगी है।”

लक्ष्मीन प्रतीकित के टीकाकार नीलमन राव मीतन में सभी टीका में विज्ञान की प्रतीति का उल्लेख निम्न प्रकार है किया है-

“ विज्ञान के अन्वय में चित् की प्राप्ति शीघ्र होती है, इसके अन्तर्गत अन्य वाचन नहीं है। स्वतः संसार बन्धन हटकर परमात्मा की प्राप्ति होती है। स्व वाचन फलान्वासी कर्मात् प्राणापानपरमाणु योगी के लिए अन्वय करने योग्य है।”

स्वामी हनुमानन्ध ने विज्ञान के विषय में निम्नलिखित का का वर्णन किया है-

“ स्व वाचन का अन्वय ली: ली: करना वाग्विद, यदि वैशिष्ट्य में लक्षण के अन्तर्गत ली न करे। कुछ कर्माक्षर पुस्तकों में

१- योगवाणी - लक्ष्मीन प्रतीकित वर्ग १६५२

२- वाग्विद जीन पृ० ७१, ७२

३- पृ० २० भाष्यकार डा० कल राव मीतन, संस्कृति संस्थान, बरेली पृ० ७७

छिन्न है कि जहाँ विपरीत प्रमाण काय उक्ति पर पड़ता है, वहाँ तक हमारा अनुमान है, कुछ ही स्वस्थ व्यक्तियों का वाक्य एवं या के विषय में है। अनुसूची राज्य की किता अनुसूचि के एक पन्ने है अधिक का ब्यापार करना निषेध है।

उद्योगपरक प्रणियों में शिक्षा की प्रतीक्षा बाहुल्य रूप से उपलब्ध है। वहाँ तक जहाँ शारीरिक एवं वाय्यात्मिक तानों का प्रत्येक, वाय्यात्मिक ब्यापार के लिए यह उत्तम वाचन हैं जो कोई वितरणीय नहीं होती, यह वाचन के ब्यापार है सुसाधार एक प्रभावित होकर कुण्डलित का उद्घोषण होता है तथा सभी शक्तिशाली व कर्मशाली की प्रभावित करता है। प्रत्येक की रक्षा के लिए शिक्षा का अत्यन्त उपयोगी है।

किन्तु मूल-मिर्जा ब्यापारी विकार काय होता है, काय-उक्ति का वितरित वेग उत्पन्न होता है, उपलब्ध की नाशियों एवं याद में शक्ति में साधारणतया पुष्टता ही जाती है। एक पन्ने के अधिक ब्यापार पर प्राण तथा कुछ उद्घोषण करने लगे हैं। वीर्य विकार, प्रेम एवं मनुष्य के रोगों में साक्षरता है, जिन्हें केवल शारीरिक स्वास्थ्य की होकर करने के लिए वाक्य का ब्यापार करना है, उनके लिए १५ से ३० मिनट पर्याप्त होगी। सभी अधिक ब्यापार के लिए अनुसूची राज्य है परामर्श वाचक है।

परम्वर संविदा में शिक्षा का ब्यापार की प्रक्रिया का उल्लेख है ३० के ही समान किया है किन्तु जहाँ ब्यापार है हीने याद तानों का उल्लेख नहीं किया है।

प्रमाण

वीर्य-मार्तण्ड में प्रमाण की प्रक्रिया निम्नरूप

१- वाक्यान्व ५० ५२

प्राप्त होती है। क्या-

“ बायें पैर की दाहिनी पैर पर बाँर दायें पैर पर बायाँ पैर रहे तथा व्युत्क्रम से दोनों हाथों की पीठ की बाँर ऊपर पैरों के कूँठों की दृढ़ता से फँसकर विषुव ठोड़ी की कुवच के ऊपर जमाकर दृष्टि की नाशिका के समान पर रहे। समस्त व्याधियों को नष्ट करने वाला यह फल-फल है। ”

गौरवात्मक में भी उपर्युक्त रूप से फलफल की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है।^१

दर्शनोपनिषद्,^२ ज्ञानविन्दुपनिषद्,^३ में भी फलफल की परिभाषा पूर्व प्रकार से ही दी है। त्रिशिखिन्नावलीपनिषद्कार ने फलफल एवं कलफल की प्रक्रिया की बल बल दर्शाया है - “ फलफल दोनों पैरों के पीठ की एक दूसरे पैर की ऊर्चा (बंधा) पर रहे। यह एवं व्याधियों को नष्ट करने वाला फलफल है। कलफल- फलफल से ठीक प्रकार बैठकर दोनों हाथों से व्युत्क्रम से दोनों पैरों के कूँठों को फँसे। यह कलफल है। ”

स्वामी श्रीउग्रसीध में भी फलफल और कलफल की त्रिशिखिन्नावलीपनिषद् के समान ही बल बल वर्णन किया है।

योगसुष्ठुपनिषद् में फलफल की व्याख्या

१- योगमातृपञ्च ८, ६

२- गौरवात्मक ६

३- दर्शनोपनिषद् ३।४

४- ज्ञानविन्दुपनिषद् ४२

५- त्रिशिखिन्नावलीपनिषद् का पाठ ३६, ४०

६- पातंजलि योगसूत्रीय - भाष्यपाद ४६ पु० ४२२

की तथा दायी पैदा पर बायी पैर की स्थापित करे । पृष्ठ भाग की विधि है
 दोनों पैरों के अङ्गुली की दायाँ से बाँध दे फिर ठीड़ी की हृदय पर रखकर पृष्ठ
 की नाभिजंघ के मध्यभाग पर स्थिर करे । यह दोनों की नाभ करने वाला कर्मासन
 कहा जाता है ।"

सहस्रनामिका में कर्मासन प्रक्रिया में उपलब्ध

प्रमाण - (१) दोनों पैरों की प्रत्येक पैरों के अङ्गुली पर रखे, फिर (ठीड़ी)
 के हृदय पर रखकर दोनों पैरों की बीच पैदाओं पर रखे, बाँध की कड़ की पकड़
 के द्वारा ऊपर स्थापित करे, प्राणायाम की ऊपर उठाये, समस्त व्यायामों की
 पद्धति करने वाला यह कर्मासन बहुत ही दुर्लभ है, किन्तु इस की प्रशिक्षणों की प्राप्ति
 होती है ।"

सहस्रनामिका में कर्मासन की का प्रमाण -

(१) " दोनों पैरों की सम्पूर्ण कर पकड़ दे कर्मासन लाकर ठीड़ी की
 हृदय के समीप (पैदा:स्थल पर) अच्छी तरह स्थिर कर फिर में वात्सा का
 ध्यान करे । व्यायाम की ऊपर सीधी हृदय प्रत्येक (प्राणायाम) द्वारा सीधी
 कई प्राणायाम की नीचे करे । सभी स्थिति प्रत्येक सीधी है और वायु की बहुत
 ज्ञान प्राप्त होती है । कर्मासन में स्थिति हुआ योगी नाड़ी द्वार से प्रसिद्ध कि
 यह वायु की स्थिर करे यह (वायु) निःसन्देह प्रमाण की है ।"

चरण स्थिति में कर्मासन कर्मा - " दायाँ

पैर दायाँ पैदा पर बायी पैर दायाँ पैर दायाँ पैदा पर रखकर दोनों पैरों के अङ्गुली
 विधि है पैरों के अङ्गुली की पकड़ दे बाँध कर फिर की हृदय पर लाकर, नाभिजंघ

१- पृष्ठ २१४४

२- पृष्ठ २१४५ से ४७ तक

३- .. २१४८, ४६

के कर्मान की बीर रहे । जहाँ की रीतों का उक्त बीरता है । यह कर्मान
कहाता है ।

६० प्र० में कर्मान की तीन प्रक्रियाओं का
उक्त स्वात्माराम ने किया है। सबसे बीर तीसरी विधि में कोई कसर नहीं
है, यह 'कर्मकर्मान' है जिसके द्वि फलस्वरूप ही ने संकृति की है। उप-
रान्त दूसरी प्रक्रिया में एत्यों की बीर की बीर न है बाहर जान मुक्त में बीनों
बाहुओं पर स्थापित करने का निर्देश है जिसके लक्ष कर्मान का नाम है । बाह्य
की कर्म की विज्ञा के द्वारा ऊपर स्थापित करके प्राणमात्र की ऊपर उठाने का
उद्देश्य है।

६०२० बीर ५० ६० की कर्मान प्रक्रिया में
एवं उक्त एतियों वाली रीतों में कोई कसर नहीं है। बीनों की प्रक्रिया में कर्मकर्मान
की प्रक्रिया की स्वीकार किया है ।

कर्मान के लाभ

कर्मान का कर्मान की तीन का उक्त है,
जहाँ एत्यों बीर कर्मान के बीनियों (३)- स्वात्माराम ने कर्मान की कर्मान
पर बस दिया है। कर्मान के कर्मान में बाह्य की रीत की एत्यों बीनों रली
पर विविध ध्यान रली बाह्य । कर्मान की बीनों प्रक्रिया कर्मकर्मान तथा
कर्मान कर्मान जिसके लक्ष कर्मान की कर्म उक्त है कर्मान के प्रक्रिया में उप-
रान्त है। कर्मकर्मान की प्रक्रिया कर्म कर्मान है किन्तु उक्त कर्मान की बाह्य लाभ
की है। कर्मकर्मान है कर्मान की कर्म बाह्य निकल बाह्य है तथा स्फूर्ति का
बाह्य है बीर प्राणित्थान हीन होने लगा है। कर्मकर्मान में प्राण का प्रीत हीन
कर्मकर्मान का उद्देश्य बीरता है। प्राण कर्म ही बाह्य है ।

बाय पर की नाड़ियाँ व वहीं रुक जाती है, मुदा बीर तिल के बाय पास की नाड़ियों की ऊपर होती है वीरें पुष्ट होता है । वहीं बीर बाय विकार दूर होती है । यह बाय प्राण शक्ति की प्रताधार-क है। बाय-क क प्रतापित करता है। प्रमाण है बाय रोग बाय में कष्ट के समान निर्दिष्ट युक्त रखा है।

प्राण

ध्यानविन्दुपनिषद् में प्राण का उल्लेख विभिन्न प्रकार उपलब्ध होता है- " कण्ठगोली के नीचे सीपकी नाड़ी के दोनों बीर पर की शक्तियों की लायि । परों के पास दोनों शक्तियों की बाधक निरपेक्ष रूप से रहे । विभिन्न वे उत्पन्न रोगों का निवृत्त करने वाला प्राण है । "

त्रिचिह्नब्राह्मणीपनिषद्^२ एवं शाण्डिल्योप-
निषद् में भी प्राण की परिभाषा ध्यानविन्दुपनिषद् के समान ही दी है ।

उक्त उक्त चन्द्रिका व चरितं यौग में भी कर्क बीर बाय की नष्ट करने वाली प्राण की परिभाषा उपलब्ध रूप में दी है । कठत्वावली व कठगोलीका में प्राण की प्रक्रिया का उल्लेख उप-निषदों में उल्लिखित परिभाषा के अनुसार ही प्रस्तुत है। प्रमाण उद्धृता व

१- ध्यानविन्दुपनिषद् ४२

२- त्रिचिह्नब्राह्मणीपनिषद् पंच भाग ४५

३- शाण्डिल्योपनिषद् १।८

४- ए० ए० प० २०

५- कठ त्वावली १।२६

६- ए० प्र० १।५३

७- प० ए० २।६, १०

मन्त्राल की परिभाषा, उठ प्रतीकित है निम्न है- "दीनों रक्षियों को उत्त कर वण्डकौठों के नीचे रहे तथा पीठ की ओर हाथों को छातर पैरों के कुठों को फल है। बलन्धर-बन्ध कही हुए नाशिका के क्कभाग को देखें। यह मन्त्राल की रीनों को दूर करता है।"

स्वात्माराम ने उ० प्र० में मन्त्राल की प्रक्रिया के उत्तर के पश्चात् यह निर्दिष्ट किया है कि - "एव प्र मन्त्राल की छिद योगी गोरक्षात्मक भी कही है, एव वासन का बन्धाव करने से अम और फलवट नष्ट हो जाती है। नाड़ी हृदि की क्कवा वाते छाधक को मुडा तथा प्राणायाम का एव वासन को छाकर बन्धाव करना चाहिए। एके द्वारा कीक प्रकार के कुम्भक प्राणायाम और कीक मुडावों के बन्धाव से छिदि मिलती है। एव प्रकार उद्योग छाधना में नास का कुसन्धान करना चाहिए। प्रत्येक प्रत का पालन करने वाला, बत्पाकारी, रवाना (उन्मियों को विषयों में संयमि रक्कर योग में छात्मा) योग-छाधना में उत्पर पुरुष एक वर्ण की छाधि तक बन्धाव करने से छिद हो जाता है। एमें किसी प्रकार का छेय नहीं करता चाहिए।"

उ० प्र० छिदका प्रकाशन कैवल्याम से किया गया है, में यह टिप्पणी उपलब्ध होती है- "छेरण्ड छिदिका में मन्त्राल की विस्तृत निम्न प्रकार से प्रक्रिया दी है, छेरण्ड की गोरक्षात्मक नाम नहीं छेती है। छेरण्ड छिदिका में प्राच गोरक्षात्मक की प्रक्रिया विस्तृत निम्न है।

छेरण्ड छिदिका में प्रकृत गोरक्षात्मक - "दीनों

१- उ० प्र० १। ४४ से ५० तक

२-

G.S. gives an altogether different variety of Bhadrāsana, which Gheranda does not call Goraksāsana. His Goraksāsana is quite different from Bhadrāsana as described by Svātama ram.

- Hathpradīpikā p. 27

बाँधों के कन्ध में दोनों छुटने उठाकर हिम रूप में रहे तथा दोनों हाथों से दोनों रक्षियों का फँसकर कण्ठ का केंद्र की ओर नासिका के छेद पर दृष्टि बना है। यह गौरक्षासन योगियों का विधि प्रदान करने वाला है।"

स्वाम्याराम का यह कथन कि "मूढासन" की ही "गौरक्षासन" भी कहती हैं, किन्तु योगोपनिषद् तथा अन्य हठयोग धर-ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है और शेष ने "गौरक्षासन" की वस्तु ही प्रक्रिया का उल्लेख किया है। यह निर्विवाद है। अतः मूढासन और गौरक्षासन की वस्तु वस्तु स्वीकार करना ही उपयुक्त होगा।

मूढासन है ताम

यह वास्तव शरीर के अन्दर से विष्णु के प्रभाव की निशानी के लिए उपयुक्त है, इस प्रकार का वर्णन सभी ग्रन्थों में बताया है, किन्तु इसे अविरिक्त मूढासन के बन्धन से और भी शारीरिक एवं वायव्यात्मिक लाभ होंगे। निरव्य प्रविष्टि बन्धन करने से छुटने, पैरों की कुंठियों, कण्ठकोष्ठों, मूत्राशय के दोनों ओर ठीक प्रकार सम करने में प्रसुत वास्तव है। हाथ पैरों की अविरिक्त वायु की तीव्र ही शान्त करने में लाभ है। कामोत्तेजना शान्ति, प्रत्यक्ष पालन में सहायक, गर्म, मन्दर एवं प्रेमदायि है। कण्ठकोष्ठों की अविरिक्त दृष्टि एवं मूत्र विकार को नष्ट करता है।

स्वस्तिकासन

स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने स्वस्तिकासन की परिभाषा का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है -

१- पैरों से २४, २५

“ संकुच में स्वस्तिक का त्वं सृष्टि है,
 टली बन्ध होने पर स्वस्तिक विचार है, फले दोनों पैरों को सामने फैलावो,
 उत्पत्त्या दाहिने टांग की बाहु है मोड़कर बायीं पैर की ऊह-बन्धि पर रखी
 को लावो, अब स्वयं ही दाहिने पैर का उला बायीं पैर है सह बाँधना । इसी
 प्रकार बाहिने पैर को मोड़कर दाहिने उह बन्धि के साथ लावो । बाहिने पैर के पी
 को दाहिने पैर की बाहु बन्धि के मध्य में प्रीत करती । अब दोनों पैरों की
 बाहु कीर पैर के बीच में पाँव । यह वाचन व्यान के छि वचनोपयोगी है। ”

त्रिचिह्नोपनिषद् मन्त्र भाग में स्वस्तिक
 वाचन के लक्षण निम्न प्रकार हैं- “ दोनों पैरों के बाहुओं को दोनों घुटनों के
 मध्य में करके बैठा ही स्वस्तिकवाचन है । ”

पत्तनीपनिषद् में स्वस्तिक वाचन की लक्ष्मी प्रकार
 दी है।

शाण्डिल्योपनिषद् में भी स्वस्तिक वाचन के
 लक्षण उपलब्धानुसार ही प्रस्तुत है।

१- Swastika means ' Prosperous ' in Sanskrit when this pose is performed , the ankle lock brings the appearance of the Swastika. Stretch the legs in front of you. Bend the right leg at the knee and keep the heel against the groin of the left thigh so that the sole will be lying in close contact with the thigh. Similarly bend the left foot between the calf and thigh muscles. This is very comfortable for meditation,

- The complete illustrated book of yoga, Vishnu Deva
 Hand, p. 75

२- त्रिचिह्नोपनिषद् मन्त्र भाग ३४

३- पत्तनीपनिषद् ३। २

४- शाण्डिल्योपनिषद् ३। १

१ लिख संख्या, २ छहत्तावली, ३ ह० प०, ४०
 ४ एवं पेरुण्ड संख्या आदि ग्रन्थों में स्वस्तिक वाचन की परिभाषा विशिष्टा-
 कर्णोपनिषद् के अनुसार ही उपलब्ध होती है। तात्पर्य यह है कि स्वस्तिक वाचन
 के कलाओं के विषय में अभी तक यह है।

लिख संख्या में स्वस्तिक वाचन के विषय में
 निम्न उल्लेख मिलता है- "एष विधान (स्वस्तिकवाचन जानने) है बुद्धिमान
 योगी वायु का वाचन करे तो उसके शरीर में व्याधि प्रसर नहीं करती है। यह सर्व
 दुःखनाशक है, यह स्वस्तिकवाचन योगी लोगों को मुक्त करता उक्ति है, यह कारण
 यह उत्तम तथा कल्याणकारक है।"

स्वस्तिकवाचन के लाभ

यह ज्ञान करने के लिए सरल वाचन है।
 ज्ञानरत्ना कक्षा प्राणायाम करते समय भी वाचक शिवालय, फूलावन आदि
 नहीं जान सकते हैं स्वस्तिक वाचन जानकर वाचना कर सकते हैं। यह सुख, सुख
 एवं सुख होने के कारण ही प्रत्येक वाचक कर सकता है। इसकी वाचने कक्षा
 बाधें किसी भी घर से प्रारम्भ किया जा सकता है। पेरुण्ड संधि रत्ने हुए दृष्टि
 नाशिका पर भी रती जा सकती है कक्षा शम्भवी मुद्रा भी लगाई जा सकती है।
 प्राणोत्थान में लगाकर है।

लिख, फूल, मृद तथा स्वस्तिक सभी वाचना
 योग्य वाचनों का उल्लेख किया गया है।

१- लिख संख्या ३११६

२- ह० हत्तावली ३१५२

३- ह० ह० पत्रिका २३(क)

४- ह० प्र० ११६

५- प० सं० ३१३

६- लिख संख्या ३११७, ११८

छठोग में स्वास्थ्य निर्माण हेतु बाध-विधान

मुक्ताञ्ज

विशिष्टाख्याउपनिषद् के अनुसार मुक्ताञ्ज
 कथन- " सीपनी नाड़ी के ऊपर बाधों को पैरों के मुल्क से चक्रान्न से निषी-
 दित करने से मुक्ताञ्ज होता है । "

दर्शनीपनिषद् में मुक्ताञ्ज के दो प्रकारों का
 उल्लेख दिया है :

(१) सीपनी की मूल्य नाड़ी को बाधों मुल्क
 (एडी) से दाहिनी ओर बधाये, दक्षिण मुल्क (एडी) से बाधों ओर बधाने
 से मुक्ताञ्ज होता है । "

(२) " उपस्थ के ऊपर बाधों पैर के टली को
 रखे तथा बाधों टली (मुल्क) पर दाहिने टली को रखे से मुक्ताञ्ज होता है । "

दर्शनीपनिषद् में उल्लिखित दोनों प्रकार के
 मुक्ताञ्जों के स्थानों में बत्पान्तर है। पहले में टली को " सीपनी नाड़ी " के
 दोनों ओर रखा दर्शाया है, तथा दूसरे में सीपनी के स्थान को छोड़कर " उपस्थ
 के ऊपर " दक्षियों को रखे का निर्देश है। ऐसा कोई बन्तर नहीं है।

शाण्डिल्य उपनिषद् में मुक्ताञ्ज की परिभाषा
 इस प्रकार प्राप्ता होती है- " सीपनी की मूल्य नाड़ी को बाधों मुल्क से दाहिनी

१- विशिष्टाख्याउपनिषद् ४६

२- (१) दर्शनीपनिषद् ३।८

(२) " ३।६

वीर दवायें तथा दक्षिण मुल्क के द्वारा बायी वीर दवायें से मुक्तापन होता है।^१ "

यह भी विशिष्टिज्ञातणीपनिषद् एवं दर्शनी-पनिषद् के प्रथम प्रकार के ज्ञान है।

डा० कलाहास गौतम ने वाचात्मर्तनीपनिषद् के अनुसार मुक्तापन के लक्षणों का उल्लेख चरुण्ड उल्लिख की टीका में निम्न प्रकार किया है-

" दीर्घी की धूमन (नाड़ी) की बायीं टली (लड़ी) से दवाकर दायें टली से बायें की दवायें, इस प्रकार यह मुक्तापन होता है।^२ "

वरिहंग योग में मुक्तापन कथन इस प्रकार प्राप्त होता है- " प्रथम दोनों पैरों की संकुच कर, फिर दोनों पैरों की कुंठियों पर पार पैर इस प्रकार बैठे कि दोनों पादतल संकुच होकर दोनों रङ्गियाँ भित्ताकर मुदा वीर कण्ठकोष्ठों के मध्य दीर्घ स्थान के मध्य में जावायें। इसके बलपूर्वक दोनों घुटने धूमि पर टेकर हाथों को " ज्ञान-कुंडा " कह करके घुटनों पर स्थापित कर दें वीर दीर्घ होकर बैठ जायें। "

स्वामी व्याख्येय का मुक्तापन कथन वन्ध ली प्रश्रियायों से निम्न है।

स्वामी विष्णुदेवानन्द ने मुक्तापन वीर मुक्तापन की एक मानकर उसकी प्रश्रिया निम्न प्रकार दी है-

१- ताण्डिल्य उपनिषद् १।६

२- पे० सं० पु० ५०

३- वरिहंग योग पु० ८१, ८२

“ पहले पैरों को फैलाये फिर दाहिना पैर मोड़कर पाणिनी स्त्री की सीपनी नाड़ी से छटावों बना उपस्थ के ठीक ऊपर रखी। अब बायें पैर को घुटने से मोड़कर बायें पैर की स्त्री की पायें पैर की स्त्री पर रखी, तथा सीपनी नाड़ी को पूर्ण बन्द करें, इस स्थिति में उपस्थ से ऊपर स्थान (पेडू) पर तथा सीपनी नाड़ी पर कोई दबाव न पड़े। जो व्यक्ति सिद्धासन नहीं कर सके वे मुक्तासन कर सकते हैं। ”

घोरपट्ट संज्ञिता के अनुसार मुक्तासन बन-

“ बायें पैर की गुल्फ (स्त्री) को पायुपुत्र में लाकर उस पर बायें पैर की गुल्फ (स्त्री) रखें और फिर एवं प्रीवा को उमान (एक सीप में) रखकर पैर को सीधा करें। यह योगियों को सिद्धि प्रदाता मुक्तासन है। ”

हो प्र० में मुक्तासन का उल्लेख नहीं है, स्वामिनारायण ने सिद्धासन के वर्णन में ही उल्लेख किया है- “ यह सिद्धासन को ही कोई विद्वान् कलासन, किसी के नाम में मुक्तासन और औरों की मुक्तासन भी कहते हैं। ”

सातपथ्य यह है कि सिद्धासन को ही कलासन, मुक्तासन, और मुक्तासन कहा है। घोरपट्ट ने अन्य योग उपनिषदों के उमान ही मुक्तासन की प्रक्रिया का वर्णन किया है।

१- Muktasan or Guptasana- Stretch the legs . Bend the right leg at the knee joint the keep the right heel against pulice bone or just above the genitals. Now bend the left leg at the knee and keep the left heel above the right heel, close to pubic bone. In this position there will not be any pressure at the perineum and the genital organs are free from pressure. People who can not practice Sidhasana may find this exercise more comfortable.

२- पे ६० पृ २११

- The Complete Illustrated book of yoga. p.73

३- हो प्र० १।२०

मुक्ताजन के लाभ

व्यासजी जी के अनुसार मुक्ताजन के लाभ

निम्नलिखित हैं-

“ यह वासन टांगों को पुनर्स्थापित तथा मृदु बनाता है। नित्य के अभ्यास से शिर और योनि मण्डल की शुद्धि होती है। ”

धर्मपुत्र ने मुक्ताजन को “ मुक्ताजन तु चिद्विदम् ” मुक्ताजन चिदि प्रदान कराने वाला है। उल्लेख किया है।

मुक्ताजन के अभ्यास से पायु एवं उपस्थ के रोग नष्ट होते हैं। मुलाधार की शुद्धि होकर कुण्डलिनी का उद्बोधन होता है। योनिमण्डल में सुदृढ़ता आती है। इस वासन पर प्राणायाम का अभ्यास ठीक प्रकार किया जा सकता है। इस वासन की स्त्री-पुरुष जो कर सकते हैं।

वज्रासन

योगसुष्ठुत उपनिषद् के अनुसार वज्रासन-

“ बायें पैर से मूल (पायु) को दबाकर दाहिना पैर उसके ऊपर रखकर शिर, ग्रीवा और शरीर को समान (एक सीध में) करने से वज्रासन होता है। ”

व्यासजी जी के अनुसार - “ दोनों बंधनों के वास्तविक भाग को दोनों पिण्डलिनी से मिलाकर मुँह फुटनों को बागें और पैरों को पीछे की ओर मोड़कर, वज्राकृति बनाते हुए नितम्बों से छुड़ बागें छोड़कर दोनों रङ्गियों को मिलाकर, नितम्बों को एक पर टिकाकर बैठ जाय। वशिष्ठ-

१- वशिष्ठ योग पृ० ८२

२- पृ० ८० अ० ११

३- योगसुष्ठुत उपनिषद् १।६

दाय की दक्षिण घुटने पर बाय उत्त की बाय घुटने पर कीर्णियाँ रखकर समाय त्रीय होकर बैठ बाय, दृष्टि की दाहिनी बाँकात में रखें।”

धरपट संख्या में यम्राजन लगाने की विधि-

“ दोनों जंघाओं की यम के समान घुड़ करके दोनों पैरों की मुड़ा के दोनों ओर लगाने। यह यम्राजन होता है। यह बाजन योनिियों की चिह्नि देने वाला है।”

संस्कृतोक्ति में यम्राजन का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। स्वात्मनारायण ने “सप्त धिवाजन प्राप्तिरन्ये यम्राजनं विदुः” एवं धिवाजन की अन्य यम्राजन कही हैं, एवं प्रकार का उल्लेख किया है।

यम्राजन का वर्णन अन्य एक योग ग्रन्थों में बहुत ही कम मिलता है। इसी बाजन की प्रक्रिया की अन्य ग्रन्थों भिन्न भिन्न नाम दिया है। ए० ए० चन्द्रिका में एवं प्रक्रिया वाले बाजन को कुम्भजन नामकरण किया है-
“ दोनों पैरों के टखनों (दक्षियों) के पाशु (मुड़ा) की बजाते हुए दोनों बाजुओं की मूनि पर टिकाने से कुम्भजन होता है। वही प्रकार के पाशु रोगों की नष्ट करने वाला होने से योनिियों ने इसे कुम्भजन कहा है।”

यम्राजन के लाभ

यम्राजन की हुए शरीर से वायु के बहिर्गम की निवृत्ति के लिए उपयोग है। शरीर की सीधा तानने की स्थिति में यह पापन संस्थान तथा स्वास- संस्थान की भी प्रभावित करता है और वायु के रोग

१- बहिर्गम योग पृ० ७७

२- पृ० ८० स० २१२

३- पृ० ५० स० ११७

४- पृ० ८० च० २१ स

ज्ञान होती है। यत्रासन का प्रभाव हाथ पैरों की पेशियों तथा स्नायु मण्डल एवं मूल उत्थान पर पड़ता है। प्राण उत्थान करने में भी उपयोगी है। अर्त, मग्न्य, मूल विकार तथा कुम्भ, मूत्रक के कठिन रोगों में लाभकारी है। गठिया एवं पोलियो रोग बादि को ठीक करने में सहायक सिद्ध है।

चिंतासन

त्रिशिख्रावर्णोपनिषद् में चिंतासन प्रक्रिया-

“ सीपनी नाड़ी के दोनों पार्श्व को प्लुङ्गम से दबाले हुए बाहुओं पर हाथ रख कर चिंता- रूप को चिंतासन करो है। ”

अथर्वविन्दुपनिषद् में भी चिंतासन की विधि उपर्युक्त प्रकार से ही उल्लेख की है।

शाण्डिल्योपनिषद् में चिंतासन कथन- “

वशिष्ठा मुत्क को बायीं ओर तथा बायीं मुत्क को दाहिनी ओर रखकर, हाथों को बाहुओं पर रखकर कुक्षियों को फैलाकर रखें। मुँह को फैलाते हुए वृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर लायें। योगियों द्वारा प्रकीर्त कथ चिंतासन है। ”

वर्तनीपनिषद् में चिंतासन के लक्षण- “ वृ-

र्णणों के नीचे सीपनी नाड़ी के दोनों ओर दाहिनी स्त्री को बायीं ओर तथा बायीं स्त्री को दाहिनी ओर रखकर, दोनों हाथों को बाहुओं पर स्थापित करी हुए कुक्षियों को फैलाकर रखे तथा मुँह फैलाकर वृष्टि को नासिका के अग्र भाग

१- त्रिशिख्रावर्णोपनिषद्- मन्त्र भाग ४४

२- अथर्वविन्दुपनिषद् ४२

३- शाण्डिल्य उपनिषद् ३४५

पर लाये । यह विचार विनिर्वाही द्वारा बना प्रकीर्ण है । **

योगशास्त्री में दर्शनीपनिष्पत्त के उपाय की
विचार के उपाय प्रस्तुत हैं

आधी वीरमानन्द ने योगदर्शन भाष्य में
विचार की पहचाना निम्न प्रकार दी है- ** दोनों पैरों की निशानों
के नीचे यह प्रकार समान कि बायाँ पैर दाहिने निशान के नीचे और दायाँ पैर
बायें निशान के नीचे लाया, फिर दोनों हाथों की पेट की ओर झुकाया
करके धीमा पर कराये । पेट की ऊपर लीची हुए हाथों की बाहर निकाले हुए,
मुँह लोकर झुका की बलपूर्वक बाहर की ओर निकाल डोढ़ी (झिड़क) पर
कराये । **

आधी व्याख्यान की ने विचार की दो
प्रक्रियाओं का उल्लेख वशिष्ठ-योगनेत्रिया है एक प्रक्रिया आधी वीरमानन्द के
उपाय है तथा दूसरी विधि निम्न प्रकार है- ** घुटने के बल पर भूमि पर लगे
होकर, ऊपर मोड़ कर बागें मुँह की ओर झुकाया भूमि पर टिका कर झुकाया फिर
के की किसी वस्तुति में केसाकर पीठ पीछी रखी हुए हाथों की बागें उतार द ,
रुद्धियाँ निशानों के साथ मिला है । कम मुँह की ओर नेत्र फाड़कर चककर दृष्टि है
आधी बेली हुए बीच की परावर्तित बाहर निकाल कर डोढ़ी । **

की जाती है का विचार उपाय - ** घुटने
की रुद्धियों पर केकर ठीक घुटनों से ऊपर कानों पर साथ रखे हुए गहरी साथ

१-दर्शनीपनिष्पत्त ३१५, १, २, ३

२- योगशास्त्री ११३० से १२

३- योगदर्शन पृष्ठ ४४४

४- वशिष्ठयोग पृष्ठ १२६, १३०

ली। वक्ष की बागि झुकती हुए मुँह फैलाती और पौर है ' हा ' कही हुए
वहाँ तक था जो बिज्जा की बागि निकाली, जो प्रकार वः बार दुहराती।"

ह० २० में विहाजन कथन- " सीमनी नाड़ी
के दोनों पार्श्वों में वृषणों के नीचे बाहिनी एवं बायीं दहिनों को एक दूसरे के
ऊपर रखकर, दोनों हाथों को पानुवों पर रखे। केशिनों को फैलाकर रखी
हुए दृष्टि को नाजिका के कर्माग पर रखी तथा पित्त को त्याग करो। जो
प्रकार योग की पीठ विहाजन पर बाहुद होकर दोनों बन्धों को लायें।"

जी सुन्दरसेव ने विहाजन की परिभाषा ह०
२० के समान ही दी है।

ह० ३० के अनुसार विहाजन- " वृषणों
के नीचे सीमनी नाड़ी के दोनों पार्श्वों में, बायें पार्श्व में बायाँ मुल्क, बायें
पार्श्व में बायाँ मुल्क लाना चाहिए। पानुवों के ऊपर हाथों को केशिनों
को फैलाते हुए रखें तथा मुँह को फैलाते हुए नाचाग्र में दृष्टि लायें। योगियों

"LION POSE - (i) Kneel and sit back on the heels (ii) Place
the hands on the thighs just above the knees and inhale
deeply. Leave forward, open your mouth wide say ' HA '
loudly and stick your tongue out as far as it will go.
Repeat halt a dozen times.

- Yoga Illustrated dictionary p. 137

२- ह० २० २१२०- २२ तक

३- ह० २० वनिष्ठा २० ह० २०

में बैठे बाधकों द्वारा प्रणित यह शिक्षण चीनी बन्धों का खोल करने वाला उत्तम माना गया है ।^१

घेरण्ड संहिता में शिक्षण कथन- " चीनी बन्धों को अङ्गुष्ठन से कण्ठोत्ती के नीचे लाकर बलन्धरबन्ध से भ्रूज्य में दृष्टि करके कसा नासाग्र में दृष्टि लाकर रहे । इसे शिक्षण कहते हैं । इसके सभी रोग नष्ट होती है । "

ह० प्र० में शिक्षण परिभाषा में- " यह मुख को फैलते हुए व हाथों की बानुवों पर केंद्रित फैलते हुए रहना बताया है । शिक्षण को चीनी बन्धों को खोल करने वाला उल्लेख किया है । घेरण्ड संहिता में हाथों को सामान्य रूप से रखकर बलन्धर बन्ध लाते हुए भ्रूज्य में दृष्टि लगाना बताया है । ह० प्र० में मुख फैलते हुए नासाग्र दृष्टि लगाना है । पैरों के खोलने की प्रक्रिया दोनों में समान है । बाधना एवं स्वास्व्य की दृष्टि से ह० प्र० की प्रक्रिया उपर्युक्त प्रतीत होती है ।

शिक्षण के लाभ

की वजह से^३ ने शिक्षण के निम्न लाभों का उल्लेख किया है- " इसके (शिक्षण से) गले के दर्द को वाराम मिलता तथा गले के पास वादि के लिए लाभदायक है, बहुत गले की वजह से कुछ पाणियों में हुए

१- ह० प्र० १।५० से ५२ तक

२- ह० प्र० २।१७, १४

३- LION POSE- Relaxes the larynx and relieves sore throats. Very useful to public speakers and signers, often relieves a sore throat within minutes. To be performed in private, otherwise onlookers might think there is something wrong with your head.

- Yoga Illustrated Dictionary p. 137

कहा है। श्री स्वामिन्स में करना चाहिए अन्यथा देखी जाते यह जानें कि फिर मैं कोई रोग होगया है।”

गौमुख वाचन के लक्षण त्रिशिखिप्रावणीपनिषद् के समान ही दिये हैं । योग-
दर्शन भाष्यकार स्वामी बीडमानन्द जी का गौमुखासन वर्णन- " दाहिनी पुच्छ
पार्श्व (पूरुष) के नीचे बायें पैर के गुल्फ (गठि) की और बायें पुच्छ पार्श्व
के नीचे दाहिनी पैर के गुल्फ की रखकर, दाहिनी हाथ की शिर की और है और
बायें हाथ की नीचे की और है पीठ पर से बाहर दाहिनी तर्फी है बायीं तर्फी
की पुच्छोत्तमक फड़ है । "

एक प्रक्रिया में गुल्फों के रखे का प्रकार
उक्त उपनिषदों के समान ही है किन्तु बायीं- बायीं तर्फी कूटुखियों के फड़ों
की प्रक्रिया विभिन्न है।

स्वामी व्याख्येय जी की गौमुख वाचन परि-
भाषा- " बायें पैर की खड़ी की दक्षिण निमग्न के समीप में रखकर फिर
दक्षिण टांग मोड़कर बायें पैर की खड़ी को वाम निमग्न के निकट रख दें, जिससे
वाम जानु पर दक्षिण जानु स्थापित हो जाय । सम्भाव्य होकर दोनों हाथों की
कूटुखियों को परस्पर मूँकर फुटने के कम्पाग पर रख दें, कम्पा बायीं मुखा की
मोड़ कर कोखी की ऊपर शिर की और करके हाथ पीठ पर छाड़ दें, बायीं
मुखा की मोड़कर कोखी की पीठ की और करके ऊपर श्रिया की और छाड़कर,
दोनों हाथों की कूटुखियों को परस्पर बांध दें । "

ह० ६० व० के अनुसार गौमुखासन की विधि-
" बायें पैर की उठाते हुए बायीं और है बाहर गुल्फ की पीठ के निकट स्था-
पित की और दाहिनी पैर की गुल्फ की बायीं और पीठ के निकट रहे । यह गौमुख
की वाकृति का गौमुख वाचन है । "

ह० २० के अनुसार गौमुखासन की परिभाषा-

१- योगदर्शन पृ० ४३२ भाष्यकार स्वामी बीडमानन्द

२- बहिरंग योग पृ० ७६

३- ह० ६० व० २२ व० ५०

“ बायीं और दक्षिण मुल्क और बायिनी और बायां मुल्क रही है गौमुख के समान बाहुति की, गौमुख बाज्ज कही है । ”

ए० प्र० में गौमुख बाज्ज का वर्णन निम्न प्रकार उपलब्ध होता है- “ कटि के बायीं और बायां मुल्क और बायें भाग में बायें टली (मुल्क) को लाकर गौमुख के समान बाहुति की गौमुख बाज्ज कही है । ”

पे० ए० के अनुसार गौमुखाज्ज क्या- “ भूमि पर दोनों पैरों को रखकर और पीठ के दोनों पार्श्वों में लाकर पैर को संकाय करके गौमुख के समान ऊंचा करके घेरी की गौमुखाज्ज कही है । ”

वस्तुतः ए० प्र० और पे० ए० की गौमुखाज्ज की प्रक्रिया एक ही प्रकार की है, किन्तु क्रियात्मक पक्ष से ए० प्र० की उही अधिक स्पष्ट होती है। दोनों ही ग्रन्थों में हाथों की स्थिति किस प्रकार रहनी यह उल्लेख नहीं किया है क्योंकि स्पष्ट वर्णन पूर्वोक्तलिखित ग्रन्थों में उपलब्ध होता है । प्रयोगात्मक दृष्टि से दोनों ग्रन्थों में प्राच्य प्रक्रिया अधूर्ण विहित होती है।

गौमुखाज्ज के लाभ

ए० प्र० एवं पे० ए० में गौमुख बाज्ज के लाभों का वर्णन उपलब्ध नहीं है। बहिरंग योग में प्रस्तुत गौमुखाज्ज के लाभ- “ यह घुटनों की अस्थिरताही पैरों की नर्वों को सुदृढ़ करता तथा कण्ठकोशों की वृद्धि को रोकता है। अथ- स्वाध्यायादि के लिए उपयुक्त है । ”

ए० ए० ए० के अनुसार लाभ क्या- “ गौमुख

१- ए० २० अ० ५२

२- ए० प्र० १। २०

३- पे० ए० २। १६

४- बहिरंगयोग पृ० ७६

वाला है ब्रह्मवाह की चिदि, मुख्य का ज्ञान तथा मन्दर एवं ज्ञी (ब्रह्मवाह) रोग निवृत्त होती है। अन्य वाह्य की नीति व धीति की चिदि होती है।^१”

योगशास्त्री “संयोग” विवेचन में गो-मुताज की प्रक्रिया - “” इस वाहन का ब्रह्मवाह करते समय वाह्य की ध्यान रक्षा वाह्य कि वाहना पर बायीं पैर के ऊपर रहे। घुटने एक दूसरे के ऊपर रहे। पैर बन्द रहे तथा मन वाह्य पर केन्द्रित रहे।”

गोमुत वाहन है शरीर की स्नायुओं की निर्वहता, एवं वाह्य रोग दूर होता है। कण्ठकोश - मुदि में यह वाहन बहुत उपयोगी है। कुम्भा-णू पुष्ट होती है तथा मनुष्य की मन्दर रोग में लाभकारी है। पीठ व मूत्राशय (वाह्यिका एवं) की नष्ट कर पुनः (चिदि) के दोषों को दूर करता है। उपर वीर ज्ञी, मन्दर रोगों का प्रत्यक्ष हर्ता होता है। इसी ब्रह्मवाह एवं मुताज में सुदृढ़ता वाह्यी, स्कन्धी की स्नायुवाह नादियों में एकत्रि विषादीय-मत् एवं बहिर्दिष्ट की हृद कुम्भा का निष्कासन करता है। इस वाहन को लाकर ध्यान भी किया जा सकता है। पहले बार इस वाहन को करते है घुटनों पर दबाव पड़ता है। इसलिए इसका ब्रह्मवाह ज्ञी: ज्ञी: मूत्राशय वाह्य। यह वाह्य स्थितियों के लिए भी उपयोगी है। इसके ब्रह्मवाह से प्रारंभ एवं नादिक धर्म की गढ़वड़ी ठीक होती है।

वीरासन

त्रिशित्तिज्ञातणीपनिषद् में वीरासन का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है- “” एक पैर को दूसरे पैर के ऊपर रखकर निश्चल रूप बैठी को वीरासन कहते हैं।”

१- पृ० ३० पं० २१ क

२- योगशास्त्री संयोग विवेचन पत्रिका १९८१ पृ० १०

३- त्रिशित्तिज्ञातणीपनिषद् पृ० ३७

शाण्डिल्योपनिषद् में भी वीरासन की परि-
भाषा उपर्युक्त प्रकार से ही प्राप्त होती है ।

दर्शनोपनिषद् में वीरासन के लक्षण - " बायीं
पैर की दाहिने पैर पर रखकर सीधे बैठने से " वीरासन " होता है । "

" वशिष्ठ योग " में वीरासन का उल्लेख
किसी प्रक्रिया निम्नान्व प्राप्त होती है- " बायाँ पैर दक्षिण बंधा के ऊपर
वीर दायाँ पैर बाएँ घुटने के नीचे धरे, समझाए होकर, दोनों मुलाखों को बाधा
कहाकर, हाथों को " तानमुद्रा " में बांधकर दोनों घुटनों पर स्थापित कर दें ।
इसका नाम " वीरासन " है । "

द्वितीय प्रक्रिया- " बायीं टांग मोड़ें फिर
वही घुटना मोड़कर सही की वाम- निताम्ब के समीप इस प्रकार स्थापित करें कि
वाम पैर का कंधा वीर घुटना भूमि का स्पर्श करें । पीछे दक्षिण पाद- तल की
वाम घुटने के साथ मिला भूमि पर इस प्रकार धरे पिछले घुटना ऊपर लड़ा हो
पाय । अब बायीं सीसी की वाम- घुटने पर, वीर दक्षिण हाथ की घुटनी बांध
कर दक्षिण घुटने पर रखें, स्तम्भों को तानकर समझाए होकर बैठें । "

च० २० में वीरासन वर्णन- " एक पैर दूसरे
पैर की (बायीं) बंधा पर वीर दूसरा पैर (दायाँ) बंधा पर रखकर बैठने से
वीरासन होता है । "

१- शाण्डिल्योपनिषद् अ० ४

२- दर्शनोपनिषद् अ० ६

३- वशिष्ठ योग पृ० ७

४- " " पृ० ७

५- च० २० अ० ५३

ह० प्र० में वीरासन के उपाण ह० र० के समान ही प्राप्त है ।

ये० ह० के अनुसार वीरासन रूप- " एष पैर दूधरे पैर की बंधा पर रूटे तथा दूधरा पैर, फले पैर की बंधा के नीचे रखकर बैठने से वीरासन होता है । "

वीरासन का वात्सर्ग वीरों के समान बैठने से है। ह० प्र० की विज्ञात चरुण्ड उलिया की वीरासन की परिभाषा अधिक उपयुक्त है, क्योंकि ह० प्र० की परिभाषा के अनुसार वीरासन की प्रक्रिया की क्रियात्मक रूप देने से फलप्राप्ति की स्थिति ही जागिरी । किन्तु ये० ह० में उल्लिखित प्रक्रिया विच्छिन्न स्पष्ट है किसी वीरासन बनता है।

वीरासन के लाभ

प्रारम्भ में साधक, साधना हेतु फलप्राप्ति, जिज्ञासु जैसे कठिन वाक्य नहीं लगा सकते, वे वीरासन पर ध्यान कर सकते हैं। इस वाक्य के लगाने से पैरों की बाह्य पेशियों पर दाब कम पड़ता है और बिना कसरत के साधना अधिक समय तक चल सकती है। यह मुलायम होने के कारण इस वाक्य पर साधना का श्रम उन्मादवस्था पर से जाने के लिए प्राणायाम का भी सम्यक् किया जा सकता है। इस वाक्य पर कुण्डलिनी का उत्प्रेक्षण भी उपयुक्त समय पर होगा। व्यायाम का संवर्धन ठीक रहेगा तथा मुलाधार के समस्त रोग निवृत्त होंगे।

वीरासन का उल्लिखित उपयोग ग्रन्थों में बहुत कम उपलब्ध होता है।

१- ह० प्र० १। २९

२- ये० ह० २। १७

धुराज

विशिष्टाङ्गणोपनिषद् में धुराज की परिभाषा- " दोनों पैरों के कूठों को हाथों से (उपर के छतरे जमीन पर बैठ कर) फड़ कर कानों तक सीपी है ध्रुज के समान वाकृति वाला धुराज होता है । "

स्वामी बीरमानन्द जी ने योगदर्शन भाष्य में धुराज का हाथ पैरों के बल्य परिवर्तन से चार प्रकार का उल्लेख किया है -

१- " दाहिने हाथ से दाहिने पांव का कूठा, फड़कर बायें हाथ से बायें पैर का कूठा सींकर बायें कान को लाये । "

२- बायें हाथ से बायें पैर का कूठा फड़ कर दाहिने पांव का कूठा बायें हाथ से सींकर दाहिने कान को लाये ।

३- दाहिने हाथ से बायें पांव का कूठा फड़ कर उल्ले नीचे दाहिने पांव का कूठा , बायें हाथ से सींकर बायें कान को लाये ।

४- बायें हाथ से दाहिने पांव का कूठा फड़ कर उल्ले नीचे बायें पांव का दाहिने हाथ से सींकर दाहिने कान को लाये ।

ह० सं० सं० का धुराज- " दोनों पांवों के कूठों को दोनों हाथों से फड़कर ध्रुज के समान कान तक सीपे, वास्तव्य को नष्ट कर नाड़ी वृद्धि करने वाला यह धुराज है । "

ह० १० में धुराज उपाण- " दोनों पैरों

१- विशिष्टाङ्गणोपनिषद् मन्त्रभाग ४३

२- योगदर्शन भाष्यकार स्वामी बीरमानन्द जी pg ४३६

३- ह० सं० सं० २० क

के कूटों की हाथों से फड़कर जानी तक सीपी से धुन्ध के समान बाधुविवाहा धुराज होता है।^१

ह० प्र० में धुराज की परिभाषा- " दोनों पैरों के कूटों की हाथों से फड़कर, धुन्ध के समान जान तक सीपी की धुराज होती है।^२

ध० ह० में धुराज की विधि- " भूमि पर दोनों पैरों की पीछे फैलाकर, दोनों हाथों की पीठ की ओर से बाकर दोनों पैरों की फड़ से तथा शरीर की धुन्ध के समान करें। इसे धुराज कहते हैं।^३

ध० ह० की धुराज विधि, ह० प्र० की विधि की सीमात अधिक स्पष्ट है। ध० ह० की परिभाषा के अनुसार साधक धुराज की ठीक प्रकार कर सकता है। "करी व पृष्ठ" दोनों हाथों की पीठ की ओर करके "निर्दिष्ट मात्र से ही धातु की प्रक्रिया समक में जा जाती है, जो ह० प्र० में उपलब्ध नहीं है।

धुराज के लाभ

ह० प्र० तथा ध० ह० में धुराज के होने वाले शारीरिक लाभों का उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

जी व्याख्यान जी के अनुसार धुराज के निम्न लाभ हैं - " धुराज से गैरुदण्ड तथा उदर पर विशेष प्रभाव पड़ने से रीढ़ की शिरकाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है जिससे समस्त गैरुदण्ड लकीरा, घुड़ तथा मुष्ट बने लगता है। मन्दाग्नि नहीं होने पाती, उपर में परा वायु निकल

१- ह० २० अ ५०

२- ह० प्र० अ २५

३- ध० ह० अ १८

जाता है। स्कन्धों से लेकर मुँह तक तथा बाँध, घुटने, पैरों की नाँव-पैठियाँ सब-नाड़ियाँ पुष्ट होती हैं।”

धुराज्य विविधता: हाथ पैरों की नाड़ियों का विकास है नाभि तक जाता एवं किडनी कर्तों को प्रभावित करता है। नाभि तक स्थित व्याननाडु है सम्बन्धित बिजने भी मन्दान्त्रि, कण्ठ, गैर, बाँध (मूत्राशय) के रोग नष्ट करता है, मूत्र एवं शिखी की कम्बोरी को दूर कर उनकी शक्ति बनाता है तथा लूँके लालियों की सम्बन्धित मूत्राशय में भी सहायक है। मूत्राशय को चौकी करने में भी सहायकी है।

साधना

जिन व्यक्तियों की रक्त दाह की बीमारी है उन्हें यह वासन लाभकारी है। फलश्रुति की सम्पत्ति में यह वासन करना पड़ता है। यह वासन ऊपर एवं निम्न है वसिद्विध (मूत्राशय) कर्तों को दूर करता है। शरीर की लोटी लूँके लालियों को श्रियाशील करता है। यह वासन को शिखा भी कर जाती है।

मूत्राशय । अज्य

मूत्रक के अज्य शरीर को शिपित करके होता जाता है जो की मूत्र कसा अज्य करती है।

६० सं० १० में मूत्राशय की परिभाषा इस प्रकार मिलती है- “ पीठ के सब ठीक प्रकार लेकर पैरों की फेलाई। दोनों हाथों को समुद्र कर कृत्य पर रहें। पुष्टि की नाजिकाग्र भाग पर रखकर धरि

का स्पर्श नहीं हुए पीठ भाग से उठें। यह स्नायु विकसारी है।^१ "

ह० १० के अनुसार स्नायु वर्णन- " पीठ भाग पैरों की फैलाकर देना स्नायु है। यह विभिन्न बाजों से बाईं कानट की दूर रहता है।^२ "

ह० २० में स्नायु का उल्लिखित निम्न प्रकार मिलता है - " पीठ के सब भुजा पर बैठ कर कृष्ण निःश्वसित हो जाय। जब समय का समय होकर फिर की क्रिया मिलता है।^३ "

ह० ३० के अनुसार स्नायु वर्णन- " भुजा पर कानट उठार की विधि करके बैठ जाय। यह स्नायु कानट की दूर कर फिर की क्रिया देने वाला है।^४ "

धर्मधर और स्वाध्याय की स्नायु प्रक्रिया में कोई कसर नहीं है। स्नायु के विषय में ह० १० में निम्न टिप्पणी प्राप्त है- " स्नायु धर्मधर उल्लिखित के रसीक २१६ में सर्व योग मार्ग प्रतिपिपा (पार्श्व ह० पी०) में स्नायु की प्रकाश और ह० २० ११३२ में प्रकाश कहा है। योग मार्ग प्रतिपिपा में ह० कसर से का परिवर्तन का उल्लिख है। लेकिन ह० ३० पत्रिका का स्नायु विस्तृत निम्न है। सभी भाग फैलाने की विधा बाजों की भुजा पर रसीक का निर्दिष्ट है। लेकिन स्नायु की कसर बाज प्रकाश करी है, किसी प्रक्रिया निम्न है। देली (पार्श्व-पी०) योगासन विज्ञान पुस्तक २२८। श्री संहरानन्द योगी के शिष्य विश्वनाथ कपूर (रसीक १८७८) ने स्ना-

१- ह० ३० पी० २० स पी०

२- ह० १० ३१७७

३- ह० २० ११३२

४- ह० ३० २१६

जन्म के समान ही प्रत्यागमन की प्रक्रिया का उल्लेख (सूत्रों ७६-७८) उत्तरी विष्णु-
सूत्र सामीपम् (सैखम्) के सूत्र प्रुच्छ द्दर पर वर्णित है। स्वासन का मुख्य उद्देश्य
शरीर एवं मस्तिष्क को पूर्ण विश्राम देना है। वैज्ञानिक रूप से यह वासन मस्तिष्क
के सम्पूर्ण विकारों पर बहुत प्रभावी है।^१

स्वासन की प्रक्रिया पमीन पर पीठ के बल
जन्म की तरह बैठकर है। शरीर बिल्कुल निश्चित होना चाहिए। जहाँ तक हाथों
के फैलाने जमा बहालपन पर रली का प्रश्न है, उन्हे स्वासन से होने वाले लाभों
में कोई परिवर्तन नहीं होता। उन्हे मुख्य बात यह है कि वासन करते समय शरीर
एवं मन का ईश्वर समर्पण होना चाहिए। जिस कोटि का समर्पण होगा उन्ही
कोटि का लाभ वास्तविक को प्राप्त होता है। यदि स्वासन करते समय शरीर में
अन्यथा होगी तो शारीरिक व मानसिक लाभ प्राप्त नहीं होगा।

- १- Verse -76 SAVASANA- This is also called Mrutasana by
Ch.S 2.19 and YMP Pretasana by H.P. 1.32 and YMP with
little variation have identical description, but HSC
describes a different technique. Instead of extending
of the hands ^{hands} are kept on the chest. ' Uttan Murtaya shayanam
Vidhayaa prsaraya pedau karsamputam Hridi ' But Pretasana
others say it is Ghost posture, a different way. See YVP
228 Viswanath Avadhuta (1878 A.D) disciple of Sankaranand
Yogi describes the technique at Pretasana same as Savasana
in his SVS 2-33 page 82. Savasana aims of complete relaxa-
tion of the body and mind. Scientifically it has been
found very effective in the disorders of Psycho-somatic
origin.

Hath Ratnavali p. 148

खासन के लाभ

योगवाणी 'छन्दोग' पिटृशांकि में खासन के विषय में निम्न उल्लेख प्राप्य है- " निश्चन्दैरु यत् वासन स्मारे शरीरं कौ पूर्णं किमपि वेत्ता है, स्मारी चेतना की वृद्धत्वं ज्ञान करता है। यह प्राचीन वालों में है एक है। योगाभ्यासियों ने लोक वालों के व्यास के बाद शरीर की फाट्ट फिटाने के लिए वीर पूर्ण किमपि की प्राप्ति के लिए इस वासन के व्यास में टानिक का काम करता है। खासन के व्यासी को जमीन पर पड़ी या कम्बल बिछाकर उस पर दोनों हाथ पैर एक सीध में फैलाकर पित्त छेद बाना चाहिए। खासन का व्यास करी कम शरीर के स्नायुओं तथा कं- प्रत्येकों को डीला रहना चाहिए। उन पर किसी तरह का तनाव न पड़े। व्यास- उच्छ्वास धीरे धीरे लेना चाहिए। मन को शान्त रहना चाहिए, नेत्रमन्त्र रहना चाहिए। केश- शिवा ऊपर की वीर लुकी रहें, शरीर का कोई भी का न रहे। पल्ले चौड़ी के बाद इस वासन का व्यास आवश्यक है। इसे अच्छी नींद जाती है। बाष्पात, पीठ की कड़वे वीर कमर के दर्द को दूर करने में महान् लाभ है। "

खासन है शारीरिक किमपि

हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक क्रिया शक्त या बल मानसिक ऊर्षों का परिणाम है। मन में ऊर्ष उठी है वीर शरीर में प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं। जब हम कोई कार्य करना चाहते हैं तो प्रथम मन में ऊर्ष उत्पन्न होता है, वीर मन उठी पाण्य मस्तिष्क को एवं मस्तिष्क स्नायु मण्डल को संवर्धित कर देता है। फिर प्रकार के शरीरात्मकों के ऊर्ष वीर तनाव में ऊर्ष होता है उची प्रकार विविधीकरण क्रिया में भी मात्सर्यों का प्राधान्य होता है। फिर प्रकार के हम शरीर के किसी अंग को ऊर्षित होने का लक्ष्य देते

है उसी प्रकार शक्ति शरीरत्वयों को विविधीकरण का जीत भी देती है। इसी को वात्म उन्नीत एवं बान्धविक पटकों को विनाश देना देती है। किन्तु दृश्य, सुन्दर, कृत और शक्तिशाली वादि कौशिक व्यवस्था पर नियन्त्रण नहीं होता है। का: उन सबके बीच विविधीकरण करने में लगाम रखती है। लेकिन उन सबको भी अपने कार्य के सुव्यवधान के लिए विनाश की अनिवार्य आवश्यकता होती है। किन्तु वाधकत्व उन सभी बान्धविक, कौशिक पटकों के विनाश के लिए उपयुक्त शक्तिशाली का प्रयोग करते हैं। विविधीकरण में शक्ति-मन, दृश्य और कृतवादि प्रधान शरीरत्वयों को जीत देता है। इस प्रकार वे शरीर भी व्यक्ति अपने कौशिक व्यवस्था को विनाश देता है। शरीरिक विविधीकरण पर के कृष्ट के वात्म होकर कौशिक के विरुद्ध तक पहुँचा जाता है। यह प्रक्रिया वात्म-उन्नीत द्वारा दृश्य-विषय कृत वादि पटकों तक प्रभावित होती है।

उत्पन्न के मानसिक विविधीकरण

वैदिक ज्ञान की कौशल आवश्यक विचारों और मनोव्यवस्थाओं के ज्ञान के शक्ति का अव्यक्ति प्राप्त होता है। मानसिक ज्ञान के ज्ञान स्वातंत्र्य की गति धीमी और एकस्वात्मक रूप में चलती है, कुछ राज्ञेय स्वातंत्र्य की गति पर मन एकत्र करना चाहता। धीरे धीरे मन प्रकान्त हो जाता है और एक कौशल वात्म की तरह उभरती जाती है। शान्ति और वात्म के साथ साथ शरीर में हलकेपन की अनुभूति होने लगती है। यह हलकेपन ही मानसिक बाधकता का हटाव होता है।

उत्पन्न के वादिक विनाश

मनुष्य यदि विना ही वैदिक या मानसिक विविधीकरण नहीं करे, किन्तु मानसिक विचारों और मनोव्यवस्थाओं फिर भी

दीक्षा नहीं होती कि वह कि वार्षिक शिक्षाकरण नहीं किया जाता है।
 विद्या, परीक्षा, शोध, मन, ज्ञानादि मानसिक व्याख्या विद्युत् की होती
 है, वह कि वाक्या का शरीर और मन है वाक्य का रत्न ज्ञान की व्याख्या
 नहीं ही होता। का: कभी की लय पीली है कुछ करने का प्रयास करना चाहिए।
 जीविकता बाली है कि कुछ शान्ति पुन शान्ति का वातावरण ज्ञान पुन स्वल्प है, न
 कि शरीर या मन, वाक्य है लय पीली है ही कभी "कह" की व्याख्या" विद्या-
 नन्द " का अनुभव करते हैं मानस- मन के कण्ठ में केवल ही वाक्य प्रसार के कद
 अनुभवों का विचार बना रहता है, का: उन् अनुभव करना चाहिए कि " मैं कुछ
 भवन हूँ एवं वाक्या हूँ। " एवं प्रकार की अनुविधि मानस वाक्य शिक्षाकरण की
 पुन प्रक्रिया है।

उपरोक्त प्रकार है लय ज्ञान है किन्तु शरीर-
 रिक मानसिक एवं वार्षिक शिक्षाकरण करे बिना पुन शान्ति प्राप्त कर नहीं
 है।

गुणात्मक

कि ०० में गुणात्मक के लक्षण- " दीक्षा
 ज्ञान और वाक्यों के लय मान में दीक्षा परी की विद्या कि और उन परी
 के ऊपर गुण प्रकृति की है। वह गुणात्मक व्यवस्था है।

गुणात्मक का उत्ति ०० २० एवं लय ज्ञान
 प्रयोग में उपलब्ध नहीं है।

गुणात्मक के लक्षण

गुणात्मक का लक्षण यीन वाक्य एवं गुणात्मक

के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। यह वाहन प्रत्येक पालन में सहायक उपस्थित-
 निम्न पर बहुत रूप है। कामोत्प्रेक्षा का समन करता है। गुदा प्रीति के समस्त रोग
 जैसे- कर्ष, भग्नदर, मनुष्य, प्रीति तथा प्रार में सहायक छिद है। गुदाधार स्थित
 नाड़ी मण्डल की वृद्धि करता है।

मस्त्रासन

वहिरंग योग में मस्त्रासन उत्तम- " फमालन
 लगाकर पीठ के ऊपर बैठ बाय तथा फमालनक भाग धूमि है लगा रहे और कटि
 भाग धूमि है कुछ उठा रहे। दोनों हाथों के पैरों के अंगुलि फड़ कर ली स्थिति
 में कुछ देर रहें। जमा दोनों कौहनियाँ परस्पर हाथों के फड़ कर छिर के नीचे
 रहें। हाथों की ल दोनों स्थितियों में यह वाहन कर ली है। "

पे० ६० के अनुसार मस्त्रासन- " मुक्त-फुपा-
 जन की स्थिति में पीठ के बल बैठ कर, कौहनियों के छिर के नीचे लगाने से रोगों
 को नष्ट करने वाला मस्त्रासन कहलाता है। "

पे० ५० में मस्त्रासन का वर्णन उपलब्ध नहीं
 है।

मस्त्रासन के लाभ

यह उच्च सम्बन्धी विकारों को नष्ट करता
 है। हाथ पैरों के वायु विकार नष्ट होकर शुद्ध होती है। शार्दटिका रूत के लिए
 यह उपाय है।

१- वहिरंग योग पृ० १०८

२- पे० ६० अ २१

मत्स्येन्द्रासन

त्रिशिरासतन्त्रीयनिष्ठाद् में प्रवृत्त परिभाषा-

“ बायें पैर की जंघा के मूल में बायें पैर की रीं, घुटने की लेंदरी हुर बायें हाथ से बायें पैर के कूँठे की फाँड़ी से मत्स्यपीठ (मत्स्येन्द्र) बाज्ज है । ”

वहिरंग योग में मत्स्येन्द्रासन का उल्लेख- “

दाहिं बायें की फेलाकर बैठें । पश्चात् बाय- पाद की खड़ी की नाभि में उस प्रकार लगाव कि पैर का फेला दक्षिण जंघा मूल में जा टिके । अब दक्षिण पाद तब की बायें घुटने के बाय पार्श्व में खड़ा करके बाय- उल्लेख की खड़ी घुटने के दक्षिण पार्श्व में बाहर की ओर से से बाकर दक्षिण पैर के कूँठे की फाँड़ी में । तदनन्तर दक्षिण उल्लेख की पीठ की ओर घुमाकर बायें गिटे का उस प्रकार स्पर्श करे कि मूल हुनकर बायों ओर हो जाय, घुट्टि पीछे की ओर सीधी रहे । इसी प्रकार हाथ पैर बस कर घुघरी ओर से बन्धाव करे । ”

उठ जैत वन्धिका में मत्स्येन्द्रासन उल्लेख-

“ बायें जंघा के मूल में बायें पैर की रीं, बायें हाथ से बायु की लेंदरी हुर घुट्टि बाय की ओर हुनकर के बैठ जाय । यह मत्स्यनाथ द्वारा कहा गया बाज्ज है । ”

उठ रत्नावली में मत्स्येन्द्रासन उल्लेख- “ बायें

जंघा के मूल में बायें पैर की रीं । बायें बायु की बायों मुखा से लेंदरी हुर बायें पैर की फाँड़ी तथा बायों ओर के पैर की बायों मुखा से फाँड़ी । शरीर को मोड़ दें । यह मत्स्यनाथ द्वारा कहा गया बाज्ज है । ”

उ० १० में मत्स्येन्द्रासन का घुघरा उल्लेख-

“ जब पैर एक पार्श्व की ओर लीं हैं तब ही उत्तम पार्श्व मत्स्येन्द्रासन कही

१- त्रिशिरासतन्त्रीयनिष्ठाद् मन्त्र भाग ४८

२- वहिरंग योग पृ० ६४

३- उ० उ० प० २० उ० प०

४- उ० १० श ५५

६।१००

६० १० में मत्स्येन्द्रासन का तीसरा उपाय-
" बाएँ एक हाथ है एक ही पैर की कलाई से यह वह मत्स्येन्द्रासन है। "

६० २० में मत्स्येन्द्रासन परिभाषा- " बाएँ पैर की जंघा मुठ में दक्षिण पाँव की रखकर बाएँ पैर की जानु से बाहर से बाहर हाथ से लपेट कर फाड़ें और फिर वाम पार्श्व की ओर से मुठ पार्श्व की ओर मुठ करके बिना स्थिति में ठिके, उसे मत्स्येन्द्रासन कहते हैं। "

६० ३० में मत्स्येन्द्रासन की परिभाषा- " उदर की पीठ के समान समझाए से सीधा रखी हुए बाएँ पैर की लड़ी की प्रत्यक्ष-पूर्वक नवाकर दाहिनी जंघा पर रखें, और उस पर दाहिनी कौन्सी रहे तथा दृष्टि की पीठों के मध्य में स्थिर करें। यह मत्स्येन्द्रासन कहलाता है। "

६० ३० के मत्स्येन्द्रासन पर योग पीपासा (लीलावत) के बोलचाल १२ ६० (३ व ४) जनवरी व मार्च १९७० में मत्स्येन्द्रासन पर निम्न टिप्पणी उपलब्ध होती है- " ६० ३० में ६० २० के प्रत्यक्ष

१- ६० १० म. ६

२- ६० १० म. ६

३- ६० २० म. २६

४- ६० ३० म. २२ व २३

५- Gheranda Samhita's is not exactly the same as this. For adopting the Matsyandrasana pose, as described in this verse, the body will have to be naturally twisted to the left. But this pose has to be repeated by manipulating the limbs on the other side in exactly the same manner and thus twisting the body to the right. The description of Matsyandrasana given in this text being incomplete, the aspirant is referred to the description of Ardhamatsyendrasana in ' Asanas ' by Swami Kuvalayanand. Instead of the heel being set against the perineum, according to this author, it is to be placed at the roof of the thigh above.

उत्तारों के अनुसार मत्स्येन्द्रासन के उत्तार उपलब्ध नहीं हैं। क्योंकि श्लोक में उल्लेख है मत्स्येन्द्रासन के बन्धन में उरीर स्वाभाविक रूप से बायें और ही मुड़ा है लेकिन वह बायें उरीर रूप में दोनों के परिवर्तन करके पीछे से बायीं और भी पीछे वापस, लेकिन मत्स्येन्द्रासन ६० प्र० में वर्णन रूप से उल्लिखित है। स्वामी ब्रह्मानन्द ने "वाक्याय" पुस्तक में लिखा है कि साधक को कर्ममत्स्येन्द्रासन करते हैं।"

मत्स्येन्द्रासन के विचार में ६० २० में उपलब्ध टिप्पणी- " ६० ६० , ६०२० एवं ६० प्र० में मत्स्येन्द्र के उत्तार वर्णन है , ६० प्र० के श्लोक १।२६ में ब्रह्मानन्द की टीका में उसी प्रक्रिया एवं प्रभाव का पूर्णतः समान उपलब्ध होता है। ६० ६० , ६० प्र० एवं ६० २० की प्रक्रियाओं में भी अन्तर है, अन्तर महान पड़ता है। वास्तव में बायें की प्रक्रिया के अनुसार कोठा को पीछे के लिए हाथों को परिवर्तित (९०°) करना पड़ता है । फलतः प्रक्रिया के अनुसार पानुओं पर कोखों को पीछे से तथा हाथों पर ठोड़ी को स्थापित करना है। "

१- The description of Matsyendrasana given in Gh.S. , H.R., and H.P. is incomplete. H.P. 1.26 alongwith the commentary of Brahmananda, however, provides us complete information about the technique and its effects. The difference in the technique of Gh.S. H.P. and H.R. Seems to lie in the fact that the hand crossing the leg is extended to grasp the big toe according to the later, while the hand is bent in the elbow crossing the raised knee and chin rests on the palm of the hand according to the former. H.P. calls it an asana taught by Matsendra Natha , while TSM gives it the name Matsya Pithaka where the word Matsya does not mean fish. K.K. listed this asana as ' Surya Chandra Bhedenayanyas nani kathyente, 'and called as Matsyendra Pitha.

ह० प्र० में ही मत्स्येन्द्र द्वारा क्या हुआ वाचन उल्लेख है क्योंकि टी००२४०२५० ने 'मत्स्यपीठ' का नाम दिया है। क्योंकि 'मत्स्य' शब्द का क्या मक़दद नहीं है। कपात्करन्त्यक योग (के के) के अनुसार यह वाचन पूर्व पन्द्र नादियों को भेदन करने वाला 'मत्स्यपीठ' कहा है।

योगशास्त्री 'उठयोग विवेचन' में उल्लिखित मत्स्येन्द्रासन प्रक्रिया एवं उसके विचार में मत्स्य - 'मगवान् त्वि के मुहुरविन्दु से साप्तात् महायोग का भवण करने वाले योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ ने मत्स्येन्द्रासन का स्वयं बन्धाव कर उस हुच्छर वाचन को वाचने का पत्र- प्रस्तुत कर दिया। इसकी सामान्य क्रिया यह है- " दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसी पैर की हड्डी को बायें पैर के बाहुमुख पर स्थापित कर। इस अवस्था में पैर की हड्डी नाभि के नीचे के भाग में रखनी चाहिए। बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। पैर का उल्टा बनीन को स्पष्ट करता रहे। दाहिने पार्श्वों में बायें घुटने को भर कर दाहिने हाथ से ही बायें पैर के फी को फाड़ें और बायाँ हाथ पीठ की ओर रखकर दाहिने पैर को फाड़ें। दृष्टि को नीचे के मध्य में स्थिर कर। "

वस्तुतः मत्स्येन्द्रासन के विचार में विभिन्न उठयोग ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जो अपूर्ण ही सिद्ध हुई हैं। यहाँ तक ह० प्र० और य० ह० की मत्स्येन्द्रासन प्रक्रिया का प्रश्न है, दोनों ही अपूर्ण हैं। 'योगशास्त्री' में भी प्रक्रिया का उपर्युक्त वर्णन किया है यह कुछ समीचीन है। इसमें भी पार्श्व- परिवर्तन का उल्लेख नहीं किया गया है। मत्स्येन्द्र वाचन के बन्धाव में पार्श्व परिवर्तन कर्त्तव्य बायें बायें दोनों तरफ से इस वाचन का बन्धाव बाध्य के लिए उपर्युक्त रहेगा। यदि दोनों पार्श्वों (दायें- बायें) से बन्धाव नहीं होगा तो पैरुदण्ड में विकार उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि इस वाचन के बन्धाव से पैरुदण्ड पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

कर्मविज्ञान के अंग

६० ६० ५० में कर्मविज्ञान का फल- "कर्म-
प्रपीठ की बलुविनाश का बाधन कठराग्नि प्रीति करता है, प्रकट हीमों के
लम्बाई अंग के अंगान है। उन्नी अन्धकार के पुष्पलता का प्रवीण होता है तथा
बाधनों की विविधता प्रान करने जाता व तन्नि प्रवीण करने जाता है।"

६०^२ ६०^३ ५० में भी कर्मविज्ञान बाधनों के
फलों की ६० ६० ५० के अनुसार ही विवेचना की है।

६० ६० में उन्नी अन्धकार फल का उन्नीय नहीं
है।

कर्मविज्ञान बाधन के विरुद्ध अन्धकार के अन्धकार,
बाधन, विरुद्ध, अन्ध- विरुद्ध नष्ट हो जाती हैं। उन्नी अन्धकारों की उन्नी विरुद्ध
नहीं होती। अन्धकार हीम, अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार
हीमर अन्धकार का रक्षा है। उन्नी बाधन का विरुद्ध प्रान बाधन व पुन अन्धकार पर
कर्म है।

साधनानी

उन्नी बाधन के पुन अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार,
हीमर अन्धकार का अन्धकार करना चाहिए। अन्धकार की बीमारी के हीमों का
हीम नहीं करना चाहिए। अन्धकार हीम बाधन अन्धकार हीम अन्धकारों के अन्धकारों का
हीम हीम में हीम।

१- ६० ६० ५० २० ३ ५०

२- ६० १० ३ ५०

३- ६० ३० १ २०

गौरक्षाज

स्वामी बीजमानन्द के अनुसार गौरक्षाज-
 " दोनों पैरों के तालुकों को इस प्रकार मिलाने कि कुत्तियों के कुत्तियाँ और
 तबूब के तबूबा मिल जायें । फिर दोनों एड़ियों को पीठनी पर बसाकर पैरों
 को इस प्रकार बाँधी करे कि बायें पैर की कुत्तियाँ बायें फिंसी की और दा
 बायें और दायें पैर की कुत्तियाँ दायें पैर में बा गिरें, फिर दोनों हाथों को
 पीठ की और बसा के नीचे के हाकर छूटने के पाव के पैरों की कुत्तियाँ को फस
 कर बात्तन्धरन्ध लाकर फिच को स्थिर करते हैं । "

पृ० ६० में गौरक्षाज परिभाषा- " दोनों
 बंधावों के मध्य में दोनों पैरों को उठाकर बन्धक रूप में रहें तथा दोनों हाथों
 से दोनों एड़ियों को फस दें । कण्ठ को संकुचित करते हुए दृष्टि को नासाग्र भाग
 पर बनायें, यह गौरक्षाज योगियों को सिद्धि प्राप्त करने वाला है । "

पृ० ५० में गौरक्षाज का उल्लेख है उल्लेख
 नहीं है। म्हाजन की परिभाषा वर्णन में ही स्वात्माराम ने " गौरक्षाज-
 मित्वाहुरिणं वैशिवयोगिनः " शिवा योगी (म्हाजन की ही) गौरक्षाज
 करते हैं । चैरण्ड ने म्हाजन का भी उल्लेख उल्लेख परिभाषा में दिया है ।

योग योगीश्वर स्वतन्त्र भाग की क० मार्च
 १९०० में म्हाजन प्रकरण में गौरक्षाज के विषय में निम्न उल्लेख मिलता है-
 " पृ० ६० में म्हाजन का विस्तृत विन्म प्रकार दिया है, चैरण्ड को गौरक्षाज

१- योगदर्शन - नाथ्यकार स्वामी बीजमानन्द तीर्थ पृ० ४४४

२- पृ० ६० स २४, २५

३- पृ० ५० स ४४

नाम नहीं देते हैं। गेरुण्ड संज्ञिता में गोरक्षासन, भद्रासन से एवं स्वात्माराम के भद्रासन से विस्तृत विन्म स्वरूप में उपलब्ध है।^१ "

सात्त्विक यह है कि गोरक्षासन अन्य वासनों की तरह ही बला वासन है। यहाँ स्वात्माराम का यह कथन कि भद्रासन की ही गोरक्षासन कही है, उपलब्ध प्रतीत नहीं होता है।

गोरक्षासन के लाभ

ज्यातिय जी ने गोरक्षासन के विन्म लाभों का उल्लेख किया है- " हस्ते वायु वीर वंश की नाभि पेशियाँ, नई पुष्ट होती है। तब एवं हिम्मे प्रन्विका कन्द पीड़न (दबाव) से मुक्त होती है। कृण्ड-लिंगी प्रबोध तीव्र होगी। स्वःवीर्य सम्बन्धी विकार, स्वप्नबोध, यमुनि, प्रमेह एवं सभी प्रकार के प्रदरों का हनन होगा। पैरों के वात सम्बन्धी विकार नष्ट होंगे। गलियाँ एवं मुखी वात भी हान्य होंगे।^२ "

पश्चिमीस्तान वासन

वित्तिल्लिखितणीपनिष्णु के अनुसार पश्चिमीस्तान वासन के उदाण- " दोनों पैरों की भूमि पर फैलाकर छाट की

- १- GS gives an altogether different variety of Bhadrāsana, which Gheranda does not call Gorakṣasana. His Gorakṣasana is quite different from Bhadrāsana as described by him, as also from Bhadrāsana as described by Swatamaṛa. '

Yog Mimansa p. 27

२- बहिरंग योग पृ० ८३

पानुवों पर जाते हुए दोनों हाथों से दोनों पैरों के कूठों को फटें। जो पश्चिमीत्तान कही है।^१”

वहिरंग योग में पश्चिमीत्तान के का पहर-
वर्तन करके १२ प्रकारों का उल्लेख किया है—

(१) पश्चिमीत्तान

“ बैठकर पैरों को सामने सीधा फैलाकर परस्पर मिलाते। बायाँ दायाँ हाथ से बायाँ पैर का बाँर बाँध लेता है, बाय-
पाव का कूठा पकड़ता है फटकर टाँगों का कूड़ाकर सीधा कर दे। फिर
प्रत्याग को रोल करके पुनः बाँर उड़ियायान मन्त्र लाकर हाथों की काँची
बाँर फुकाते हुए मस्तक को टाँगों पर टिका दे। अतः बायुन कुम्भक रक्कर
बस स्वास ले की हवा ही तब मस्तक उठाकर जैः जैः प्रक करके पुनः पुनः
पर मस्तक रख दे। ”

(२) पानुव पश्चिमीत्तान

पश्चिमीत्तान की स्थिति में बैठकर पाव
कूठियों को जोड़कर दोनों हाथों से दोनों पानुवों को धाकर कूड़ा है फट
दे। पूर्व प्रकार से प्राणायाम करती हुए मस्तक को पुनः पुनः पर रख दे। ”

(३) पावक पश्चिमीत्तान

सामने फैलाई टाँगों को मिलाकर पूर्व
बैठकर दोनों हाथों की कूठियों को परस्पर टूँकर, पीठ फुकाकर दोनों पाव-

१- विशिष्टावर्णोपनिषद् मन्त्र भाग ५०

२- वहिरंग पृ० ८७, ८८

तलीं की लड़की कुलियों में बांध है और पूर्ववत् रैक-हुम्क करो हुए मत्तक की भी पूर्ववत् छुटी है उठती और उन पर रही हैं ।

(३) पुच्छवत् पश्चिमीस्तान

टांगों की पूर्ववत् फैलाकर वन दोनों हाथों की पीठ की और है बाकर दक्षिण हाथ है बाईं कोखी और वाम-वस्त है बाईं कोखी फड़ कर बांध है । पुनः रैक प्राणायाम करो हुए बागे की कुक कर छुटनी पर धिर रखर क्यावन्ति बाण्य हुम्क रखर मत्तक उठती हुए पुरक कर है । "

(४) पाष्णि (सड़ी) वत् पश्चिमीस्तान

दोनों पैर फैलाकर पूर्ववत् बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों की कुलियों के ऊपर है सड़ियों की छुटता है फड़ें हैं । पूर्ववत् मत्तक की छुटनी है उठाकर रैक-हुम्क करो पुनः छुटनी पर टिकाई । क्यावन्ति हुम्क रखर धिर उठाकर रैक कर है, पैसाफि पल्ले करो वा रहे हैं ।

(५) दिहस्त प्रसारण पश्चिमीस्तान

पूर्ववत् पैर सामी फैलाकर मिलाई तबन्तर दोनों मुजाबों की बायीं-बायीं और सीधा फैलाकर बिना मोड़े हुए अपनी पीठ मुकाकर पूर्ववत् रैक हुम्क करो हुए मत्तक की दोनों छुटनी पर टिकाई और ज्वाह ले के धिर मत्तक उठाकर पुरक रैक करो होइ है । मुजाबे फैली हैं । "

१- बाहिरी यौग पु० ८८ से ६० तक

(७) पुच्छसुष्टिकदपरिक्कीत्तान

पुंनित् टांग फाट कर बैठे । दोनों हाथों को पीठ पर से बाहर कुंठियों को परस्पर गुंथकर ज्येष्ठियों को पिछाकर रखें । अब मस्तक बागें मुकाफर घुटनों पर टेकी समय रेक करते कुम्भक कर हैं ।

(८) लक्ष्मणपरिक्कीत्तान

पुंनित् टांग फाट कर बैठें । फिर दायाँ पैर घुटने से मोड़कर दक्षिण निम्न के पार्श्व में रखी रखें । पुनः बागें को कुम्भकर दोनों हाथों से बाएं पैर का कुंठा फाड़ कर , फिर को वाम बाहु पर लम्बा रखकर पुंनित् रेक- कुम्भक करें । वही प्रकार दूसरी टांग से करें ।

(९) वद्विक्कपुमपरिक्कीत्तान

दोनों पैरों को बागें फाट कर बैठे, बाँर वाम पाद की रखी दक्षिण धंसा मुल में बनायें । वाम- हस्त को पीछे दक्षिण धंशक पार्श्व की बाँर से बाहर वाम पाद के कुंष्ठ को फाड़ें हैं । फिर दक्षिण हस्त से, फेरे हुए दक्षिण पाद का कुंठा फाड़ कर, लम्बा बन्दर मारकर, मस्तक से दाहिने बाहु का स्पर्श करें । वही प्रकार पैर बदल कर भी करें ।

(१०) पाद श्रीवापरिक्कीत्तान

दायाँ टांग को बाकी सीधा फैलाकर बैठें बाँर दायाँ टांग उठाकर गर्दन पर स्थापित करते दोनों हाथों से वाम- पाद को फाड़ कर जतना कुछ कि मस्तक बाहु से ला बायें ।

१- वद्विक्क योग पृ० ६० से ६२ तक

(११) बानुपृष्ठमक्षपरिचामीत्तान

दायीं टांग चाम्नी सीधी फैला है वीर दायीं टांग मोड़कर पादपत्र की भूमि पर सीधी ही रह दें। जब दक्षिण हस्त की दायीं पिण्डली के ऊपर से घुंछ की वीर से बायें वीर वाम हस्त की बायीं वीर से घुंछ पर से बाकर दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर शुष्कित करके मस्तक की बायें बानु से लगा दें।

(१२) विपरीत पाद प्रक्षारण परिचामीत्तान

दोनों टांगें दक्षिण वीर वाम पाश्यां में फैलाकर बैठें वीर हाथों से वाम पैर फट्ट कर मस्तक की वाम बानु पर ठेक दें। एही प्रकार दूसरे दायें बानु पर भी ठेकें।

ह० ६० वं० के अनुसार परिभाषा - "भूमि पर दोनों पैरों की फैलाकर दोनों हाथों से पैरों के अंगुठों की फट्टी हुए त्साट की बानुओं पर रहे। यह परिचामीत्तान कथं होता है।"

ह० १० के अनुसार त्साण- "परिचामीत्तान वाचन के त्साण ह० १० के भी ह० ६० वं० के अनुसार उपलब्ध है।"

लिख संक्षिप्त में की "वाचनोपनिर्दिष्ट व परिचामीत्तानधेकम्" कर्मात् उग्ररज व परिचामीत्तान भी कहा है।

१- बहिरंगयोग पृ० ६३

२- ह० ६० वं० २३ क

३- ह० १० अ० ६५

४- लिखसंक्षिप्त अ० ११२

वायु के वायु पश्चिमाभिनी (सुषुम्नाभाभिनी) कर केता है और कठरा-
मि को प्रकट कर शरीर की वारीय प्रदान करता है ।

शिव उच्छिष्टा के अनुसार लाभ

“ इसी वायु बीज उच्छिष्टा है और पुनः
का वात करता है और यह उन वायुओं में प्रकट है । इसी उच्छिष्टा शिव की
ही उच्छिष्टा वायु पश्चिम मार्ग से निश्चित उच्छिष्टा होगी । ”

स्वामी विष्णुदेवानन्द के अनुसार लाभ

“ यह उच्छिष्टा के शिव प्रसन्न वायु है यह
उदरस्थ कुष्ठ, कुष्ठ एवं वात शुष्म वादि रोगों को दूर करता है कुष्ठ रोगियों
के शिव कठरावपूर्ण है । वायुओं के बीच की कठ- बांध पैरियां हटाने वाली है
बहुवन्द में लक फटा होने से शरीर में जीवन का रहता है ”

ह० ह० एवं ह० १० बीजों में पश्चिमाभिनी
वायु के लाभ उच्छिष्टा रूप से विधि है- “ यह उन वायुओं में प्रकट है, इसी
वज्जाय से प्राणवायु पश्चिमाभिनी होती है कर्षि प्राणवायु सुषुम्ना से
उच्छिष्टा होने वाली है यह कठराभिनी को प्रकट कर उदरस्थ कुष्ठ एवं वारी-
यका को करता है ”

१- ह० ह० बी० २३ (क)

२- शिव उच्छिष्टा ३११३

३- This is powerful abdominal exercise. It stimulates such
ab- abdominal viscera as the kidneys, liver and pancreas.
This exercise is valuable for diabetic patients. The
hamstring muscles of the back of knees are strengthened.
The spine becomes elastic and thereby perennial youth
is established.

- The complete illustrated book of yoga. p. 116.

ह० ह० प्र० ११२६

ह० ह० १० ३१४४

क० ध० में इसके हाथ का कोई वर्णन नहीं

मिलता है।

वसिष्ठीरत्नाय बाज्र के कई हुए उपर जिस पर
कहीं कहीं बागरी है, धीरे धीरे खरब हट जाती है। क्या समस्त तरीर में लक
का जाती है, और उपर, पाप पर, पीठ की बाहु का बसिष्ठी हाथ होता है।
कठराणि उदीच्य होकर नुत उच्छ्वस्य सर्व समय पर लगे लगी है।

किन्तु, विसृष्टी की कम्पनी दूर होती है।

कर्म , पीठ के कई की लम्पकारी है। पुनः की बीमारी ठीक होती है, प्रसू, मृ-
ष्य के रोगों तथा शिखों के माणिक धर्म की वसिष्ठीरत्नाय की दूर करने के लिए
उपय कोटि का बाज्र है। स्त्री पुनः की लम्पकारी है। स्त्री की कम्पनिया
में न हों। लक कम्प्याउ लगे: लगे: क्कामा बाणिर। लक बाज्र करने के तरीर
में मोड़ा उत्पन्न कर देता है। लगे जिन्ही खुन्नी पाथक के मार्गदर्शन में करना
बाणिर।

उत्पट्टाण

क० ध० में उत्पट्ट बाज्र के लम्पण निम्न
प्रकार के प्राच्य होती है- " भूमि पर दोनों पैरों की रखर बैठ, फिर पैरों
के पैरों पर भार डालकर दक्षिण ऊंची उठाये तथा निम्न नीचे दक्षिणों की तरफ
करके टिका दें। "

वसिष्ठी योग में उत्पट्ट बाज्र के लम्पण

" भूमि पर दोनों पैरों के छारे से बैठ पैर
हाथ के लिए बैठे हैं। फिर पैरों पर भार डालकर दक्षिण उठाकर ल पर दोनों

१- क० ध० में २० ह पैर

निराम्य टिकाकर सामधानी से बैठ पायें।^१ "

घ० घं० में उत्पट वासन लक्षण

" परों के कुंठे धूमि पर टिका कर रक्षियों की वाकाल की बीर करके उन पर गुला प्रीत की रख कर बैठ पायें। यह उत्पट वासन व्यवहारा^२ । "

ह० प्र० में उत्पट वासन का उत्तम उपलब्ध नहीं है।

यह वासन लक्ष रत्नर भी किया था जसा है। परन्तु परम्प के अनुसार रक्षियों पर गुला प्रीत रत्नर बड़ी हुई स्थिति में भी यह वासन सम्यक् है। बड़ी की स्थिति में अधिक कम करना पड़ेगा।

उत्पटासन के लाभ

" ह० घं० व० में लक्ष वासन्यर के लाभ करने से वानि प्रीत्य होने का ज्ञेय दिया है। इसकी प्रक्रिया में भी उत्पटीकरण का निर्दिष्ट किया है- " लक्ष वासन में हाथों की बानुओं पर रत्नर किया जाय तो उत्पट रहेंगे। "

वहिरंग योग में इसके परिणामों की निम्न प्रकार उत्पट किया है- " वस में लक्ष प्रकार बैठकर प्रत्यक्ष की बाहर फेंक दें। गुला में फाटी की नहीं लाकर नीति करें। गुला प्रीत की बीर वातु की वाकाली करने से वस लक्ष मार्ग से वातों में जाने लगता है। व्यापक हो जाने पर

१- वहिरंग योग पृ० १०४

२- घ० घं० अ २७

३- ह० घं० व० २२ स

फिर कंधे के छतरे के बल करने लगता है। नौचि करके फिर बल को गुदा द्वार के निकाल देने के यह "वसि" हो जाती है। बम्हा बम्हाए ही जाने के फिर बिना किसी छतरे के नौचि करने के ही बल गुदा द्वार के बंद जाता है। इसी प्रकार बैठकर बैथर को उपस्थ (सुनिश्चित) में डालकर बल बम्हादि को पताने में लीपा जाता है और यंत्रोपही भी इसी वाक्य में बैठकर की जाती है।

लंटासन

वशिर्ग योग में लंटासन का उद्देश्य -

" बायें लंके होकर दक्षिण पाद की बायें पाद के लंटे कर गरुडासन के समान लंके हो जायें, परन्तु दोनों मुन्हाओं को दाम्ने की वीर फलार कर हाथों को मिलाकर ठामें रहें वीर वाम- फुटने को फुकाकर, जो पर बाधा बैठें। ध्यान रहे, निमन्त्र पेटों के ऊपर रहें। जो पेट बल कर भी करें। "

पै० पै० में लंटासन के लक्षण- " बायें पैर को फुटने तक जमीन पर टिका कर, दायें पैर के बायें पैर को लंटे से वीर दोनों फुटनों पर दोनों हाथ रखें। जो लंटासन कही है। "

लंटासन का उद्देश्य पै० प्र० में उपलब्ध नहीं

है।

लंटासन के लाभ

इसके बम्हाए के मुन्हा तथा पैरों की नव-नाड़ियाँ, स्नायु, नाभ-पेशियाँ पुष्ट तथा वसियाँ पृष्ठ जाती है। बम्हाओं

१- वशिर्ग योग पु० १०४, १०५

२- " " ११३, ११४

३- पै० पै० २१२

वृत्ति का विकार नष्ट होता है।

महाराज

त्रिशिख्रावर्णोपनिषद् में महाराज की परिभाषा निम्नलिखित रूप से उपलब्ध होती है- “ दौनों हाथों को ठीक प्रकार भूमि पर समाकर रखें और दौनों कौहनिषों को नामि के दौनों पार्श्वों में महार के समान स्थापित करें और बीच-बीच में ध्यान करें । जो महाराज करते हैं । ”

वर्ण उपनिषद् में महाराज की परिभाषा निम्न प्रकार से प्राप्ता होती है- “ नामि पार्श्वों में दौनों कौहनिषों को रख कर दौनों हाथों को भूमि पर स्थापित करें, शिरूव पैरों को दण्डवत् जंघा उठावें । वह वर्ण पाप विनाशक महाराज होता है । ”

शाण्डिल्योपनिषद् में महाराज की परिभाषा निम्नलिखित रूप में प्राप्ता होती है- “ शाण्डिल्य उपनिषद् में महाराज की परिभाषा वर्ण उपनिषद् के समान उपलब्ध है । ”

वहिरंग योग में महाराज की तीन विधियों का उल्लेख किया गया है-

(१) दौनों हाथों के फेंकों को भूमि पर दृढ़ता से टेक दें । कौहनिषों को मिलाकर, उन पर फेट (नामि) को टेक कर,

१- त्रिशिख्रावर्णोपनिषद् - मन्त्र भाग ४७

२- वर्ण उपनिषद् ३।१०, ११

३- शाण्डिल्य उपनिषद् १।१०, ११

बुझ कर, पैरों की पीछे की ओर तिर की जाने बंधकर शरीर को झुकाया कर
 है, शरीर समान दण्ड के समान सीधा है। उसके पश्चात् दुम्बक रसी हुर सब
 स्थिति में फासलित स्थिर हैं। कभी सामर्थ्य के अनुसार स्त्री स्थिति में रहने
 का बन्धन बंधे है। "

(२) प्रयास है बैठकर, घुटनों को पीछे
 करके, दोनों हाथों के पैरों को जाने भूमि पर सब प्रकार स्थापित करें कि कु-
 छियां झुककर जाने की ओर की जायें। सम्भवतः दोनों कीलियों के ऊपर
 नामि प्रीत की टिककर हाथों के बल पर सम्पूर्ण शरीर को पूर्णतः सूरामन
 के समान ऊपर झुकाया कर है। "

(३) " घुटनों के बल बैठकर हाथों की
 मुद्रिकायें बंधकर, सामने भूमि पर झुकाया है टिकाते। उन्हीं पश्चात् दोनों
 कीलियों पर नामि रहकर मुद्रिकायें पर समस्त शरीर को सूरामन के समान
 सीधे है। "

उ० उ० पै० में भी सूरामन की प्रक्रिया
 सम्पूर्ण उचिततः उपनिषदों के समान ही उपलब्ध है।

सब स्थितियों में सूरामन की कई विधियाँ
 का उचित किया है-

१- सूरामन की फली विधि

दोनों हाथों की उलियाँ धरती पर टिका

१- पहिली गीम पु० १०६, ११०

२- " " पु० ११०

३- " " पु० १११

४- उ० उ० पै० २० उ पै०

कर दोनों कुम्हियों को नामि के दोनों पार्श्वों में लायें। दोनों पैरों को दण्ड-
वत् उज्वाल करते हुए फैलायें। यह मयूराक्ष कहलाता है।

मयूराक्ष की दूसरी विधि

“मयूराक्ष को दण्ड के समान करते है “दण्ड-
मयूराक्ष “ एवं मयूराक्ष को एक पार्श्व से करते है उसे “पार्श्वमयूराक्ष “ एवं
मयूराक्ष को फुमाक्ष लाकर करते है उसे “कलिकी “ नाम दिया है।

मयूराक्ष की तीसरी विधि

“मयूराक्ष में एक पैर मयूर के समान तथा
एक पैर ऊँचे है” पिण्डमयूराक्ष “ कही है, जो अथवा दोनों का वर्ण करता
है।

मयूराक्ष की चौथी विधि

“एक पैर कण्ठ तक लायें तो यह “एक पाद “
मयूराक्ष होता है।”

६० प्र० के कुम्हार मयूराक्ष

“दोनों हाथों से धूमि का छलारा लेकर दोनों
कोकनियों को नामि के दोनों ओर स्थापित करें तथा दण्ड के समान ऊँचा उठे।
उसे मयूराक्ष कही है।”

६० ६० के कुम्हार मयूराक्ष - “ ६० ६०

१- ६० २० ३।४१,४३,४४ से ४६ तक

२- ६० ३० १।२०

में मयूरासन की प्रक्रिया उ० प्र० के समान ही उपलब्ध होती है।^१ "

योग मीमांसा - जनवरी व मार्च १९७० में मयूरासन के विषय में निम्नलिखित टिप्पणी दी हुई है- " एष वासन के विषय में (टी०७८० एम०) विशिष्टिज्ञातणीपनिष्पद् मन्त्रमात्र में ' समुन्ता शिरः पादप ' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। योग मीमांसा भाग १२ में उरीर की पित्तिक के समान्तर रखे का स्पष्ट निर्देश है। बीनिवास उ० १० में इसे ' सुष्ठमयूरासन ' कही है तथा मयूरासन की अन्य विधि भी उल्लेख की है।^२ "

उ० १० के वाक्य टिप्पणियों में मयूरासन के विषय में निम्न उल्लेख है- " बीनिवास ने मयूरासन की विभिन्न विधियों को प्रस्तुत किया है। किन्तु यह सभी विधियाँ वाचना की उच्चावस्था की है। हालांकि वाक्य उ० प्र० व धे० संज्ञिता की वाक्य परम्परा का प्रचलन है। उ० प्र० व धे० सं० में इन विधियों का उल्लेख नहीं मिलता है। यह वैय बीनिवास मूट की ही है।^३ "

मयूरासन की संधारण प्रक्रिया की उप-

१- धे० सं० सं० २६

२- The words Samanta Sirah Padam used in TSM 48 give a clear idea of this Asana. They bring out clearly that the body is held horizontal position (YM 12) Sri Niwas in Math Ratnavali calls this Asana DAND MAYURASANA and mentions some other varieties of Mayurasana also .

— Yoga Mimansa p. 15

3- Different varieties of Mayurasana are stated by Sri Niwas here. All these are advanced stages. Even to day there are practised through traditional sources like H.P. or G.S. do not mention. This credit goes to Srinivas.

निम्नलिखित एवं च० प्र० व च० ए० में उपलब्ध होती है शरीर की सामान्यता रही है कि यहाँ पर है। नीम्नलिखित में "मन्त्रपुराण" जिसका नाम दिया है वह विधि अन्य सत्यान प्रयोग में उपलब्ध है तथा वह विधि है ही अन्यथा नाम के नीचे पाठ्य में वर्तमान नहीं पर सम्पूर्ण रूप से किया जाय ही अन्य विधियों की स्वाभ्युत्थान के लिए आवश्यकता न होगी। बाकी का मुख्य प्रतिपाद निम्न शरीर की स्वस्थ रहता है ही वह विधि है ही पूरा ही जाता है। यदि यहाँ की प्रुति के सम्बन्ध नहीं रहा जायता ही वह बाकी है अनिष्ट साम नहीं मिलता। का: कि, पीठ एवं पैर से (ही प्रुति है सम्बन्ध रहता बाकिर। च० प्र० व च० ए० में पुराण की प्रक्रिया का वह ही विधान किया गया है।

पुराण के साम

वर्तमान यौग में पुराण साम- " पाप शक्ति, कुर्त की कार्य शक्ति बढ़ती है। शरीर में एक संसार नहीं है एक वृद्धि के द्वारा शरीर में एक, शक्ति, सामान्यता का जाती है। वह यौग का नाम रहने है मुख्य यौग्य होती है। "

यौग्यता में पुराण करने में सामान्यता का उल्लेख प्राप्त होता है- " पुराण के सम्बन्धों की एक सामान्यता रहता बाकिर कि वह बाकी का सम्बन्ध करने के साथ धिरे के वह किने जाने पाते। बाकी का सम्बन्ध नहीं करना बाकिर। साथ ही साथ त्याग रहता बाकिर कि उच्च एक साथ, शक्ति या पैर के साथ बाकिर शक्ति रहता सम्बन्ध न करें। यदि शरीर के विभिन्न सत्त्वों की दूर करने के लिए पुराण का सम्बन्ध करना है ही एक साथ दूध, कर्मात्मक कार्य, मातापिता तथा पैर है यही बाकिर

मरार्थों का ध्यान न किया जाय । मरार्थों का उपयोग क्याचित्त बन्ध कर देना चाहिये । ”

ह० ए० च० में मयूराक्ष के लाभ- “ एष दोष है उत्पन्न ज्वर का नाश होती है, उपर में गुल्मादि फटा नहीं होती है । बहुत राशि हुए वन्ध को पत्नी के लिए ऐश है, हीम्र ही पलाता है। विष को नष्ट करता है तथा कठरान्ति प्रतीच करता है। ”

ह० १० , ह० २० एवं ह० ३० में उपलब्ध मयूराक्ष के लाभ एक छान है जो निम्न प्रकार है- “ मयूराक्ष गुल्म एवं उदरस्थ समस्त रोगों को नष्ट करता है, समस्त दोषों को दूर करता है । कठरीति तत्त्वों का समाप्त कर कठरान्ति को प्रतीच करता है। ”

मयूराक्ष के वन्द्यात है शरीर में रक्त-ज्वार प्रिया बढ़ती है बिछी शरीर सुदृढ़ होती है तथा पैरों की कुट्टियाँ दूर होती हैं । नाभि के दोनों पाश्वर्क में कौटुकिता लगाने से पाप्मन उचित एवं सुख पर उल्लास प्राप्त करता है बिछी लकी कार्य उचित बढ़ती है। पैरों पर कान्ति एवं लावण्यात करी रहती है।

उपर की पाप्म प्रणाली मज्जा होती है, तिस्ती एवं मज्जा की कमबोरी दूर होती है। उपरगत वात का निवृत्त ठीक

१- पीक्याणी छठपौन विनिर्णय क० १६८१ पृ० २१

२- ह० ए० च० २० ह० ३०

३- ह० २० ३४२

४- ह० २० १११

५- ह० ३० २१०

प्रकार रक्ता है। हुता प्रीत के रोगों को भी लाभकारी है। मस्तिष्क के रोगों को भी दूर कर नींद लाने में ज्यादा फल है। भ्रूण विच्छेदन के पीछे नष्ट होती है। स्त्रियों के प्रसव, मासिक धर्म के विकारों को बहुत नष्ट करता है।

वम्यास में सावधानी

पेट के अन्दर कौड़ा या घास हो तो उसका वम्यास नहीं करना चाहिए। रक्त पाप के मरीजों को उसका वम्यास किसी भी पक्ष में नहीं करना चाहिए। फूरिखी खं पाप के रोगियों को भी उसका वम्यास हानिकारक होगा। अपान्नाद्य के सभी रोगों में लिखर है।

कुम्कुटाज

विश्विस्त्रावणीपनिषद् में कुम्कुटाज -

“ पद्माज लाकर बंधावों के बीच से दोनों हाथों को प्रीत कर तथा भूमि पर टिकाकर शरीर को ऊपर उठाये। जो कुम्कुटाज कहे है। ”

उ० ६०^२ ५०^३ खं वरिहं योग भी कुम्कुटाज के लक्षण पूर्ण प्रकार से है।

उ० ५० में कुम्कुटाज- “ पद्माज लाकर बंधावों के मध्य भाग में दोनों हाथों को प्रीत कर भूमि में टिकाये (शरीर को समीप से) ऊपर रखे है कुम्कुटाज होता है। ”

१- विश्विस्त्रावणीपनिषद्- पञ्च भाग ४९

२- उ० ६० ५० २० क

३- वरिहं योग पृ० ६६

४- उ० ५० ९१ २३

पै० सं० के अनुसार कुम्हटाऊन- " कुम्हाऊन
ऊपर बंधावों के मध्य से दोनों हाथों को प्रोत करके कुहनियों पर ऊपर टिकें ।
यह कुम्हटाऊन है । "

ह० प्र० की विन्यास पृ० सं० में " कुपरा-
म्भा उमादीनी " रूप के प्रयोग से वासन का प्रयोगात्मक रूप वासन ही जाता
है । ऐसा दोनों की प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं है।

कुम्हटाऊन के लाभ

इसके अभ्यास से मुवावों तथा बन्धनस्थ सुखदा
जाती है।

कुम्हाऊन

ह० सं० पं० में कुम्हाऊन की परिभाषा- "
दोनों पैरों की उड़ियों को पीछे करके पाद (कुहा प्रोत) को बंधावों, बानुवों
को भूमि पर टिकाने से दोनों में बैठों ने इसे कुम्हाऊन कहा है। यह कुम्हाऊन
वस्त्रों प्रकार के बन्धनों का उरण करता है । "

वशिष्ट योग में कुम्हाऊन परिभाषा- "
दोनों हाथों के छुटनों को पीछे करके पैरों को पीछे करके उस प्रकार बैठें कि टखनी
भूमि पर टिक जायें और निःशब्दों के समीप खड़ी हो जाय । फिर बाएँ को
कुम्कर दोनों कोहनियों को दोनों बानुवों के समीप भूमि पर स्थापित कर दें ।
दृष्टि नासाग्र पर हो और स्वास की गति शुद्ध कर दें । "

ह० प्र० में कुम्हाऊन की परिभाषा - " विप-

१- पै० सं० २। ३९

२- ह० सं० पं० २० ह० पं०

३- वशिष्ट योग पृ० ६६

उत्तान कूर्मासन

त्रिशिरासकण्डोपनिषद् में उत्तान कूर्मासन के लक्षण एवं प्रकार प्राच्य होते हैं-

“ कृच्छुटासन का बन्ध लाकर, ग्रीवा को दोनों मुखाब्जों से बांधें और कटुका की तरह लेट जाय। यह उत्तान कूर्मासन है। ”

बहिरंग योग में उत्तान कूर्मासन लक्षण-

“ फुमासन लाकर बैठें। जब दोनों हाथों की बाँधों कीर फिन्डलियों के मध्य में से कोहनियों तक बाहर निकाल कर फुफी ग्रीवा पर दोनों हाथों की लाकर कंधियों को छूकर, निशानों पर बैठ जायें। दोनों हाथों से ग्रीवा को फाड़ कर बैठें। ”

हठ हठो पं० में उत्तान कूर्मासन लक्षण- ”

कृच्छुटासन को लाकर दोनों हाथों से गर्दन के पिछले भाग की छुट्ट हठ से फाड़ कर बमीन पर लेट जायें, गर्दन को ऊँचा करके बल की तरह हाथों से बांधें हैं। जो बन्धि प्रतीत करे बाँझ उत्तान कूर्मासन कर्त्तव्य है। ”

योगशास्त्री ‘सहयोग विनिर्वाक’ में उत्तान

कूर्मासन की बन्ध विधि- “ बमीन पर लेट कर फुमासन लाकर बाँझ बनी दाहिनी हाथ से बाँधें पैर के कूँठों की बाँधें हाथ से दाहिनी पैर के कूँठों की बाँधी तरह फाँड़ें, दोनों हाथों की कोहनियों की बमीन पर लायें, फिर पीछा उल्टाकर पीछे मोड़ कर मस्तक बमीन पर स्थित कर दें। फेट व बल की धीरे धीरे

१- त्रिशिरासकण्डोपनिषद् बन्ध भाग ४२

२- बहिरंग योग पृ० १३६

३- हठ हठो पं० २१ पं० ५०

उठाये, पैरों को झुंटे की लक्य बनाय वे ऊपर लीये।^१”

ह० प्र० में उत्तान क्रमांश का लक्षण-^२”

हृन्मूलांश का बन्ध लाकर, श्रोत्रा को दोनों भुजाओं से बांध दें, वीर कहुवा के समान बैठ जाय। यह उत्तान क्रमांश है।^३”

पे० सं० में उत्तान क्रमांश के लक्षण ह० प्र० के समान ही उपलब्ध होती है।^३

ह० १० में भी ह० प्र० के समान ही लक्षण प्रसृत है।^४

ह० प्र० वीर पे० सं० दोनों ग्रन्थों में उत्तान क्रमांश की परिभाषा ब्रह्मपट्ट है। बहिरंग योग में उल्लिखित उत्तान क्रमांश की प्रक्रिया समीचीन प्रतीत होती है।

उत्तान क्रमांश के लाभ

बहिरंग योग में उत्तान क्रमांश के लाभ -

“उक्त बन्ध्याय वे शरीर लकीरा, कुडीर, बलिष्ठ, पुष्ट वीर हुन्दर बनता है। चन्द्रियों के लकीरा तथा पुष्ट होने से पठिया तथा चन्द्रियों में पीड़ा नहीं होती है। किञ्च- वायु, पित्त, कफ कम रहते हैं। देह, चन्द्रियाँ, प्राण, मन पर बहिष्कार करने लगता है। वायु तथा कफ प्रधान प्रकृति वाले व्यक्तियों को तब यह वाक्य विचिन्तः उपकीनी है।^५”

१- योगवाणी- सत्यान विवेचनक, जनवरी १९८१ पृ० १५

२- ह० प्र० १। २३

३- पे० सं० २। ३३

४- ह० १० ३। ७३

५- बहिरंग योग पृ० १६

“ योगवाणी ” छठ्ठीय विविधादि में

उत्पन्न कृमिज के लक्षण-

“ एष वायु के व्यापक के शरीर में लो-
लाप्य वायु है तथा लो नव नाडियों में स्फूर्ति और तावती जाती है । पेट
के कोक निकार ठीक होते हैं, पुत्र्य की कपडोरी भिन्न जाती है। शरीर स्वस्थ
रहता है ”

उत्पन्न कृमिज वायु पर प्रीति एवं पीठ में
लक्ष्य भिन्न करने तथा पित्त के निष्कासन के लिए उत्पन्न वायु है। लक्ष्य उपरगत
दृष्टिगत अपानवायु का निष्कासन होता है तथा क्लान्ति के रोग की निवृत्ति
होती है। शिखों के नाडिक धर्म उन्मत्तों विकारों को दूर करने में काम है । अतः,
मन्यार में लाभकारी है। लक्ष्य तथा मेहवज्ज के बाद की बाहर निकाल फेंकता
है। एक को भी शरीर के धीरे धीरे व्यापक कर देता है।

एष वायु का व्यापक लो पुरुष दोनों
ही कर लो है किन्तु व्यापक का समय धीरे धीरे ही बढ़ाना लाभकारी होगा,
बिनाही रीढ़ की छड़ी विवृत है पर किसी कुम्भी वायु की पेशीत में व्यापक
करे ।

पञ्चकाल

वर्तमान योग में पञ्चकाल परिभाषा-

“ प्राण दोनों छुटनों को मोड़ कर, पैरों को पीछे की ओर से बाहर रक्षियों पर
पेट बाईं ओर छुटने फैला है । एष प्रकार बैठे कि निम्वों के रक्षियों का भाग
विप बाये । लोके कन्धार दोनों लोखियों को दोनों छुटनों पर स्थापित करके
प्रीति, वास्तव्य और लक्ष्य प्राप्त रहें । वायव्यारिक शुष्क करने से विविध

साम होता है।^१

च० १० में मण्डूकात्म- " दौनों पैरों की पीछे की ओर से बाहर बंजावों से मिलाने की ओर हाथों की पैरों पर हैं। जो मण्डूकात्म होती है। यह पैरों के ऊपर दौनों की होता है।^२

च० ६० में मण्डूकात्म- " दौनों पैरों की पीछे की ओर से बाहर बाँटे मिलाने दौनों छुटनों की बाँगे हैं। इस प्रकार मण्डूकात्म होता है।

च० ३० में मण्डूकात्म का उत्तम उपपत्त्य नहीं है।

मण्डूकात्म के साम

वशिष्ट योग में मण्डूकात्म के साम निम्न प्रकार मिली है- " इस वाक्य के अन्वय से अथवा वायु की गति नीचे की ओर मल- मूत्र का त्याग सुगमता से होता है। प्राण को उत्थान करके पुष्पुष्पा में प्रवेश होने लगता है और शरीर की भारी-गम्य करता है। "

उत्थान मण्डूकात्म

वशिष्ट योग में उत्थान मण्डूकात्म के उत्थान निम्न प्रकार से मिली है-

" दौनों छुटनों की पीछे की ओर पीछे की ओर हैं। इस दौनों छुटनों की अन्वय के कारण कि पैरों के बाँटे परस्पर मिल जायें। इस दौनों सुजावों की धिरे पर से बाहर से बाँगे कि वशिष्टात्म हस्त

१- वशिष्ट योग पृ० ८०, ८१

२- च० १० अ ४४

३- च० ६० अ ३४

४- वशिष्ट योग पृ० ८१

ये बाईं कौली की ओर वाम उत्त है दाहिनी कौली फली या ले । पूरक करें की ओर
हुम्क रत्कर, शशी चानकर पृष्ठि चामे की ओर रते । ”

पे० ६० के अनुसार उत्तानमण्डूकासन त्वाण-

“ दोनों पैरों की पुच्छभाग की ओर लेवाकर पैरों के कूँठ पासुवों की चपों करें ।
दोनों घुटने चामे रते की ओर शिर के ऊपर दोनों चपों की रते । ”

उत्तान मण्डूकासन के लाभ

बहिरंग योग में उत्तान मण्डूकासन है लाभ-

“ जो पावन में स्थित होकर हुम्क चामे में कुच्छुकों की शक्ति बढ़ी है,
स्वतः विशेष रूप से कुछ होता है, प्राण पर बल होता है । ”

पुच्छासन

बहिरंग योग में पुच्छासन की परिभाषा

निम्न प्रकार प्राच्य होती है-

“ कोमल कमल गदा वादि विधि स्थान
पर उपरु बैठे, कम दोनों हथेलियों के मध्य में हृदय फुट का स्थान होकर,
हथेलियों को चामे भूमि पर टिकाकर, शिर की कोमल वस्त्र पर रत्कर चपों
पैरों की ऊपर वाकाल की ओर से चानकर, समस्त देह की दण्ड के समान चान
कर दोनों हथेलियों तथा शिर पर उन्मुक्ति करके ले रते । ”

पे० ६० में पुच्छासन की परिभाषा-

१- बहिरंग योग पृ० २१४

२- पे० ६० अ ३५

३- बहिरंग योग पृ० २१५

४- .. पृ० २३२

कभी कभी की कड़ में बायाँ पैर रखें और घुसा के अपना घुमि पर लड़ी की जाय । जो घुसाऊन कभी है । ”

च० प्र० में घुसाऊन का और वहीन उपलब्ध नहीं होता है

च० ए० और बहिरंग योग की प्रक्रिया वास्तव में निरूपित है, क्योंकि बहिरंग योग में घुसाऊन की छिद्र के बस लड़ी की छिद्र पर बाकात की और कहे करना बताया है, जबकि च० ए० में एक पैर के छिद्र लड़ी की छिद्र छिद्र बाकात की और कहे प्रक्रिया का उल्लेख किया है। जो कन्धास है लाभ की विन्म विन्म होने ।

घुसाऊन के लाभ

बहिरंग योग में घुसाऊन के लाभ- ” छिद्र डीवा, कपाःस्पष्ट, कुपय , नेनी के छिद्र बसि लाभदायक है छिद्र की और रक्त छिद्र विरिण्ड रूप से होने के कारण इन दोनों की विरिण्ड मुष्टि मिलती है । कहीं की छोड़ रक्त नहीं होने जाता , कन्धासि की दूर करता है और प्रत्यक्ष बाकात में उदायता जाता है²⁾ उदायक लाभ बहिरंग योग की प्रक्रिया के अनुसार कन्धास करने पर मिले ।

च० ए० की प्रक्रिया के अनुसार घुसाऊन कन्धास के लाभ- ” जो बाकात की दोनों पैरों के परिवर्तन है करना चाहिए । लड़ी कन्धास है पैरों के बाकात रोग नष्ट होती है मुख्यतः प्रयोग में यह विरिण्ड विरिण्ड है लीन प्रीति डीक होती है

१- च० ए० अ २६

२- बहिरंग योग प्र० १४२

गरुडासन

बहिरंग योग के अनुसार गरुडासन की परिभाषा- " सीधे लीं होकर, बायें पाद की सीधा रखी हूड, दक्षिण पैर लेंच है। इसके पश्चात् दोनों घुमावों की परस्पर लेंच कर दोनों हाथों की कुंठियों की परस्पर मिलानें कक्षा बांधें। एक पैर पर लीं रखकर मणि बन्धों (कलाहों) को नासाग्र पर रखकर गरुड की चूँ के समान वाह्यार बना कर व्यासना लीं हैं। यही गरुडासन होता है। "

पै० सं० के अनुसार गरुडासन की परिभाषा- " दोनों बंधावों की हूडनों से घुमि को बंधावों की हरीर को स्थिर रखें तथा दोनों हूडनों पर दोनों हाथ रखकर बैठ जायें। यह गरुडासन कलाता है। "

पै० प्र० में गरुडासन का उत्तम उपलब्ध नहीं है। बहिरंग योग में गरुडासन की प्रक्रिया लीं होकर करने की है। पै० सं० में गरुडासन का व्यास बैठकर किया जाता है। पै० सं० की प्रक्रिया उपलब्ध प्रतीय नहीं होती है।

गरुडासन के लाभ

बहिरंग योग के अनुसार- " इसके व्यास से मुखा तथा पैरों की नस नादियाँ, स्नायु, पाच- पेशियाँ पुष्ट तथा बलिष्यां पुष्ट होती हैं। अल्पकाल वृद्धि का विकार नष्ट होता है। "

पै० सं० प्रक्रिया के अनुसार- यह वाहन के

१- बहिरंग योग पृ० ११३

२- पै० सं० २। ३७

३- बहिरंग योग पृ० ११३

बन्ध्यास के हाथ पैरों की पाँच पैलियाँ घूट्ट होती हैं, मेरुबन्ध सीधा रहता है। प्राणोत्थान होता है। जो भगन्दर तथा हाथ पैरों के बाह्य रोग दूर करने में कारक है।

वृन्धासन

पे० ६० के अनुसार वृन्धासन की परिभाषा-
 “ बायीं छड़ी पर हुता को ठिकनी कीर उसकी बायीं कीर दूसरी पैर को मुलाकर रखें तथा घुंभी का स्पर्श करें । यह वृन्धासन कहलाता है । ”

वृन्धासन का उचित ६० प्र० में उपलब्ध नहीं है।

वृन्धासन के लाभ

यह आसन है हुता प्रोक्त के रोग हनन होती है तथा वृन्धित अपानवास का निष्क्रमण होकर वानि प्रदीप्त होती है। इसका बन्ध्यास स्त्री पुरुष सभी उमान रूप से कर सकते हैं।

उत्थासन

वशिरोन योग के अनुसार उत्थासन कहाँ-
 “ उपर के बल छेत्कर, दोनों हाथों को अपनी दोनों पाखों के पास रखें । दोनों छेत्तियों ऊपर की कीर रखें । ज्वाह बन्दर बहकर नाभि से निचले पाग टांगों को परस्पर मिलाकर ऊपर उठाएँ। इसके पश्चात् ठोड़ी कीर ग्रीवा को कुछ ऊपर उठाकर कण्ठ को छान दें । इसी स्थिति में कुछ देर रहकर पूर्व स्थिति में आजाएँ । ”

१- पे० ६० २।३८

२- वशिरोन योग पृ० १८२, १८३

स्वामी बीरमानन्द के अनुसार सत्माज
 लक्षण- " सत्मा टिठ्ठी की वसी है। पेट के बल लेकर दोनों हाथों की
 केशिकाओं को फुट्टी बाँधकर कमर के पास लाये, उत्पत्त्या धीरे धीरे धूल
 करते हाथी तथा धिर की वसीन में लाये हुए हाथों के बल एक पैर को क्या-
 शक्ति एक पैर हाथ की ऊँचाई पर ले जाकर ठहराये रहे, जब स्यास निकला
 चाहे तब धीरे धीरे पैर को वसीन पर रखकर जैः जैः रेक करे। वही प्रकार
 दूसरे पैर को उठाये, फिर दोनों पैरों को उठाये। "

पै० ६० के अनुसार सत्माज लक्षण- " वही-
 मुल करते छे बायें, दोनों हाथों को वलाःस्थ के नीचे रहें वीर केशिकाओं को
 भुमि पर टिकानें वीर दोनों पैरों को एक पितृति (एक फीट) ऊँचा रहे।
 कुनिन्द्रों ने वही सत्माज कहा है। "

उपस्थित उल्लेख की गई दोनों प्रक्रियाओं में
 निम्न प्रकार के अन्तर है -

" वशिष्ठ योग " में दोनों हाथों की
 केशिकाओं की तरफ से ऊपर की वीर रत्ना पताया है। "

स्वामी बीरमानन्द के अनुसार हाथों की
 फुट्टी बाँधकर कमर के पास लाये का निर्देश है।

पै० ६० में हाथों की वलाःस्थ के नीचे भुमि
 पर टिकाने का निर्देश है- " कर पुष्पला वातम्य भुमि कश्योत्तलाभ्याम् । "

१- योगदर्शन- भाष्यकार स्वामी बीरमानन्द पृ० ४४३

२- पै० ६० स ३६

३- वशिष्ठ योग पृ० १८२

४- योगदर्शन- भाष्यकार श्री बीरमानन्द पृ० ४४३

५- पै० ६० स ३६

उ० प्र० में उल्मासन का उल्लेख नहीं मिलता है। उल्मासन साधारण प्रकार का वासन होने के परिणामस्वरूप इसका उल्लेख उल्लेख्य ग्रन्थों में कम कम ही मिलता है।

उल्मासन से लाभ

वशिष्ट योग में उल्मासन कह- " इसी व्यास से टांगों की नास पैरियाँ और ग्रन्थियाँ छुड़ जाती हैं, तथा वात, पित्त, शफ जन्म विकारों और मूत्रिण का निवारण करने में उल्मासन मिलती है। "

स्वामी बीजमानन्द के अनुसार- " जंघा, पैर, बाहु जदि मागों की लाभ पहुँचा है। पैर की नास मज्जु होती है, तथा उपर विकार दूर होती है। "

उल्मासन लाभ पैरों की वातु निकालने के लिए उत्तम वासन है। इसी व्यास में जंघाओं की नास पैरियों पर यथाव लिख पड़ता है पिछले कारण मज्जु होती है। इसका व्यास किता कुम्भ के नहीं हो सक्ता इसलिए कमजोर प्रत्य वातों को कुम्भी वात की दूर रेत में हो करना चाहिये। मूत्रिण, प्रसि, और प्रदर के रोगों में लाभकारी है। जो स्त्री पुरुष दोनों ही कर सके है। स्त्री गर्भवस्था में भी न करें।

फर्रासन

वशिष्ट योग में फर्रासन उल्लेख- " पैर के बल पैर फैलाकर बैठें। जो दोनों हाथों की हाथों के दाहिं बाहिं रखर पुरु प्राणायाम करे, कोरगियों को तड़ा करे जेदियों पर हाथों का, और पैर

१- वशिष्ट योग पु० १८३

२- यो० व० वाष्कार स्वामी बीजमानन्द पु० ४४३

कटि छुटनी की भूमि से उठाकर पैरों के पैरों पर समस्त शरीर का भार डालकर खींच दें। जब जिसकी भी पंक्ति पैरों की श्रम से बाग पीछे रखी हुई कक्षा बसत उबल कर पुनः फिर। ध्यान रहे कि शायद और पैरों के पैरों पर समस्त शरीर एक वही के समान रहे और भूमि पर दोनों उपरिष्ठा और पैरों के भी मात्र टिकें।^१...

पै० ६० में करारज - "कभीपुत्री शीकर
है बाप, पापों की फैलाकर पलाःस्पष्ट है भूमि की स्पर्श करें, और दोनों
छायाँ की छिर पर रहें। यह शरीरस्थ बलि की वीर्य करी बाबा करारज
है।^२...

कहाँ करारज प्रक्रिया में ब्रह्म प्राणात्माप
कहे पलाःस्पष्ट, पेट कटि छुटनी की भूमि से उठाना तथा समस्त शरीर का भार
शायद के पैरों पर डालने का निर्दिष्ट है। बाहिरंग योग में उल्लिखित करारज की
कठिन प्रक्रिया है। पै० ६० में यह बावन की विधि सरल रूप में वर्णित है।

पै० ६० में उल्लिखित नहीं है।

करारज के लाभ

बाहिरंग योग में करारज के लाभ - "जहाँ
छुटने शरीर का कहीं व्यायाम की जाता है, स्वेद तीव्र का जाता है, फायदा
भी हो जाती है। रक्त संचार तीव्र होने के कारण रक्त छुटने और सुखायी,
पैरों, टांगों की सुष्टि विशेष रूप से होती है।^३...

उपरोक्त उक्त उपलब्धि 'बाहिरंग योग' के
बहुधात बन्वाय करने से होती है।

१- बाहिरंग योग पृ० १४४, १२५

२- पै० ६० सं० २४०

३- बाहिरंग योग पृ० १२५

घरुण्ड ने जो "पैरानिकार" - शरीर में गर्मी उत्पन्न होना बताया है।^१ " इसके बन्ध्यास से एक संसार एक साथ खींचा और फाँसा भी बाँटा तथा एक शुद्ध हो गई होगी। शरीर के अन्दर रहे हुए विचलित तत्त्वों का निष्कासन हो गया होगा तथा अंतराग्नि दीप्त होगी।

एक वाक्य का बन्ध्यास सभी पुरुषों दोनों ही कर लें। गर्मिणी स्त्रियों को इसका बन्ध्यास पड़ता है।

उच्छ्वास

वहिरंग योग के अनुसार उच्छ्वास-^२ दोनों टाँगों के छुटनों को मोड़कर उन पर खड़े हों, पीठ की ओर मोड़ कर फैला दें। जब पीछे की ओर कुचकर दोनों हाथों को पीछे से बाहर दोनों पैरों की रड़ियाँ फड़ से बाहर मुँह की बाकास की ओर करके ठहर जाएं। तत्पश्चात् बाँगे कुचकर पीठ मोड़ कर मुँह से धूमि का स्पर्श करके पूर्व स्थिति में आ जायें। पुरुष करके कुचकर रखी हुए भी एक वाक्य का बन्ध्यास किया जा सकता है।^३

स्वामी बीरब्रह्मचन्द्र के अनुसार उच्छ्वास-
" पञ्चाङ्ग के समान हाथों से रड़ियों को फड़ कर बैठें। इसके पश्चात् हाथों से पाँवों को फड़ें हुए कुचकों को उठावें, फिर पीछे पीठ की ओर कुचकों की ओर फट भरकर बाँगे की ओर निकालें।"

पै० टी० के अनुसार उच्छ्वास-^४ " कभीमुक्त हों और पैरों को उलट कर पीठ पर रखें फिर दोनों हाथों से उन पैरों को

१- पै० टी० २१४०

२- वहिरंग योग पृ० १००

३- बी० द० नाथ्यकार स्वामी बीरब्रह्मचन्द्र पृ० ४४४

८
 धारण में इसे "वैराग्यिकार" - शरीर में
 नहीं उत्पन्न होना चाहिये है । " इसके सम्बन्ध में एक संसार एक वाक्य बोधना
 कीर कीर्तना की वाचिना तथा एक बुद्धि सीमा कीर्तना । शरीर के सम्बन्ध में एक
 विचारों का निष्कासन सीमा कीर्तना तथा चरित्राणि बोधना कीर्तना ।

एक वाक्य का सम्बन्ध स्त्री पुरुष कीर्तना
 की कर ली है । कर्तव्यी स्थिति की एक सम्बन्ध वर्णित है ।

उद्घाटन

वैराग्य कीर्तना के अनुसार उद्घाटन- " कीर्तना
 टांगों के छुटने की पीड़कर उन पर ली है, पीठ की कीर पीड़ कर फैला है ।
 एक पीड़ की कीर मुककर कीर्तना की पीड़ है बाकर कीर्तना पैरों की लड़ियां
 फड़ है कीर मुक की वाक्यकी कीर करे ठहर बाहर । उपरम्भात् वाक्य मुककर
 पीठ पीड़ कर मुक है मुनि का स्पर्श करे पुन स्थिति में वा बाधें । प्रत्ये करे
 मुक एक हुर की एक वाक्य का सम्बन्ध किया जा लता है । "

स्वामी कीर्तमानन्द के अनुसार उद्घाटन-
 " वाक्य के लान हाथों से लड़ियों की फड़ कर बैठ । एक फण्यात् हाथों
 से पांशों की फड़ हुर मुक की उठाये, फिर पीड़ पीठ की कीर मुक की कीर
 फट परक वाक्य की कीर निराले । "

पे० सं० के अनुसार उद्घाटन- " कीर्तना
 की कीर पैरों की उत्त कर पीठ पर लता फिर कीर्तना हाथों से उन पैरों की

१- पे० सं० सं० ४०

२- वैराग्य कीर्तना पु० १००

३- पे० सं० वाक्यकार स्वामी कीर्तमानन्द पु० ४४४

कमर की हड्डी और पैरों की मजबूती से कभी भी उच्छ्वास नहीं होता।"

४० प्र० में उच्छ्वास का उल्लेख नहीं है।

बहिर्ग योग व स्वामी जीउमानन्द का उच्छ्वास पैरों की हड्डी तक कभीन पर फैलाकर बैठने की प्रक्रिया है। धरुण वृद्धि में उच्छ्वास कमरे पर बैठ के बस बैठकर करने का निर्देश है।

बहिर्ग योग में उल्लिखित उच्छ्वास प्रक्रिया ४० सं० की अनिवार्यता अधिक स्पष्ट तथा लाभकारी है।

उच्छ्वास के लाभ

बहिर्ग योग के अनुसार- "हृत् प्रीति पद, कटि और उदर की सख्ता नष्ट होकर बुद्धता तथा लचीलापन आ जाता है। शिरीषनासक है। पाकन शक्ति की वृद्धि होकर उदर विकार नहीं होती और पेशियों की वृद्धि आता है।"

स्वामी जीउमानन्द के अनुसार- "यकृत, प्लोहा, वायुमार्ग, वादि पेट के सब रोग दूर होती हैं और कण्ठ नोरीय होता है।"

धरुण वृद्धि में उच्छ्वास के लाभों का कोई उल्लेख नहीं है।

यह उदर के समस्त विकारों को नष्ट कर पाकन शक्ति को बलवत् बनाता है। वायुमार्ग के रोग नष्ट होती हैं। हाथ पैरों की बलि-पेशियों वृद्धि करती हैं। सब वाकन का व्यापार स्वी पुरुष दोनों ही

१- ४० सं० २४९

२- बहिर्ग योग पृ० १०७

३- योगदर्शन- भाष्यकार स्वामी जीउमानन्द पृ० ४४४

कर लगी हैं। गर्मजोती स्थितियों का इसका अभ्यास नैयस्कर नहीं होगा बल्कि हानि ही लगी है।

भुजंगासन

बहिरंग योग के अनुसार भुजंगासन- "भूमि पर उदर के बल सीधा लेटें, जीर दोनों हाथों की हथेलियाँ हाथों के पार्श्वों में भूमि पर टेक दें, फिर घुंरु द्वारा श्वास भरकर, शिर शीघ्र हाथों की पार्श्व-स्थिति जैसा से बाकर कमर तक उठने के प्रयत्न के साथ नामि से लेकर पैरों तक के भाग को भूमि पर टिकाए रखकर बाँगे हथेलियों तक लाकर धृम्भक रखकर उसी स्थिति में रहें। रैचक करते समय शिर को नीचे कर लें। उस प्रकार उसी स्थिति में ढेर तक ठहरने का अभ्यास करें।"

स्वामी बीजमानन्द के अनुसार- "वायुनिक वासन व्यायाम के अनुसंधानियों ने भुजंगासन के निम्न तीन भेद किये हैं -

(क) उत्पिर्णकपाद भुजंगासन- पेट के बल खेचकर हाथ हाथों के दोनों ओर से कौहनियों में से घुमाकर भूमि पर टिकावें भुजंग के खड्ग हाथों ऊपर की उठाकर दृष्टि सामी रखें, एक पैर भूमि पर नीचे ऊपर करें। इससे कटि दोष, कृत्, म्सीहादि के विकार दूर होती हैं।

(ख) भुजंगासन- पैरों के भी उल्टी ओर से भूमि पर टिकाकर हाथों की भी भूमि पर किंकिट टेढ़े रखकर, धड़ को कमर से उठाकर भुजंगाकार होवे। इससे पेट, हाथों, कमर, ऊरु, नेहरुध्द बादि के सब दोष नाश होती हैं।

(ग) उरल हस्त भुजंगासन- हाथों की भूमि

कर सीधा रखकर पैरों की बोहो की नीर से बाकर दोनों हाथों के बीच कमर का बाय, उस रीति से कमर मुकावर जाती नीर नर्वन मरक ऊपर उठाकर सीधे वाकाल की नीर पैरों । इसी पैर की बरबी निकल जाती है । पैर , कमर और नर्वन के इन विकार दूर होते हैं । ”

धे० ध० के अनुसार मुक्ताजन- ” पैरों के बूझों से नाभि पर्यन्त शरीर की भूमि पर री नीर क्यलियाँ की धातों पर टिका कर शिर की सर्व के समान ऊँचा उठा दें । यह मुक्ताजन है । ”

बहिरंग योग व धे० ध० में मुक्ताजन की प्रक्रिया का वर्णन समान प्रकार से है । स्वामी श्रीमानन्द की मुक्ताजन विधि भी धे० ध० के समान ही है । वर्णन की परिकल्पना करके उसके तीन पैर दिये हैं ।

धे० प्र० में मुक्ताजन का उल्लेख नहीं है ।

मुक्ताजन के लाभ

बहिरंग योग के अनुसार - ” इसी सम्पाद से प्रिया, शक्ति, उदर, कटि , ऊरु, पैर, कुबार्द, क्यलियाँ, मुष्ट स्वस्थ , रीढ़ की क्यलियाँ सकीली बनो रहती हैं । गण्डमाता, गुल्म बादि रोग होने की सम्भावना कम ही रहती है । ”

धे० ध० के अनुसार- ” यह बाजन शरीरस्थ धम्म की क्युनि बाजा और सब रोगों का नाशक है । इसी धम्म के हुण्डलिनी

१- योगदर्शन - स्वामी श्रीमानन्द भाष्य पृ० ४४३

२- धे० ध० सं४२

३- बहिरंग योग पृ० १३०

उच्छ्वस का वाग्राज होता है --

मुखासन के व्यास के प्रीका, हाथी एवं उदर के सभी रोग दूर होती है। गर्दन, हाथ तथा पैरों की नाभि-पेशियां दृढ़ होती हैं। ७८, ऊपर एवं महदण्ड में एक वाती है। इसके समुचित व्यास के भेद की वही यह वाती है। हृदय के रोगों एवं नसों की स्थिति का व्यास सम्बन्धी है।

योगासन

बहिर्ग योग में योगासन का उच्छ्वस -- व्यास लेकर पश्चिमी धीरे बैठ जायें। तदनंतर दोनों धीरे धीरे हैं दोनों पाद-वर्तों की एक नाभि तक हैं कि नाभि बन्ध सामने बाग की बीर की बाय हाथ की धीरे धीरे उदर की बीर की बाय। उच्छ्वसी मुद्रा द्वारा दृष्टि हृदय में स्थित करें, स्वास-प्रस्वास की गति स्वाभाविक रहे। दृष्टि की नाभिका के समान पर रत्नी का चिह्न भी मिलता है।

योग के समान ही उपलब्ध है।

योग २० में योगासन का उच्छ्वस नहीं किया गया है।

योगासन के लाभ

बहिर्ग योग के अनुसार -- व्यास

१- योग १० अ० १४३

२- बहिर्ग योग १० अ०

३- योग १० अ० १४४, ४४

में वह वाहन है वेनी में तन्त्रा, जिहा, वाहन्य, कृष्ण, प्रभाव वादि का ज्ञान
रहता है। दीर्घ काह तक वेनी है प्राणीस्थान हीने ज्ञाता है तथा कृष्णजिही
वागमरणा की सम्भावना हीन ही वाणी है।

उक्त वाहन के कल्याण है शरीरगत समस्त
विविध वाह्य का नाश ही जाता है। कृष्ण, तन्त्रा नहीं रहती। शरीर में
स्फूर्ति की रहती है। प्राण पुष्पुष्पा में हीन प्रीति करता है। वह, मन्मथर,
तथा उदर विकार दूर हीने है। उक्त कल्याण स्त्री पुरुष दोनों ही कर लक्ष
है। शरीर पर अधिक नहीं बलि स्त्री पुरुष उक्त कल्याण धीरे धीरे बढ़ाये।

उत्थीन में वाहन विधान कल्याण के कल्याण
वाहनों का महत्त्व, वाहन परिभाषा, उत्थीन में वाहनों का स्थान, उत्थीन
में वाहन संस्था निर्धारण, उ० प्र० एवं वैष्णव संस्था में सम्मिलित वाहन, वाहनों
का वर्गीकरण, वारीय के वाहन, ध्यान योग्य वाहन, ध्यानीपणी वाहनों
की प्रक्रिया एवं लाभ विधान, कृष्णवाहन, कृष्णवाहन, एवं स्वतंत्रवाहनों की प्रक्रिया
एवं लाभों का उल्लेख किया गया है।

यह लीधनार्थ वाहन, मुक्त, धि, नीपु, वीर,
धुर, ल-कला कृ, गुप्त, मह्य, परिष्कृष्टान, महत्वेन्द्र, गीरदा, उत्पट,
लैट, मयूर, कृष्णट, कृष्ण, उत्पानकृष्ण, कृष्ण, उत्पानकृष्ण, कृष्ण, गहड़, कृष्ण,
उत्प, मर, उद्, कृष्ण, योगाहनों की प्रक्रिया एवं उनके हीने बलि लाभों का
उल्लेख है।

०००

१- परिधि जीम पु० ७६

गण्ड व्याय

हठयोग में मुद्रा-विधान

दृष्टीगत में कुटा-विधान

कुटा-उद्देश्य

दैनिक जीवन में उच्चः से रात्रि काल स्थिति तक कर्म, उपायना ही कर्म कर्म कार्य सम्पादन की में मुख्य निम्न २ कुटाओं का प्रयोग होता है। कर्तृनिष्ठ कर्म विकार विरुद्ध प्रारंभिक की व्यवस्था के लिए प्रयोग विधान की कुटा मात्र है। उच्च सम्पूर्ण व्यवस्था की प्रारंभ होता है, उच्च तरह विभिन्न कार्यों के लिए कुटा कुटा निकल है, उन कुटाओं के बिना कार्य सम्पादन ही ही नहीं होता। यही में हमारे देशों का कर्म एक विशुद्धीय वास्तुता होता है, जो वास्तुता के माध्यम बिना यही देश कार्य सम्पादन ही नहीं ही होता। यानी में हमारे की कुटा से प्रेम पर बौद्ध नहीं था होता। गौतम बुद्ध की कर्मोप विधि (कर्म कुटा) कर्मोप एवं कर्मोप कर्मोप (बरत कर्म कुटा) यह कुटाओं कर्म, रक्षा कर्म वास्तुता विरुद्ध होती है। वास्तुता वास्तुता विधि में ही वास्तुता वास्तुताकार है। कर्मोप के कर्मोप एक कर्म कुटा का भी विधिगत स्थान है। जिस की वास्तुता एवं कर्मोप की कर्मोप कर्मोप की कुटाओं का कर्म कर्म वास्तुता है। उच्च प्रकार दृष्टीगत वास्तुता वास्तुता के कर्मोप वास्तुता, उच्च की वास्तुता कुटाओं की कुटा २ वास्तुता एवं वास्तुता वास्तुता विधान कर्मोप की वास्तुता कर्म वास्तुता वास्तुताकार है। उच्च कर्मोप है।

कुटा का स्वरूप एवं कार्य

वस्तुतः वास्तुता वास्तुताओं के वास्तुता कर्म-

तत्त्वों के आधार पर शरीर क्रियाओं का विश्लेषण करते हैं और उन-उपायों का सम्बन्ध पंच तत्त्वों के स्वीकार करते हैं जो इस आधार पर मुद्रा-वायु-तत्त्व का प्रतीक है। वायु तत्त्व का कार्य है प्रकृति के अन्दर गति प्रदान करना। हमारे शरीर का स्नायु जोत वायु तत्त्व का भौतिक स्वरूप है और इसी के कारण ही ये सक्रिय हैं। नाभ चक्र के लीला चित्रास को क्रिया के विविध स्वरूप और स्तरों को अभिव्यक्ति देना मुद्रा के कार्य चौथे के अन्तर्गत है। मुद्रा वायु वाकृति है जो प्रकृति के अदृश्य गुणात्मक रूप को प्रकट करती है। वायु और वाय्वन्तर को एक रूप करके दृश्य रूप देना ही मुद्रा है।

यह ज्ञेय्यता है कि सद्योग की बीज मुद्राएँ ऐसी हैं जिनका प्रभाव नैसर्गिक रूप से शरीर एवं मनःस्थिति पर पड़ता है जिनसे मन के उद्वेग और उन्मादों में स्थिरता आकर शारीरिक और मानसिक निवृत्तियाँ दूर होती हैं एवं साधना में स्थिरता आती है। शरीर एवं मन को साधनोपयोगी बनाने के लिए ही षेरण्ड ने 'मुद्रा स्थिरता' मुद्राओं के अन्वयात् स्थिरता की उपलब्धि होती है। षेरण्ड का स्थिरता से तात्पर्य शरीर के अन्दर से मुद्राओं के माध्यम से अविरहित वायु का निष्कासन कर शरीर और मन को समत बनाते हुए स्वोद्योग से उत्पन्न गुण की ओर से जाना है। इसके अविरहित बल काय- शोधन प्रयोग में चतुर्कर्म, वासन, प्राणायाम के कार्य नहीं हो पाता बल मुद्राओं के प्रयोग से पट-वृद्धि कर साधना हेतु शरीर में स्थिरता आती जाती है।

योगसाधना में मुद्राओं के कार्य एवं लाभ

“योग साधना के अन्तर्गत मुद्राओं का महत्त्व वासन, प्राणायामादि क्रियाओं से अधिक माना गया है। मुद्राओं का अन्वयात्

कुम्हडिली सन्धि को बाध करके एवं कर्मा का ध्यान करने में विशेष उपयोगी है, मसालुडा, मसालुडा, सेवरी, विपरीतकरी, ताडानी, माण्डी, काकी, मुँगिली, ताण्डी आदि विभिन्न कुम्हडों के कम्पास का निर्मित योगपरक ताण्डी में उपलब्ध होता है। इन कुम्हडों का वाय्वारिक प्रसारण तो है ही नीचिरी रोगों के मुक्त कराने में भी अनेक प्रसन्न योगदान है।

कम्हडों के कम्पास पाठ्यार्थ, उद्दिष्टान, मुक्तान्ध, एवं माण्ड्य की गणना की जाती है। माण्ड्य वस्तुतः प्रथम तीन कम्हडों का ही निर्मित रूप है। पाठ्यार्थ, उद्दिष्टान एवं मुक्तान्ध की स्थिति क्रमः ऊपर, उदर, एवं गुदा प्रीत में स्वीकार की गई है।

वाय्वारिक उपलब्धि के साथ साथ नीचिरी स्तर पर भी कुम्हडों के कम्पास की कम बाधकता होती है। कुम्हडों के कम्पास कम्पास के तारीखिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में सुदृढ़ता होती है। शरीर का वाय्वारिक नियन्त्रण होता है। मण्ड्य, मुक्त, पाण्ड्य, मुक्त-पण्ड्य एवं माण्ड्यारिक क्रिया व उच्च कम्पुक्ति लेकर शरीर की प्राण सन्धि की संवर्धन क्रियाओं को उत्तम योगदान देती है।

कुम्हडों की संख्या

कुम्हडों की संख्याओं के विषय में स्वात्मनारायण एवं मेरुद नीचिरी एक पत्र नहीं है। स्वात्मनारायण ने ४० प्र० में निम्न कुम्हडों का उल्लिख किया है—

“ मसालुडा, माण्ड्य, मसालि, सेवरी, उद्दिष्ट-
माण्ड्य, मुक्तान्ध, पाठ्यार्थान्ध, विपरीतकरी, मसाली एवं कुम्हडिली

कर्मों के सम्पादन की शक्ति होना सम्भव प्रतीत होता है। परंपरा के बहिष्कृत अन्य सभी प्रकार के कर्मों को नहीं बल्कि कर्मों की वीर उन्नति करने वाली है जो राज्य प्राप्त है। परंपरा ने परंपरा पर नियंत्रण की प्रक्रिया को कर्मों में समाहित कर कर्मों की संख्या बढ़ाई है। उन परंपराओं के कर्मों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ज्ञान का विषय है।

परंपरा संज्ञा में कर्म प्रकरण में 'चिद्विद्या' यह योगिनाम् 'यह योगियों के लिए चिद्विद्या प्रकाश है।

सभी प्रकार का उत्तम उत्प्रेरणा में कर्म-प्रकरण में भी उपलब्ध है- "यह वह कर्म द्वारा मरण को नष्ट करने वाली है, यह कर्म वादिनाम द्वारा जो हुए वाठ दिव्य देवताओं को प्रदान करती है, जो कि सभी जितों की प्रिय वीर देवताओं की पुत्री है।"

यही नहीं स्वात्मराम ने उन कर्मों की स्त-पिटारी के ज्ञान गुप्त रखे का निर्देश किया है- "यह सभी कर्मों स्त-पिटारी के ज्ञान गुप्त रखे योग्य हैं उन्हें उसी प्रकार गुप्त रखा बाकिर, कि प्रकार कृतज्ञ के साथ ज्ञानगुप्त गुप्त रखा जाता है।"

कर्मों के सम्पादन करने पर कृतज्ञता वीर कृतज्ञ पर विषय प्राप्त होती है तथा वाठ देवताओं (बलिमादि चिद्विद्या) की प्राप्ति होती है, का निर्देश किया है तथा उन्हें वाकिरारी के गुप्त रखे का भी उल्लेख किया है। ऐसी स्थिति में वाक्क निर्जन स्थान में ज्ञान सम्पादन करे। कर्मों की प्राप्ति का वर्ण प्रत्य उल्लेख है वर्ण स्वात्मराम वीर परंपरा

१- परंपरासंज्ञा ३।३

२- ३०३० ३।३

३- ३३ ३।८

एक दूसरे के बदर है तथा अधिकतर जगहों पर वसिहणीयता का ही प्रयोग किया है। यह वसिहणीयतापूर्ण प्रथा के विषय में छट्ठीय का प्रकार प्रकार होकर छट्ठीय सम्प्रदाय की कल्प कल्प की विचार धारा रही होगी ।

सुदा-वर्णिका

तेजरी झुटा

ध्यानविन्दूपनिषद् में तेजरी झुटा - ^१ कपास कुहर में विपरीत (उल्टकर) हुँवें बिस्वा के प्रविष्ट होने और प्रकृति के मध्य दृष्टि रहने पर तेजरी झुटा होती है। उस स्थिति में बहुत बल्लि में नहीं गिरता और न (शरीर में) वायु संवहित होती है।

तेजरी झुटा के जानने वाले योगी को रोग, मृत्यु, तन्त्रा, मित्रा, शत्रुता, पुण्य और दुष्कर्मा नहीं जाती, तेजरी का वाक्क रहस्य नहीं होता, कर्म के विषय नहीं होता और न काल क्वालि हो जाता है।

जिस झुटा के द्वारा जितने मोहों के मध्य वाक्क में विपरण करता है और बिस्वा भी वहीं वाक्क विपरीत है, उस तेजरी को सिद्ध नमस्कार करते हैं। ^२ ^३

योगसुष्टुपनिषद्, योगसत्त्वोपनिषद् एवं ^४ सांख्यिक उपनिषद् में भी तेजरी झुटा की प्रक्रिया ध्यानविन्दूपनिषद् के अनुसार ही प्रस्तुत है।

बहिर्गम योग में तेजरी झुटा

“ उत्कट वासन से बैठकर, बीम को चकड़े से बाँधने वाले फाँटे तन्तु की जड़ पर, बीम उठाकर धार काट देता तन्तु की डली से रगड़े तथा नित्य प्रातःकाल ही बीम को दोनों हाथों के बीच और

१- ध्यानविन्दूपनिषद् पृ० ७६ से ८२ तक

२- योगसुष्टुपनिषद् २।३ से ७ तक

३- योगसत्त्वोपनिषद् पृ० ११७

४- सांख्यिक उपनिषद् ४।११ (प्रथम भाग)

कहीं के नीचे पासी के बाय के नीचे के समान ही नीचे नीचे हैं । कभी कभी विकसित का पूर्ण लाकर पत्ती रहे, कभी कभी के भी नीचे किया का करता है । कभी प्रकार तब तक करते हैं जब तक बीच निकाल कर बिल्वाग्र नाम नाशक की फिर नाशक कर्म नाम की और अन्य में मुख्य की स्वी न कर लिया की । फिर बिल्वा उल्टकर कपास कुहर में पानी बीच कर्म वाली है । --

छात्रस्य दृष्टिनी मयागीन में लेवरी

“ निरात्मकता के उरीर की स्थिर धीमा कर्म-विहीन रहकर बीच की जाने की और धाक परिणाम करता है, कभी बीच के रहे नरम और हीरे फट जाती हैं । बिल्वा का बाध करके धीरे धीरे वाह के बीच बिल्वा की नीचे की रगड़ना बाधित, फिर उसे स्थिर कर लेना बाधित । जो बिल्वा का कर्मवीर नाम है उसे वाह के छे में लेना देना बाधित, कभी उसी नाम का ध्यान बना रहता है, जहाँ बीच लगी रहती है निरन्तर वह प्रकार करते हुए बहुत कास परवाह की की कुभावान्तक नाम होने लग जाती हैं । यह कुछ नित्य निरन्तरिक करनी बाधित । लेवरी कुछ है उसमें वह नाम वह प्रकार का होता है कि फिर निरन्तरिक, प्राप्तिहीन नाम वह होती है । वह नाम के द्वारा बाध बाध नीतिर का वह कुछ किया कलाप देत और नाम करता है

बाध की दृष्टि नहीं लीनी पत्ती वाली है जहाँ बीच लगी है । वाह नाम के छे में लेना हुआ बिल्वा का वह नाम बहाव बाध की दृष्टि की नहीं लीकर ध्यानस्थ कर देता है ।²

१- बहिरंगयोग पृ० १२४

२- छात्रस्य दृष्टिनी मयागीन पृ० १०२ व १०३

ह० २० में सेवरी

बिम्बा की वाक्य के समान सम ही उल्लेख
मुक्त में समान योग्य है। उल्लेख बिम्बानों ने बहुत कम ही सम धार का है
उल्लेख बताया है। बिम्बा की प्रक्रिया का परिचय कर बाह्य के बराबर हटा
बिम्बा शुचिमात्र स्वर के पक्ष पर काटे, काटने पर तर्पणी एवं कौटि के उल्लेख
का पूर्ण सम समान ही नामक लाते।

बाह्य बीज के समान बिम्बा का बीज कर
उपा पुनः बाह्य बिम्ब प्रत्यागृहित मात्र सम कर। बीजिमात्र मध्य के मा-
नुषार उल्लेख बीज ली: ली: कर बिम्बा के प्रकृति स्वर ही बाह्य कर।^{११}

ह० २० मन्त्रिका में भी सेवरी मुक्त की प्रक्रिया
ह० २० के समान ही है।

लिख संविदा में सेवरी मुक्त

“सुविमान बाह्य बीजों में बाह्य प्रकृति के मध्य
में दृढ़ करके दृष्टि को स्थिर करके और बाह्य उपलब्ध रहित ही प्रत्यागृहित बिम्ब
हीकर बिम्बा की विपरीत बाह्य ऊपर मुक्त रूप (बाह्य बिम्ब) में समान
उल्लेख कर। है बाह्य। मन्त्रों के प्रति यह सेवरी मुक्त प्रकृति की है।
यह सेवरी मुक्त ली बिम्ब की कमी है और है मन्त्र। समान प्राण के भी
बाह्य प्रकृति है। भी निरन्तर उल्लेख मन्त्र के नित्य समान पान करता है उल्लेख
उल्लेख ली बाह्य है बाह्य नाश नहीं होता और प्रकृति ही उल्लेख का यह
सेवरी ली मन्त्र मन्त्र है।^{११}

१- ह० २० २१२१ से २२२ तक व २२५ से २२६ तक

२- ह० २० व० २६ तक

३- लिख संविदा ४। ५१ से ५० तक

अपवित्र करना पवित्र हो या किसी अवस्था में
हो किसी केवरी मुक्त छिद है वह कर्मा दूत है । अपने संन्य नहीं है । जो
उस केवरी को पाणाप्य भी करना वह कर्मापाय पाकर है पार होकर सुखदुर्ग
स्वर्ग का भीग भीगा । उन्ही कर्माप्य उत्तम दूत में उन्हा कर्मा होना ।

गीरवा फलति में केवरी

“ किन्हा की उन्ही फिहाकर क्पात दूत
में प्रीत की कर्माप्य दूत में निरुद्ध दृष्टि स्थिर करना । उन्ही केवरी मुक्त
करी है जो योगी गुरुपदिष्ट मार्ग द्वारा ज्ञान, योग, कर्माप्य विधि है
केवरी मुक्त की बहुत कास कर्माप्य कर्माप्य करता है उन्ही रीत, जिहा, पुरुषा,
पुरुषा, मुर्खा कीर पाण्य दूत दूर कीति है । जो योगी केवरी मुक्त जान
कर उन्ही कर्माप्य करी विधि करता है वह हीक है बीहिता नहीं होता , कर्मा के
कास में कर्माप्य नहीं पाता, कीर कास , मुक्त बापि है जो कर्माप्य नहीं है ।

जिहा कारण पात्रत के तिर रकात्र कीकर मन,
दुष्टि, निरुद्ध दूत कीकर फिहाता है उन्हा किन्हा भी कर्माप्य जिहाकार में
रकर प्रारम्भाप्य कर्माप्य का पात्र करी है उन्ही केवरी के मन दुष्टि के
विनय कर्माप्य निवारण करने वाली केवरी मुक्त कर्माप्य छिद करी है कर्माप्य
दुष्टि है । ”

उ० प्र० में केवरी मुक्त

“ क्पात दूत के कर्माप्य में योग उन्ही करी
प्रविष्ट करी बापि कीर बापि की दुष्टि कीरों कीरों के कर्माप्य निरुद्ध
दुष्टि बापि । उन्ही केवरी मुक्त करी है ((केवरी विधि में) ज्ञान, पात्रत

सब बीजों के बीज (कृता) को सब एक कृती रहें सब एक बीज बीजों के कर्म का स्थान स्वर्ग न हो । देहा कर्म पर तेजरी छिद होती है।

ब्रह्म के कर्म के समान सब धार बाहे, सब्स और किसी समय को लेकर उछी किसी एक की बाड़ी का रीम मात्र देन करना बाहिर और उछी बाध (उच बाध पर) किसी हुए छिद सब्स और वरु के पुर्ण की कच्ची वरु किसी बाहिर । बाध पिन के कच्चातु फिर रीम के बराबर ही देन करना बाहिर । उच प्रकार (देन और पुर्ण वर्धना) के नियम प्रति पुन है वः पाठ में कच्चातु वरु है टपकी बाहे वरु की रीम बाहे किसी एक का तिरावन्ध पुर्णवर्धना की बाधा है। बीज की उछ कर (कृता किसी पुष्पुन्ना बाहे) किसी में जाना बाहिर । उछी की बीज का बीज का बाधा है। यही तेजरी मुता है ।

उ० प्र० में तेजरी के विषय में बानि निम्न उछीस किया है- " बी बीजी वातुरन्ध में बीज की ऊपर कर बाजायं सब बी रिकर कर होता है, सब बी प्रकार के विष्ण, रीम, पुष्पु और बरादि है पुष्प की बाधा है। बी तेजरी की बाधा है कच्ची तेजरी के कच्चातु में कच्चातु की बाधा है, उछी रीम, पुष्पु, सन्ध्या, निहा, पुष्प च्यातु और पुष्प की बाधा है। सब रीम है बीजित नहीं होता न उछी कर्म के पुष्पातुन कर्म की बाधा है । उछी पुष्पु की बाध्य नहीं कर्ती ।

किस (तेजरी मुता) के द्वारा बिस बीजी बीजों के बीज बाजात में रिकर की बाध और (उछी पुष्प में) नहीं किसी की उछर बाधा है, उछी बिजों में तेजरी मुता कर्ता है। बी बीजी तेजरी मुता

१- उ० प्र० अ० ११ के ३६

२- " अ० १० के ४३

के कारण वायु के ऊपर विवर की वाष्पकृत कर देता है, (यह) वाष्पित हुयी वायु वाष्पित होने पर भी उसके बीचों का कारण- रहता नहीं होता है, यदि विन्दु स्थिति की होने की ही योनि मण्डल में योनि फुट के प्रभाव से (वाष्पित है) स्थिति के कारणोंन के ऊपर पूर्व ज्ञात है अर्थात् योनि के (वायु के ऊपर विवर में उत्पन्न है वाष्पित) कण्डाग्र का भी योनि पाल करता है, यह वायु भरीने - एक पद में कृत्य की योनि होता है ।

४० प्र० में हेवरी की प्रतीति

“ जिस योनि का शरीर निम्न कण्ड होता है पूर्ण रहता है- क्योंकि कण्डार के वाष्पित कण्ड का पाल करता है उसे यदि सदाक (विनीता वायु) की काट से ही उष्ण विष्णु शरीर में नहीं फैलता । जिस तरह वाष्प लेन की नहीं होसकी, बीचों में कुछ कालों की प्रभावित ही करता रहता है, उही तरह कम एक शरीर कण्डमा की कला से परिपूर्ण है, सब एक बीजात्मा उष्ण स्थान नहीं करता है । ”

यही योनि निम्न किन्ना की वायुमण्ड में प्रविष्ट कर वायु प्रवण करता है और कम वाहणी बीता है, उही की में (स्वात्माराम) कृतीन समकाला है और दूसरी तीन कुछ पाठक है । यहाँ भी कण्ड का काँ है किन्ना और वायु विवर में उष्ण प्रीति ही वायु प्रवण है। यह भी है की वायु की गट कर देता है कम वायु विवर में किन्ना के प्रीति से उष्णतापरक वाष्प उत्पन्न होती है, सब (कण्डार विष्णु) कण्डमा है की प्रवण करता है, नहीं कम वाहणी है ।

यदि यह प्रकृति कही जाती, पाठ, कृ०

कण्ड, कुम्भ, मूला और भी बापि रूतों के समान रूप प्रकट करने वाली बीच
 कण्ड के ऊपर बापि निवार छि का निरन्तर स्पर्श करती (कण्डकलापुत्र की
 बीजों) है, जो कण्ड की सभी व्याधियों (रोगादि) का नाश हो जाता
 है, कुम्भ का कण्ड होता है, कण्डादि (के बापार) का निवारण हो जाता
 है । यह कण्डकलापुत्र कहता है । कण्ड विधियों और विद्यालयों का बाल-
 चीन होता है ।

उ० प्र० में देवरी प्रविष्ट

“ जो बीजों बीच की कपास कुम्भ में
 है बापार और कुम्भ की ऊपर की और उठाकर परम तन्त्रि कुम्भलिली का ध्यान
 करता हुआ प्राणवायु के बाधन और कल्याण के प्राप्ति कण्ड में लीला दस बापि
 कण्ड में मन्त्र के धारा रूप में गिरी ऊर्ध्व तरंग बापि कण्डकलापुत्र (बीमर)
 का वान करता है, यह रोग रक्ति हो जाता है उलका करीर मुन्नाल (कण्ड-
 नाश) के समान बीमर हो जाता है और यह विरकास एक बीजित रहता है ”

कुम्भलिली के ऊपर भाग में स्थित निवार
 में कण्डकलापुत्र (प्राप्ति) यह कल्पित है, उर्ध्व सभी- स्त्रीगुण के परी तथा
 सभी गुण के सम्पूर्ण विद्यानु कण्ड बापार- कल्याण का वर्तन करता है । वहीं
 कण्ड-पूर्व कुम्भलिली बापि मूला बापियों का उद्गम स्थान है । करीर का धार
 कल्याण कण्डापुत्र प्रविष्ट होता है, उपरस्थ बापि सभी पूर्व उलका प्राप्त करता है,
 सभी प्राणियों की मूला हो जाती है । उस धार कल्याण की कल्याणमो होने के
 रीति के छि देवरी कुम्भ का कल्याण करना चाहिये, यदि यह कल्याण नहीं
 किया जाता है तो करीर की परिमलता - कल्याण सम्भव नहीं है ।

वाक्पिपी के ये प्रोच मुख्य कि ज्ञान का
 अनुपम करने वाला है। उस मुख्य रूप निरंजन के लिए तेवरो मुक्त स्थिर होती
 है। दृष्टिमय (प्रजापत्यमय) बीच एक ही है, मुक्तियों में प्रधान तेवरी मुक्त
 एक ही है और निराधार, निराश्रय, निरंजन रूप के एक ही है, नानिष्कली
 ही प्रधान वाक्पिपी स्थिति कथा कथा भी एक ही है।

ध्यान धीमा में तेवरी का उत्पत्ति

धिया के नीचे वाली वाली की तेवरी
 धिया के का भाग का निरंतर बाध की तथा मलमल छात्र दीन कथा
 मुक्त होती की धिया के धिया। निरत्य प्रति कथा कथा होती है धिया
 का वाली है। कथा दीन वाली के मय धिया तक कथा है। पुनः प्रत्यः
 बाधक में धीरे धीरे प्रविष्ट की। कथा रूप में धिया की ऊपर की की
 उच्छी करी के जाना बाधिर। दृष्टि दीनों वाली के मय में रही। यह तेवरी
 मुक्त है।

तेवरी का कथा करने वाले धाम की
 दुर्गा, दुर्गा, दुर्गा, वास्तव्य वादि नहीं कथा है। रोग, परा स्व मरण
 का मय नहीं रहता। न धाम के उरीर कथा है नहीं बाध के मुक्त होती है।
 न मय धिया कथा है कीर न धर्म काट कथा है। उरीर वास्तव्य ही बाध
 है। निरकल कथा कि होती है। कथा कीर मुक्त का रहना के धाम कीन
 होने के कीर धीरे की उत्पत्ति होती है, तेवरी का धाम धिया के धिया
 पर धिया कथा धीरे का धाम है, धाम में लक्षण, धाम, धिया
 कीर कथा रूप का उत्पत्ति मलम, पुनः, पुनः, धिया, धिया, धिया, धिया
 कीर धिया कथा धीरे का धाम उत्पत्ति होती है।

तेवरी मुद्रा के विचार में ६० प्र०, १०० प्र०, एवं अन्य उक्त योगपरक प्रणियों में विज्ञा देन, वास्तव एवं दीन की एक ही प्रक्रिया की है। किन्तु देन की प्रक्रिया को बनाने में बाधकों को एक बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि इस मुद्रा के अनुमती बाधक बहुत कम ही मिलते हैं और जो भी हैं वे सम्पूर्ण रूप से हैं। इसलिए यह मुद्रा बाधकों के लिए बहुमुखी होती हुए भी प्रसार की दृष्टि से हल्का सी हो गई है। इस मुद्रा के फलित उत्तरालम्ब की पद्धतियों में होप करने पर कोई एक ही मिल सकता है और उनके निर्दिष्ट मात्रा करना आधारणा काम नहीं है, इस कठिनाई को देखते हुए मन्त्ररूपा है तेवरी का धरु उपाय होपने में समर्थ हो सका है। "वशिर्ग योग" में प्रस्तुत प्रक्रिया भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

तेवरी मुद्रा की धरु प्रक्रिया

तेवरी के सम्पादन के लिए विज्ञा के कभी-काल में विज्ञा है संकुच तन्तु का देन विचार वाले उत्पन्न है नहीं करना चाहिए, क्योंकि देन क्रिया है "हुचुम्मा" है निकल कर विज्ञा में बाकर मिली वाली "उत्पत्ती नाही" की प्रकृति होती है, के कट जाने का मय रहता है। विज्ञा के कट जाने है वाक् एवं मयण शक्ति विज्ञात पति जाने की सम्भावना रहती है।

प्रारम्भ में १५ दिन है तेकर १ मास पर्यन्त विफला का मोटा धरुपरा पूर्ण विज्ञा तन्तु एवं नष्ट में उप-विज्ञा के नीचे ऊपर तथा विज्ञा के ऊपर बायीं बायीं भाग पर दाहिनी हाथ की तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका संकुची है धर्माणा की। विज्ञा को बायीं हाथ है पकड़ लेना चाहिए। यह क्रिया प्रातः उपासि है नियुक्त होकर करना चाहिए। इस क्रिया है कपास रन्ध्र एवं विज्ञा है विनासीय प्रणय होने: होने: बाहर बाहिना तथा विज्ञा नरम हो बाहिनी व विज्ञा के हो डीते पड़ बाहिनी। विज्ञा के कभीभाग का तन्तु

ले: ले: स्वयं ही छिद बाँधना । इस बांध के पश्चात् ऐसी बस्त्र को गर्म जल में भिगोकर जिम्बा को ढील करे, गर्म जल में बस्त्र को बार बार भिगोये जिससे जिम्बा नरम रहे । प्रतिदिन यह क्रिया कम से कम १५-२० मिनट तक करना चाहिए । एक मास के बाद पीटा पूर्ण बन्द कर देना चाहिए इसके बाद चिकित्सा का वार्षिक कम्प्लेन किया हुआ पूर्ण लेकर बराबर उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा प्रयोग करता रहे । जिम्बा ढील के बाद में मन्त्र या नवनील का लेप जिम्बा पर करे । यह क्रिया ढील पालन की, ऐसी छिद होने तक करे । चिकित्सा पूर्ण के स्थान पर वरु व शिवा नमस् व माधुकर्त का भी पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है ।

बाहार बिहार

लेवरी के बन्धन काल में बाहार का विवेक ध्यान रहे । निम्न नष्टों एवं लक्षण का प्रयोग जिम्बा को बंधने से रोक देना । इसलिए घुस, घुस एवं फट का प्रयोग विवेक रूप से करे । इस काल में ठण्डे पैर फाँसी का प्रयोग एवं बर्फ जलवादि भी नहीं लेना चाहिए ।

बिहार का जहाँ तक प्रश्न है लेवरी बन्धन के छिद होने तक पूर्ण प्रत्यर्थ का पालन करे क्योंकि जिम्बा ढील में धार्तरालि, पार्श्वक प्रन्धियाँ एवं भवण शक्ति पर विवेक बल पड़ता है । प्रत्यर्थ के न होने पर भवण शक्ति जा सकती है। बन्धन काल में कानों में शरों का तेल गरम या गी घुन गरम करके कसा बाहुर्दीय चार तेल का प्रयोग करी रहना चाहिए ।

साधना के समय प्रतिदिन जिम्बा को उल्ट कर लेना चाहिए । साधनावस्था में लेवरी का सर्वप्रथम प्रभाव यह पड़ता है कि शरीर का समग्र स्नायु मण्डल एक क्षण में बँकर ध्यान व्योमक में लगी जिम्बा पर केन्द्रित हो जाता है तथा इसके पश्चात् अन्य कुसुति प्रारम्भ हो जाती है।

४० प्र० एवं धर्मक संविदा की है, वीर-
 ली वास्तव की प्रक्रिया की कल्पना रूप से उपलब्ध है किन्तु अनुपस्थिति का उल्लेख
 धर्मक संविदा में और अधिक मिलता है। धर्मक संविदा उल्लेखित है कि कभी
 कल्पना में कल्पना रथों का शास्त्रात्मक कालों हुई विद्वान् मन्त्र, पूजा, दुष्प,
 दधि, ७७, १५, शास्त्रा और कल्पानि रथों का शास्त्र कालों है। यह अनु-
 स्थिति कभीकाल प्रतीत होती है।

शास्त्री मुद्रा

आचार्यशास्त्रीपनिष्ठा में शास्त्री मुद्रा है

मुद्रा- " कल्पित काली हुए दृष्टि वास्तव एवं तथा विनिष्ठा- उन्मेष न
 की कल्पना में एक एक हुई है, की कल्पना में गुण एवं वाही शास्त्री
 मुद्रा है। "

आचार्यशास्त्रीपनिष्ठा में शास्त्री

मुद्रा- " की कल्पना कि की कल्पना-काली है, कल्पना कि में कल्पना
 वास्तव कि है यह शास्त्री मुद्रा है कि की कल्पना की पर विनिष्ठा जान होती है।
 कि की विनिष्ठा दृष्टि की काली है, कल्पना और विनिष्ठा स्वतः की काली है
 उही शास्त्री मुद्रा काली है।

यह शास्त्री मुद्रा कल्पना मुद्राओं की काली

है। कल्पना कल्पना कल्पना कल्पना है की कल्पना कल्पना में कल्पना की कल्पना
 है, यह कल्पना- कल्पना काली व विनिष्ठा की विनिष्ठा काली है। यह कल्पना-कल्पना

१- १० वीं अ. २४ है २० तक
 आचार्यशास्त्रीपनिष्ठा १२

२- आचार्यशास्त्रीपनिष्ठा काली १० १०० है १०२

साधक की धुंधला कर रक्ताग्र कर देती है, यह दिव्य ज्ञान देने वाली, परम्परा की वाणिवाही और दिव्य बन्धु प्रदान करी वाली साधकी मुद्रा है।

यह साधकी मुद्रा कड़ी किष्ट है, विरक्ताना है, यह मुद्रा से वायुय बन्धु एवं अन्तर्बन्धु के लगी बाधों का ज्ञान साधक की ही बाधा है। निरन्तर अभ्यास के कहे होने पर यह मुद्रा किष्ट ही जाती है, जहाँ कोई अज्ञान का निम्न नहीं है।

कृष्ण स्त्रीर में किसी उरस्कती द्वारा स्वयं हा० १० बी० भारतीय के मुक्त से उन्मूलित " उरस्कत कुण्डलिनी कायोग " में साधकी मुद्रा के विषय में उल्लिखित किया है- " एक धुंधली साधकी मुद्रा की होती है जिसमें महदण्ड का मुकाबला रत्ना या धीमा रत्ना यौग्य रत्ना है। फिर नीचे मुकाबल ठोड़ों की कण्ड में लगा देना चाहिए और महदण्ड बाहे मुकाबले लगी बाहे धीमा किसे रही। मुली वाली से कृष्ण रत्न की, नाभि की अज्ञात कण्ड का में दृष्टि बना लेनी चाहिए, वहाँ साधक स्वयं वर्तन करता है एक परम दिव्य प्रकाश की भी बहुत प्रकार के रंगों का है उस प्रकाश के वर्तन कहे की साधकी मुद्रा फलकारण ही जाती है। "

हा० १० में साधकी मुद्रा की कोई प्रक्रिया का ही उल्लिखित किया नहीं है, नाम उसकी प्रक्रिया की है- " केर साधक, पुरा-णादि के एक गणिका के समान एवं साधकी मुद्रा की कुल्लु के समान गुण्य रही यौग्य वर्तन किया है। "

वर्तित यौग्य में साधकी मुद्रा- " कभी कि किसे हुए वाहन है पैकर अन्तर्गत प्रीय ही बाध और फलों की बिना

१- उरस्कत कुण्डलिनी कायोग ५० १०४

२- हा० १० ३१ २७

विचार नेत्रों को लीकर बलपय रकर हुए रहें। ध्यान कृत्य में स्थित कारण शरीर के फार्मों में रहें जसा जसा लयहीन रही हुए हों रहें। बाटक का फिना अधिक बन्धाव होगा, जतनी ही शकता इस शम्मी मुद्रा के करने में होगी। शम्मी मुद्रा की विधि इसी में है कि नेत्र हुए रहने पर भी वाक्य फार्मों को नहीं देखी, ध्यान शरीर के बन्धन लय पर होता है, इसके कृत्य लय फार्मों का विधान ही प्र होने लगता है। "

उ० प्र० में शम्मी मुद्रा- " वेद शास्त्र बीर पुराण की सामान्य गणिका के समान है, तथा शम्मी मुद्रा शूलभु के समान गोपनीय है। "

अन्तर्दृष्टि बीर बहिर्दृष्टि में निविन-उन्विन न ही ज्योत्स्ना नेत्र एक टक हुए रहे, ऐसी शम्मी मुद्रा वेद बीर शास्त्रों में विधी रहती है। जब योगी अपनी चित्त बीर प्राण को अन्तर्लोक में लय करके निश्चल दृष्टि के शरीर के बाहर देखा हुआ भी नहीं देखा, यह शम्मी मुद्रा गुरु प्रवाद के प्राप्य होती है। इसके दृश्य, वदृश्य के भी विवर्तन शम्मी लय पर लय का स्फुरण होता है।

शम्मी बीर सेवरी मुद्राओं के द्वारा जसा बीर स्थान के नेत्र के चित्त हुए स्वरूप दृश्य में चित के लय का वानन्द होता है।

" ज्योत्स्ना टीकाकार का शम्मी के विषय में यह- " शम्मी बीर सेवरी में जसा (स्थिति) बीर स्थान के वदृश्य के शम्मी की ही विवर्तन है, योगी के द्वारा समान रूप के चित्त-

१- बहिर्दृष्टि योग प्र० ३२८, ३२९

२- उ० प्र० ३३५ के ३८

वाक्य रूप कह में है नहीं है। **

वस्तुतः स्वात्माराम ने शास्त्री और
लेखी दोनों बीच झुझाई की ज्ञान कह प्रान करे वाली स्वीकार किया
है। जन्म है शास्त्री की किन्तु मुक्त का कल्याण करना चाहिए वह उन्हीं कल्याण
रूप वाक्यरूप पर आधारित होना। इन दोनों झुझाई के स्थान में यह
है कि शास्त्री में वाक्य दृष्टि है कल्याण रक्षा है और लेखी में प्रकृति के
कर्म में दृष्टि रक्षे के रूप कर्म कल्याण में रक्षा है। परन्तु इन दोनों के
ही विज्ञान रूप वाक्य में किन्तु का जो रूप होता है उन्हीं वाक्यरूप की
प्राप्ति होती है।

** धारण होना में शास्त्री मुक्त की
प्रक्रिया एवं उक्त कह उक्त प्रक्रिया के ज्ञान ही उपलब्ध है। धारण में विविध
रूप है उक्त किया है कि जो उक्त कल्याण करता है वह वाक्यरूप है, वह
नारायण तथा दृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष रूप है। मैं कर्म करता हूँ शास्त्री का वाक्य
वाक्य वाक्य प्रत्यक्ष ही है। **

वाक्य धारण शास्त्री मुक्त की कल्याण
वीक्रीय स्वीकार करती है। उनके पास है वह मुक्त की वेद वाक्यरूप के ज्ञान
प्राप्ति करना उचित नहीं।

शास्त्री मुक्त का कल्याण प्रयोग की दृष्टि
है वह वाक्य किया है। उन्हीं की उक्त कल्याण कल्याण वाक्यरूप है करना
चाहिए। शास्त्री मुक्त के कल्याण है पूर्ण रूप कर्म वह वाक्य का कल्याण करना

१- वाक्यरूप- उक्त योग विवेकिक सम्प्रदाय १६८१ पु० १३१

२- वे० पं० ३१५३ से ५६

साधकारी योगी । उन्मली है वस्तुतः एवं भेरी पर उन्मली है उन्मली
 बासी है जिसे कारण बासी बास है बास बासी " गान्धारी बासी " उन्म
 दासी बास है बास बासी " वसिष्ठ विष्णु बासी " एवं भेरी को सधिकासी पर
 विष्णु दास पड़ा है। वसिष्ठ पुत्र पुत्र वस एवं पुत्र भेरी का प्रयोग करना
 बावश्यक है। उन्मली बासी में मोक्षिवापिन्दु की उन्मली है। " दुष्टि विष्णु "
 (भेरी) का स्तर भी बहुत पक्का होता है उन्मली पोषण शिरा में, धन-
 निरी वीर नाड़ी है न हीकर केवल सधिकासी द्वारा होता है। उन्मली है
 का सधिकासी पर प्रभाव पड़ा है। वसिष्ठ बास उन्मली है वीर । वसिष्ठ
 में उन्मली प्रेम्टर " वसिष्ठ बास " पर भी उन्मली प्रभाव पड़ा स्वाभाविक है ।

उन्मली पुत्र है बास की वसिष्ठ व
 क्वास बास में वीर करना बासिष्ठ । यदि बावश्यक ही उन्मली है
 बासी है ।

उन्मली पुत्र

साधकारीपनिष्ठा में उन्मली पुत्र का
 निम्नलिखित वर्णन प्राप्त होता है-

" (भेरी के) बासी को ज्योति में पुत्र
 कहे बासी को पुत्र उन्मली की वीर वीर वीर पुत्रिष्ठ योग में का ही ला है
 ही बास पर में उन्मलीकारक बासिया होती है । "

वसिष्ठ योग में उन्मली पुत्र- " कृपाज
 पर स्थिता है वीर पुष्टि की वसिष्ठ में स्थित की । किता विधी उन्मली के
 वीर वीर वीर वीर बास का में है । उन्मली-विष्णु का बास कहे
 वसिष्ठ वीर वीर है । वीर प्रभाव में भी वस उन्मली है । "

१- साधकारीपनिष्ठा प्रथम भाग पु० १७

२- वसिष्ठ योग पु० २२

बहिर्ग योग में दूसरी प्रक्रिया - " नेत्र
का हुँद रहते हुए दृष्टि को नासाग्र पर, जमा नासिका के बाहर कुंठ की
दूरी पर वस्तु रूप में स्थिर कर दें, जब शरीर, प्राण, उन्मिद, मन की गति
की रीखा हुआ, ऊँच- निम्न का कार्य करता हुआ योगी कभी स्वप्न में
स्थित हो पाये । "

स० २० में उन्मनी मुद्रा - " स० २०
में उन्मनी मुद्रा की किसी प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया है बल्कि " एका-
वस्था मनीष्मती " काश्चि मनीष्मती (कम्पक) कल्पा हो एक स्थिति है
(अन्य नहीं) " कह कर बखि की है ।

स० प्र० में उन्मनी मुद्रा- " (नेत्र के)
घातों की स्थिति के अनुसार कर नीचे की पीढ़ा पीढ़ा ऊपर उठाना बहिर्ग,
जब घटते घटते निरुपि (कम्पक और बहिर्गुष्टि) योग में मन की स्थिति
के नासाग्र पर में उन्मनी कारक कल्पा छिद होती है ।

कुछ शास्त्र सम्प्रदाय के (द्वारा प्रत्यक्ष
विधियों के) बन्धन में कुछ (सम्पाधी) निगमों के (द्वारा निर्दिष्ट कलादि
कर्मा के) कठ में तथा कुछ (वैशेषिक आदि वर्तनों में कभी द्वारा कल्पित
धुधियों) के प्रशिक्षण रहते हैं, वे चारक (योग) नहीं मानते हैं ।

जिस योगी के नेत्र का हुँद रहते हैं, जिसका
मन स्थिर रहता है, जो नासिका के छेदभाग में दृष्टि कुंठ करता है, जो बन्ध
(रुद्र) और धूर्त (फिला) नाड़ी प्रवाहित प्राण की (धृष्टुम्मा में) लय
कर निरुपम की बात है (जिसे शरीर की धुधि नहीं रहती है) वह (योगी)

१- बहिर्ग योग ३२८

२- स० २० व। २

३- स० प्र० व। ३६ के ४९

कीर्तमान गीति स्वल्प कीर्तन बलिष्ठ विद्य के बीच रूप परम पर (वात्स्य स्वल्प) की प्राप्ति ही जाता है। ए० उ० २० में अधिक क्या कहा जाय ? **

उ० २० में स्वात्माराम ने उम्मी की कुल
प्रकार में उल्लिख किया है-

“ न दिन में दिन का प्रकाश की वीर न
रात्रि में ही करना चाहिए, दिन रात्रि के निर्दिष्ट होने पर ऊँचा दिन का
प्रकाश करना चाहिए । ”

ये उ० में उम्मी कुल का उल्लिख नहीं
उपलब्ध होता ।

योगशास्त्री में दिन प्रकाश के लक्षण कहा
जाता है कि केवल दिन में या रात्रि में ही वात्स्य विचार न करे योगी
की उमा दिन रात्रि के परी होकर वात्स्य स्वल्प में ही रहना चाहिए । उम्मी
वात्स्य की प्राप्ति के लिए काल के विचार का ज्ञान है। वह योगी की पूर्व नाड़ी-
किंवा पछी है तब वह दिन है, वह कन्ड नाड़ी-क्या पछी है तब रात्रि है।
योगी पूर्व, कन्ड नाड़ी के प्राण की कुण्डल्या में होकर काल के विचार के लक्षण
होकर उमा वात्स्य स्वल्प में रहना होता है। कुण्डल्या में प्रवाहित वायु के पर
स्पर होकर उम्मी की विधि में उत्पन्न होता है।

डा० कमलदास गीतन ने दिन व रात्रि में
दिन के प्रकाश के विचार में उ० २० के उपर्युक्त श्लोक की टीका निम्न प्रकार है

१- दिन न प्रवेष्टि रात्रि न प्रवेष्टि ।

ऊँचा प्रवेष्टि विचारानिनिर्दिष्टः ॥

• उ० २० ४१४२

२- योगशास्त्री - लक्ष्मीन विद्यानि कलरी, १६२१

की है- " उष्णी कारणा में काष्ठ का कोई नियम नहीं है। दिन का एवं पूर्व और रात्रि का एवं पञ्चमास एवं पीनी का उपार होने के समय दिन पुनः का निर्धारण है। उदात्तकर्म यह है कि पितृता और उद्गा स्वर उपार काष्ठ में पुनः नहीं करना चाहिये। उक्त कारण यह है कि पूर्व पञ्च स्वर के उपार काष्ठ में पितृ को भिद्यता नहीं रह जाती, क्योंकि उक्त समय प्राण वायु पतनमान रहता है, उच्छिर पितृ भी पतनमान रहता है। "

वस्तुतः स्वात्माराम ने दिन, दिन एवं रात्रि के प्रकृतः वात्मा, पितृता और उद्गा का प्रतीक माना है, और प्रतीक-रूप तैली में ही स्तीक की रक्षा की है। वात्स्य विन्यास के लिए उद्गा-पितृता के स्वर उपार कर्तव्य दिन रात्रि का निर्धारण किया है तथा पुष्पुम्मा के प्रसार काष्ठ की ही विधि वाक्य स्वीकार किया है। स्वात्माराम का उदात्तकर्म दिन रात्रि के समय से नहीं है बल्कि पुष्पुम्मा के प्रसार काष्ठ से है। पुष्पुम्मा में प्रसारित वायु का और प्राण की विपर कर्तव्य है भी उष्णी की विधि में उदात्तकर्म है।

पञ्चाङ्गा

अथानविन्दुपनिषद् में पञ्चाङ्गा का निम्न प्रकार से वर्णन उपलब्ध होता है-

" कष्टे योनी वातन्धर पन्थ छाकुरु
नास्यै परे से योनी नारी की पथति हुर पाथिने पर की केसकर रते तथा
पीनी छापी की पीनी और दुष्टि पर रती हुर प्ररु प्राणाधाय की है, पुनः
कष्टे हुर रोक की। यह प्रक्रिया वातन्धर के सभी वायु तथा योनिपी के योनि
विष्टी की नष्ट करने वाली पञ्चाङ्गा है। "

१- पृ० ३० अङ्कुरी संस्कार, ग्रीही पृ० १७५, १७६

२- अथानविन्दुपनिषद् पृ० ६३

वीरभूषणयोगनिष्ठा में महाभुजा का

निष्ठा प्रकार है वर्णन उपलब्ध होता है-

“ एक वातस्थान्य लाकर बायीं पैर के
ऊपर की ओर बायीं पैर की (कमीन पार) फैला
हुए बायीं हाथों के फर्क, कन्धनाड़ी (छटा) के फुल करके उदर में बाहु करें,
वीर भुम्क करके ली: (भिन्ना) कन्धनाड़ी के रैम करें। यह प्रकार कृष्णों
के कर्म रोगों की नष्ट करने वाली महाभुजा होती है। यह प्रक्रिया है कन्धनाथ
(बायीं) के करके पुनः पूर्व भाग (बायीं) के कन्धनाथ करके हुए बायीं वीर बा-
वर संस्था में की। ”

विरह योग में महाभुजा- “ हाथ बायीं
फैलाकर कंधे की ओर बायीं पैर नींदकर ली की मुदा वीर उपस्थ के कर्म (धीमन)
में प्रवेश है बना दें, जब हाथ फुलकर फारी हुए दक्षिण पैर के पैर की दोनों
हाथों की कंधियों में बद्ध हैं। फिर फुल विधि है उपाय कन्धर पकर फुल
उपाय वातस्थान्य लाकर कन्धस्थित कैं हैं। कंधों पर दोनों कन्ध कानि का
विधान भी है। रैम के कर्म प्राण की ली: ली: बाहर निकालें। ली: पन्था
हुए बायीं है, दक्षिण पैर के ली: प्रकार करें वीर दोनों वीर के ५-६ करें हैं। ”

कन्धनाथ योग में महाभुजा- “ बायीं
पैर की ली: धीमन (मुदा उपाय कन्धनाथ के कर्म के पार कृत स्थान) में
लाकर दक्षिण पैर संस्था करें वीर दोनों हाथ, रैम के ऊपर फुलरा, फुलने
के पार रैम के दोनों नाभिकाओं के पांच वर्णन करें। फिर बायीं नाभिका
के फुल करें। फुल के कर्म कन्धनाथ हुए पैर के कंधे की दोनों हाथों के फर्क
हैं वीर फिर की फुलने पर ला दें (कन्धनाथ कानि का प्रस्थन करें) उपाय का

१- वीरभूषणयोगनिष्ठा ५० ४४-४६

२- विरह योग ५० ३२३

में यह मानना करें कि " मेरी कुण्डलिनी उचित वायु प्राप्त होती है और मैं इसे प्रसरण में दे जाता हूँ " क्या उचित कुम्भक करके पूर्व नाड़ी (दाहिनी नाड़िका) है उतः उतः रोक करें । एवं प्रकार वामांग में जितनी छुटार करने का विचार हो जल्दही कर दें । फिर दक्षिणांग में भी उही क्रम है उतनी ही छुटाये करें जितनी वामांग में की थी । यह ध्यान रहे कि दक्षिणांग में पुरुष दाहिनी नाड़िका है और रोक बायीं है किवा पाय तथा दाहिने पैर की उही धीमेन में लगायी जाये ।

यह छुटा कपिल मुनि ने बताया था । इसके बन्वाय है वमिषा, वस्मिता (दुष्म वर्तकार) राग हैच वमिनिष्ठ (मरण-मय) है पंच बीज, पाय रोग, गुल्म रोग, मनन्दर, प्रीत और क्रोध नाश होता है । और अष्ट प्रकार की चिकित्सा प्राप्त होती है ।

सिंह संज्ञा में महाकुटा का विवरण-

" वाम पाय की उड़ी है गुदा और मूत्र के मध्य में जो योनि की जादर सखि गुरु के उपोत्पन्नक पीछे की दक्षिण पैर की फेताकर हाथों से पकड़ कर (उरीमस) नव द्वारों को रोक कर शिखर को पुनः पर स्थित कर और चित्त-वृत्ति को चैतन्य में स्थित करके वायु का वाहन- रोक पुरुष तथा कुम्भक करना चाहिए । यह महाकुटा सर्व तन्त्रों के प्रमाण है गोप्य है फल वामांग है बन्वाय करके फिर दक्षिणांग है बन्वाय कर योनी स्थिर हुई है प्राण का उभ करें ।

एवं विधान है मन्द धान्य योगी भी छिद हो बायेगा और एवं महाकुटा के प्रभाव है समस्त नाड़ियों का बाल ठीक हो बायेगा और विन्दु स्थिर होकर जीवन वाकर्मित रहेगा, समस्त पापों का नश

१- कल्याण योगसि ५० ४४८

२- सिंह संज्ञा ४। २७-२४ ७६

होगा, कुष्ठही को बचाव उठाकर वायु को प्रसरण में प्रवेश करेगा, पठराग्नि प्रज्वलित होकर समस्त रोगों का नाश करेगा और शरीर में सुन्दर कान्ति बाविली, वृद्धावस्था स्थिति पुनः का नाश हो जायेगा, सुत स्थिति बाविलि फल मिलेगा, वन्धियों का निग्रह रहेगा, यह सब भी वर्णन किया है, यह सभी योगासनों को जो कुछ मुद्रा के बन्ध्यास है सिद्धि प्राप्त होती है, स्वयं संशय नहीं है, निश्चय है।”

गौरपा-पद्मति में महामुद्रा- “सूर्य पर ठोड़ी को घमाकर रहे और बायें पाय की खड़ी है योनि स्थान (वीथिन नाड़ी) को वृद्धता है दबाये दाहिना पैर लम्बा करके दोनों हाथों के दक्षिण पैर का मध्य भाग फट कर रोके जब उदर में प्रसरण द्वारा वायु भी, कुछ काल क्या स्थिति कुम्भ की फिर ज्ञेः ज्ञेः रेख को, यह योगियों की समस्त रोग नाशक महा-मुद्रा कही गई है। इस महामुद्रा के बन्ध्यास में प्रथम बायाँ पैर के बन्ध्यास करके फिर दक्षिणांग के बन्ध्यास करे, प्राणायाम की मात्रा बराबर ही बायें तथा मुद्रा होइती बाहिर।

जब मुद्रा का बन्ध्यास पूरा हो पाय तो फूलाफूला का कोई विचार नहीं रहता। इसके बन्ध्यास के संयोग विरुद्ध वस्तु (जैसे फूल, पत्तु बराबर मिलाकर कुम्भ विष्ण होता है) या और विष्ण भी लाने तो कुम्भ के समान फल पाता है। शुद्धावर्त, गुल्म, क्लीर्ण, पाय, कुष्ठान्ति रोग लान्ति हो जाते हैं। यह महासिद्धि देने वाली मुद्रा है। जो गुण रहता बाहिर तथा आधिकारी को नहीं देने बाहिर।”

एक हतावली में महामुद्रा की प्रक्रिया एवं उल्लेख होने वाले शारीरिक एवं आध्यात्मिक लाभ गौरपापद्मति के समान ही हैं।

१- गौरपा पद्मति पृ० ३० से ३२ तक

२- ए० २० २३८ से ४३ तक

“ हठ उक्त चन्द्रिका ” में कहाहुआ कन
 ध्यानविन्दुपनिषद् के मुख्य उपलक्ष्य है । ”

उ० प्र० में कहाहुआ- “ बायें पैर के तलुब
 से योनि (जीवनी नाड़ी) की पीढ़ि करके बायें पैर की फेहाने कीर भूमि
 पर रखकर पुर्वीय से पदों, बाहन्धर बन्ध लगाकर वायु की ऊर्ध्व दैत में धारण
 करे, इसी पैरे कुण्डली लगाकर बैठा हुआ सर्व उच्छे से बाह्य होने पर सीधा ही
 जाता है वैसे ही कुण्डलिनी भी उच्छे घटती ही जाती है, तब योनी नाडा फूटों
 के बाह्य से प्राण के विमुक्त होने के कारण (शरीर की) मरणावस्था पैरी
 ही जाती है। तब वायु का रोज, लीः लीः करे, तीव्रता से न करे । ”

इसी कहावेल (वसिष्ठा, वसिष्ठा, राग-
 दैत कीर वसिष्ठा) सीण हीकर मरणादि दोनों का भी नाश ही जाता
 है । इसलिये विद्वानों ने ही कहाहुआ कहा है। चन्द्रांग से ठीक प्रकार ब्यास
 करके सुयोग से ब्यास करे जब तक योनी की संस्था समान ही तब तक ठीक
 प्रकार से ब्यास कर हुता का विचर्न करे ।

जब हुता का ब्यास हुद ही जाय तब
 फ्याफूम का कोई विचार नहीं रहता , निष्ठान्न, त्रण, त्रिक्तादि का
 स्वाद हुद नहीं रहता । की प्रकार के रस नीरस भावून पड़े है। संयोग विरुद्ध
 वस्तु (पूरा मनु) या पीर विष भी हाथ ती वस्तु के समान फस जाता है ।
 पुच्छ हुतावत, गुल्म, क्लीर्ण , ज्वर, कुष्ठादि रोग शान्त ही जाती हैं । बाह्य
 की महाविधि पैरे जाती यह कहाहुआ करी है। ही कनसर्ग गुच रहे तथा की
 भी अधिकारी की प्रदक्षि न करे । ”

१- उ० उ० वी० २६ क

२- उ० प्र० ३६-२७ उ०

ध० ए० में महासुद्धा की प्रक्रिया ए० प्र० के सुत्य ही उपलब्ध है। इसी वतिरिक्त धेरण्ड ने दृष्टि को प्रमथ्य में रली का विनिर्णय निर्रिक्त किया है- "प्रमथ्येतिरिक्तम्" ।

ए० १० में महासुद्धा पर टिप्पणी- "बीनिगत ने महासुद्धा की प्रक्रिया वतिरिक्त परम्परा के बाधार पर उत्तेज की है और यही प्रक्रिया ए० प्र० में भी उपलब्ध है। ए० प्र० और ए० १० में सुत्यन्ध का निर्रिक्त है, प्रमथ्य में दृष्टि रली का नहीं है किंवा ध० ए० में उत्तेज है। वत्तानि के अनुसार यह धेरण्ड परम्परा में प्रवृत्त है जो कि "रीगर्णिका" के पृष्ठ ७७ पर वक्ति है ।"

धेरण्ड के वतिरिक्त किसी भी प्रन्कार ने प्रमथ्य में दृष्टि रली के विनिर्णय में रली नहीं किया है। तथा सुद्धा के वन्ध्यास के कुण्डलिनी प्रभावित होगी वन्ध्या नहीं वन्ध्या भी उत्तेज नहीं किया । स्वात्माराम ने महासुद्धा के वन्ध्यास में वित्तुत रूप के वर्णन किया है किन्तु वाञ्छ उत्पत्ति होता है।

ए० प्र० और ध० ए० में महासुद्धा के वन्ध्यास की प्रक्रिया ही समान है किन्तु धेरण्ड ने दृष्टि को प्रमथ्य में रली का उत्तेज किया है । महासुद्धा के वन्ध्यास के कुण्डलिनी शक्ति के वाग्रत होने के विनिर्णय में स्वात्माराम ने वित्तार के उत्तेज किया है। धेरण्ड के अनुसार दृष्टि प्रमथ्य में रली है महासुद्धा का वन्ध्यास कुण्डलिनी पर वित्तम्ब के प्रभावी होगा तथा वह वाञ्छ भी है किन्तु ए० प्र० की सुत्यन्ध की प्रक्रिया वरत है तथा कुण्डलिनी की शीघ्र प्रभावित होगी । सुद्धा में रेल, प्ररु, सुम्ब प्राणायाग की दोनों ही वस्तुति

१- ध० ए० ३१४-६ तक

२- ए० १० पृ० १२

कहते हैं इसलिए प्राणायाम के अन्तर्गत में सुखान्त का रहना परमावश्यक है ,
 नहीं तो प्राणायाम की रक्षा प्रभावी नहीं होना । का: उपर्युक्त उक्तियों
 के आधार पर हम यह समझते हैं कि महाभुजा के अन्तर्गत में ८० प्र० की प्रक्रिया
 सम्पन्न हो अधिक उपर्युक्त मान ली जाती है ।

मनीषुता

पै० ६० में मनीषुता का अर्थ- " योनी विरन्धर
 एवं कर्णों में स्थिर ऊर्ध्व स्थित होकर शुष्क द्वारा वायु की रीति । योनी
 मनी भुजा होती है । यही योनी के यो रोग नष्ट हो जाती है । "

यह भुजा का ८० प्र० में उत्पन्न नहीं है । प्रत्येक
 कस्या में शुष्क रहना यह सम्पन्न की उपवास्यता का अन्तर्गत है । साधारण
 एवं मध्यम कीटि का शक्ति यह भुजा की सम्पन्न नहीं कर लेता । इसलिए अन्य
 प्रणियों में सकल उत्पन्न नहीं है ।

उद्दिष्टानवन्ध

अनानविन्दुपनिषद् में उद्दिष्टानवन्ध- " उदर
 एवं नाभि का भाग पीठ के सम भाग । यह उद्दिष्टानवन्ध, मूलस्थी हाथी के
 स्थिर स्थिति के समान है । "

वीरभुजसुनिषद् में उद्दिष्टानवन्ध- " शुष्क रीति
 कही हुए कथा हुआ प्राण उद् ५२ शुष्कता में वा पृथ्वी का कारण है यत्राज
 है किन्तु हाथी के पैरों की शुष्कता है पक्षी । और शुष्कता है योनी की पीठ

१- पै० ६० म० ७

२- अनानविन्दुपनिषद् ५० ७६

कही हूँ उदर की पीठ की बीर की कमा कुम्भ पर ठोड़ी लापि बीर उदर के
 ली: ली: प्राण रोक करे । उस क्रिया से उदर के कम्पन विकार दूर होते हैं ।

योगसिद्धीपनिषद् में उद्धृत्यानन्द की प्रक्रिया
 योगसुखसुपनिषद् के समान ही दी है ।

लिख दीक्षा में उद्धृत्यानन्द- " नाभि से ऊपर
 बीर नीचे की बाहुल्य की कही उद्धृत्यानन्द कही है, यह दुःख के लक्ष्य की
 नाश करने वाला है उदर की पीठ बाहुल्य की बीर नाभि से ऊपर मान में
 बाहुल्य की यह उद्धृत्यानन्द है बीर कुम्भ कपी नाश का नाश करने वाला
 यह केशवी लिख है ।

बी योगी निरूप्य इस कम्प की बार बार कम्पाए
 करेगा, उच्छा नाभि का हृद होकर वायु लिख ही बालिका । यदि योगी कः
 नाश इस कम्प का कम्पाए की ही निरूप्य की कुम्भ की बीर उच्छा
 कठोरतम पिच्छ प्रत्यक्ष होना बीर रूप की मुक्ति होनी । इस उद्धृत्यानन्द
 के समान है योगी का तरीर बाप ही लिख ही बालिका कम्प ऊपर ही बालिका
 बीर रोगों का निरूप्य बाप ही बालिका ।

गीरदाकृति पद्धति में उद्धृत्यानन्द- " लिख
 कारण उद्धृत्यानन्द है रुका हुआ प्राण वायु कहीं भी फिलाम न करे उच्छा
 कर कुम्भना में गति करता है उच्छा कारण वहाँ कुम्भ कपी कय के ऊपर लिख
 केषा यह कम्प कहा जाता है उदर से परित्यक्त बीर नाभि से नीचे इस कम्प का
 स्थान योगी कही है कक्षिक यह कम्प उच्छा स्थान में करना योग्य है ।

१- योगसुखसुपनिषद् पृ० ४७ से ५० तक

२- योगसिद्धीपनिषद् १।१०४ से १०८ तक

३- लिख दीक्षा ४।७२ से ७६ तक

४- गीरदाकृति पृ० ४२

अध्यायी

नाभि के ऊपर तथा नीचे का भाग ऊपर में
 का भाग इस प्रकार ऊपर की ओर होवे, उसे उद्धृत्यामन्थ कही है,
 कुण्डली का नीचे की ओर के लिए वह पिंड के समान है। गुरु द्वारा बरखा
 है उसे हुए इस बन्ध का निरन्तर बन्धाव की ही बुद्ध भी वरुण की भाव।
 नाभि ऊर्ध्वार्ध भाग की ओर कर पीठ में लाये, उसे इस बन्ध की उः पाद
 बन्ध निरन्तर बन्धाव की ही निरन्तर कुण्डली की बीज है। उद्धृत्यामन्थ
 में उद्धृत्यामन्थ उत्तम है। उसे करने के पधियाँ की ही गति करे कुण्डली
 द्वारा प्राण वसितक में है नाभि के समान में नीचे होया है। यही स्वाभाविक
 गुणित है।^१

४० २० , ४० १० १० , ४० २० १० १०

में उद्धृत्यामन्थ की प्रक्रिया एवं उनके होने वाले लक्षणों का उत्तम गौरव
 काति के समान ही उपलब्ध है।

उद्धृत्यामन्थ के बन्धाव के परिणाम के विषय
 में स्वामीश्वराम व धारण में कोई शक नहीं दिया है, ब्रह्म उद्धृत्यामन्थ का
 वास्तव कृष्ण के नहीं ही होता, इसलिए उद्धृत्यामन्थ की उत्था की ओर के
 ध्यान रहता वास्तविक है। बिना परिणाम के बन्धाव किया गया ही उद्धृत्यामन्थ
 प्राण गुण एवं कुण्डली पर प्रीति तथा अपरिमित बन्धाव है स्वामीश्वर व
 परिणाम बिना परिणाम साधक के लिए कभी भी प्राप्त सिद्ध ही करता है।

१- गौरव काति कुं ४२, ४३

२- ४० २० ल ४४ है ४०

३- ४० १० १० ल ल

४- ४० २० ३१ ४४ है ४४ ४४

५- ४० १० ३१, ६

उद्दिष्टमान वन्ध के द्वारा, कुत्सुक एवं उपरान्त यन्त्र, तिल्ली, वृद्ध एवं लघु एवं दीर्घ वर्तों पर पड़ता है जिससे इसके बन्ध्यास के समस्त विकार दूर होकर स्वस्थ होती है। इस वन्ध के बन्ध्यास के कारण मुक्तान्न छोड़ पकता है तथा वर्तों पर निश्चार्ण का कार्य नियमित करती है। उद्दिष्टमानवन्ध के साथ वायु शुष्क होता है इसलिए प्राणीत्वान्न होकर प्राण पुष्पुन्ना में प्रीति कर जाती है। इसलिए इसके बन्ध्यास के दीप्ता, पावन, सारक का कार्य स्वयं ही होता रहता है। वायु एवं रक्तवायु के रोगियों को इसका बन्ध्यास नहीं करना चाहिए।

वातन्धर्वन्ध

अ्यानविन्दुपनिषद् में वातन्धर्वन्ध- " शिर का कः भाग जिसके द्वारा जीवन नीचे जाता है संकुचित करके वन्ध करने से वातन्धर्व वन्ध होता है। इस वन्ध से कण्ठ के रोग नष्ट होती हैं। "

योगकृष्णसुपनिषद् में वातन्धर्व वन्ध- " पुरुष के वन्ध में कण्ठ के ऊँची द्वारा वायु का निरोध करने से वातन्धर्व होता है। अधोभाग में मूलवन्ध द्वारा गुदा का बाधन कर और ऊपर से वातन्धर्व वन्ध द्वारा कण्ठ का ऊँची बना कर में उद्दिष्टमानवन्ध द्वारा प्राण को नीचे ली प्राण पुष्पुन्ना में चढ़ने लगता है। इस प्रकार कण्ठ का ऊँची करने से सदा फिलहा दोनों नाड़ियों का स्थान ही जाता है। कण्ठ में पीछे पल का विरुद्ध कर वहाँ वायु को रोक कर वन्धन करने जाता होने से इस वन्ध को कथ्य कहते हैं। "

योगशिलोपनिषद्^३ में वातन्धर्ववन्ध- योगकृष्णसुपनिषद् के समान है।

जिह्व संश्लिष्टा में वातन्धर्व वन्ध- " गला शिरा

१- अ्यानविन्दुपनिषद् ५० ७० व ७५

२- योगकृष्णसुपनिषद् ५० ५१

३- योगशिलोपनिषद् ५० १०६, ११०

बात की वधि के लिए की प्रत्यक्ष पर निम्न ४०, ४० की वातम्भर वन्ध करी
है । कण्ठक कण्ठ के नीचे बहुत टकता है, नाभि कण्ठक रिक्त कठारमर उल्ला
पान करती है । ४० की रीति के लिए वातम्भर वन्ध करना उचित है । ४० की वन्ध
कण्ठक के बहुत पूर्व कण्ठक में नहीं बाधा, योगी स्वयं एवं वन्ध के पान करी
चिरवीर रखा है । "

यह वातम्भरवन्ध छिड़ी की छिदि देने वाला है,
उपलब्ध छिदि बाधाएँ योगी की उल्ला निम्न वन्धार करना उचित है ।

गीरणावधि में वातम्भर वन्ध- " यह कण्ठ
स्वाम में होता है की रीति की उल्ला है, गीरणावधि बाधा का वन्ध
करता है । कण्ठ का उल्ला करी प्राण वायु की गति की रीति वातम्भर
वन्ध है । ४० की वन्धकतापु, गीरणावधि पूर्व व वन्ध में नहीं निम्न एवं वायु
क्यापि विरुद्ध नहीं होता है । "

गीरणावधि में वन्धार के वातम्भर वन्ध-
" कण्ठ नीचे कुकाकर प्रत्यक्ष के बार बहुत वन्ध पर ठीकी की प्रत्यक्ष के स्वाम
करी । यह वातम्भर वन्ध कुकाकरवा एका प्रत्यक्ष नाक है । "

४० रीति एवं ४० रीति में वातम्भर वन्ध की
प्रतिष्ठा गीरणावधि के उल्ला है ।

४० प्र० में वातम्भर वन्ध- " कण्ठ की उल्ला

१- छिदिछिदि ४१ ४० , ४२ व ४३

२- गीरणावधि ४० ४३

३- गीरणावधि ४० ४४

४- ४० ४० ४१ ४२

५- ४० ४० ४१ ४२ ४३

हो जाता है।^१ **

वातन्धर बन्ध की प्रक्रिया ६० प्र० एवं घेरण्ड संहिता में समान रूप से दी गई है।

६० प्र० में वातन्धर बन्ध से होने वाले मुख्य एवं सम्पूर्ण प्रभावों का उत्तम स्वात्माराम ने किया है।

“ वज्जनाति हि तिरावातन्धरागोमि नीपलम् ।

ततो वातन्धरीबन्धः कण्ठ दुःखोपशान्तः ॥ ”

यह नादियों के समूह और नीप की और गिरने वाले कपास कुतर के बल-बल्य की रीकता है। इसलिए यह वातन्धर बन्ध गले के रोगों को नष्ट करता है। इस प्रकार का उत्तम घेरण्ड संहिता में नहीं है।

वातन्धर प्रक्रिया की वातन्धर नाम के योगी ने किया गया है जसा वातन्धर योगीश ने उलका वाचिष्कार किया था। इस प्रकार का निर्दिष्ट छठ रत्नावली है उपलब्ध होता है।

वातन्धर बन्ध का बन्ध्यास^२ लेकर होगा जसा लड़ होकर होगा यदि बैठ कर होगा तो कान से बाधन से बैठे पाय। इस प्रकार का उत्तम घेरण्ड एवं स्वात्माराम ने नहीं किया है। शुष्क प्राणायाम के बिना वातन्धर बन्ध का बन्ध्यास नहीं हो जाता लेकिन शुष्क के बन्ध्यास के विषय में भी कोई भी उल्लेख नहीं किया है और नहीं बन्ध्यास की संख्या ही निर्धारित की है। वस्तु, घेरण्ड एवं स्वात्माराम की वातन्धर बन्ध प्रक्रिया सम्पूर्ण प्रतीत होती है तथा लगे किसी किसी को हानि भी हो सकती है।

१- पे० सं० ३।१०, ११

२- ६० प्र० ३।७०

३- ६० २० पु० १३०

मुख्यबन्ध

व्यानविन्दूपनिषद् में मुख बन्ध

“ प्राण और अपान के एक होने से यह मुख का साथ कर्मात् माना कम ही जाती है। एक प्रकार मुख बन्ध के ऊतार बन्ध्या से मुख भी मुक्त हो जाता है। यही द्वारा योनि- स्थान की दवाकर मुक्त का वाहुन करते हुए अपान वायु की ऊपर की ओर से वायु । यह मुख बन्ध होता है । ”

योगकुण्डलुपनिषद् में मुख बन्ध

“ अपानवायु की ऊर्ध्वगति की वत्ता ऊर्ध्व- गति ऊपर की उठाये । मुक्त के वाहुन करते से मुख बन्ध होता है । ”

योगसिद्धीपनिषद् में मुखबन्ध

“ मुक्त की यही से दवाते हुए वायु का वत्ता वाहुन कर तथा बार बार वायु की ऊर्ध्वगति करे । प्राण अपान^{नाद} एवं विन्दु मुख बन्ध के द्वारा एक ही जाने से योग की सिद्धि हो जाती है। स्वयं कोई संशय नहीं है । ”

त्रि संख्या में मुखबन्ध

“ पाद मुख - यही से मुक्त मार्ग की वाहुन

१- व्यानविन्दूपनिषद् पृ० ७३ , ७४

२- योगकुण्डलुपनिषद् पृ० ४२

३- योगसिद्धीपनिषद् १।१०४, १०५

कहे पीछे की वीर यह है कपानवास की वाक्यार्णव कहे ऊर्ध्व की है वायु कपान्द्र प्राण के वायु सम्बन्ध की इसकी पुनः बन्ध कहे की यह बन्ध बरा-बरण का नाश करने वाला है ।

इस कहेका बन्ध है कपान वीर प्राण की एक की वीर इस पुनः बन्ध के प्रभाव से योनि कुटा वायु की चिदि की जायेगी । योनि कुटा के चिदि योनि से चिदि लीनों की इस उधार में इस चिदि की कपान है । ७० पुनः बन्ध के प्रभाव से वायु की योनि वीर के कपान्द्र स्थिति में कपान्द्र की स्थिति में वीर वाक्यार्णव में नग्न होगी । यदि उधार उधार है पर योनि की कपान की ही पवित्र योनि की निर्जन प्रेता में पुनः स्थान में इस पुनः बन्ध का कपान्द्र करना उचित है ।

पे० ८० में प्रत्यक्ष

“ वायु वीर की रही है (वीरिणी) की स्थिति हृद कुटा प्रेता की वाक्यार्णव की । नामि प्रान्द्र की मेरुवण्ड की वीर कपान्द्र उधार पायी रही है उपस्थ की पुनःवाक्यार्णव दशा है । पुनःवाक्यार्णव की नष्ट करने वाली बन्ध कुटा है । ”

“ ७० प्र० में उपस्थ पुनःबन्ध कुटा की प्रक्रिया निमित्त प्रक्रिया है की “ व्यानविन्दुपनिचद् , वीणकुण्डलपनिचद् एवं वीण-विहीनपनिचद् ” लीनों की प्रिण विधि है । ”

पे० ८० में उल्लिखित प्रक्रिया में “ नामिप्रान्द्र मेरुवण्ड कुटीः लीण्य कपानः ” नामि प्रान्द्र की मेरुवण्ड की वीर कपान-

१- इस उधार ४१ की-की

२- पे० ८० अ० २२-२३

पूर्ण लगाने । नाभि ग्रन्थि लगाने की प्रक्रिया उल्लिख्यानबन्ध में पूर्ण ही उल्लिखित है, स्वच्छिद्र मुक्त बन्ध में यह आवश्यक प्रतीत होता है।

६० प्र० में प्रक्रिया एवं रोगी वाले वाय्यात्मिक लक्षणों का वर्णन विस्तार से किया है। किन्तु मुक्तबन्ध का बन्ध्यास किंचित् कम्य तथा किसी बार किया जाय इसका उचित स्वात्माराम एवं धारण दोनों ने ही नहीं किया है जिसके कारण मुक्त वर्णन सिद्ध ही रहती है।

“धृं वलिण्डा गुल्फेन वृद्धबन्ध समाधीत्” -
बायीं रही है उपस्थ की वृद्धापूर्वक वबायीं । धारण का यह लक्षण भी मुक्त बन्ध की स्थिति में आवश्यक है क्योंकि मुक्तबन्ध रोगी रोगी, लाने, पालने एवं किसी भी वायन से पैठी दूर लाया या उखाटा है तथा सभी वायनालों में लगा हुआ मुक्त बन्ध बाधकारी होता है।

यह मुक्त वृद्धिवाय लक्षण को दूर करने में सिद्धकारी है। मुक्तबन्ध के रोग- मूत्रित, प्रसूत तथा प्रसूत को दूर करने में उदाहरण है। मुक्त प्रसूत के रोग बर्त, मान्दर को छोड़ नष्ट करती है। इसी रात दिन में किसी बार किया जाय बाधकारी ही सिद्ध होगी।

महाबन्ध

योगसूत्रोपनिषद् में महाबन्ध

“ बायीं पैर की उड़ी की योनि स्थान में लगाने , वलिण्डा पैर को फेलाकर दोनों हाथों से धृष्टता से फाँटें । ठोड़ी की धृष्ट पर बसती दूर वायु का पुरक करे तथा व्यासक्ति धृष्ट करे दूर रोक कर दे । इस प्रकार बायीं पैर करने के पश्चात् बायीं पैर व्यास करे । दोनों हाथों से व्यास करने से महाबन्ध होता है । ”

वहिरंग योग में महाबन्ध

“ वाम पाद की हड्डी को गुदा वीर लि के मध्य भाग (सीपन) में दृढ़ता से बसा दे वीर दक्षिण पाद की वाम पैर पर रख दें, अब पुरक करके बालन्धर बन्ध लगा दें यथावधि शुष्क रख कर लें: लें: रोक करें, वहीं वहीं ऐसा लीज मिलता है कि महाबन्ध की करी उम्र पाणिनी के द्वारा पुत्र बन्ध की पुनः पुनः ताड़न करता रहे तथा महाबन्ध वीर महाबन्ध में शुष्क के सम्य पन की शुच्यता में प्रविष्ट कर देने का विधान भी मिलता है । परन्तु ऐसा अभी ही ऊँचा है । अब बाधक को इन दोनों कार्यों के कार्य रूप का साक्षात्कार ही हुआ ही । इसमें भी वाम तथा दक्षिण पार्श्व के रोक पुरक की संख्या भी समान रखनी चाहिए । ”

शिव संविता में महाबन्ध

“ वाम पाद को प्रकार के दक्षिण पाद की वाम ऊरु पर स्थित करके वीर गुदा वीर योनि की बाहुल्य करके अपान की ऊर्ध्व करके समान वायु के साथ सम्बन्ध करके वीर प्राण वायु की व्योमुक्त की, यह बन्ध प्राण अपान के ऊर्ध्व गति के हेतु बुद्धिमान बाधक के प्रति कहा है । यह महाबन्ध शिव मार्ग का दाता है वीर योगीजन नादियों के इस बन्ध से ऊपर गमन करता है । ”

इसके बन्धाव है प्राण वायु शुच्यता के मध्य में स्थित होगा वीर इस महाबन्ध के प्रभाव से शरीर पुष्ट रहना वसिष्ठ पंजर वीर शरीर के इस बन्ध पृष्ठ वर्गीय प्रविष्ट ही जाती । योगी का पृथक् सम्बन्ध है पूर्ण वीर बानन्धित रहना ।

१- वहिरंगयोग पृ० ०३२३

२- शिवसंविता ४। ३७ से ४२ तक

गौरजा पद्मि में महाबन्ध

“ वाम पाद की छड़ी से योनिस्थान की रीक कर के दक्षिण पाद की वाम ऊरु पर स्थापित करें तब बाह्यर की करके वायु की प्रसृति कर मन की पुष्टि में प्रवृत्त करें । यथास्थिति कुम्भ करके ली: ली: रत्न करें । इसी प्रकार वामांग में बन्ध्या करें , दोनों कर्णों के बन्ध्या की संस्था समान करें । यह समस्त गतिगुणों की गति ऊपर की ओर करने वाला महापिंडि वाक्य महाबन्ध है । ”

ह० १० में महाबन्ध

“ वाम फुद की छड़ी से योनि स्थान की दवायें दायाँ पैर बायीं कंधा पर स्थापित करें , फुद द्वारा वायु प्रसृति करके हुर ठोड़ी की हृदय पर स्थापित करें तथा मुखबन्ध करें तथा मन की पुष्टि में लायें । इसी प्रकार वामांग से करके के पश्चात् दक्षिणांग से भी करें । यह योनिगुणों के लिए महापिंडि वाक्य है । ”

ह० सं० च० में महाबन्ध

“ ह० सं० च० में महाबन्ध की प्रक्रिया गौरजा पद्मि के समान उपलब्ध है । ”

ह० प्र० में महाबन्ध

“ बायें पैर की छड़ी की योनि स्थान में लायें बायीं कंधा पर दायाँ पैर रखकर बैठे तथा वायु की प्रसृति करके पित्त

१-गौरजा पद्मि पद्मि पद्मि पु० ४६

२- ह० १० सं० ४६ है ४६

३- ह० सं० च० २६ क

की कुछ स्थान पर प्रकृत है। हमें और योनि की छुट्टि करी मन की नाही के मध्य प्रविष्ट करे फिर वायु की व्यापक धारण कर ले: ले: रेफ करे। अन्य विद्वानों का मत है कि बालम्बर बन्ध में कण्ड का लोचन करे। क्योंकि राक्षस पर स्थित किया का बन्ध ही प्राप्त होता है। यह उन बाधियों को उन्मत्तता का निरोध है, यह महाबन्ध कस्य महाबिधि का देने वाला है।"

यह महाबन्ध कात के पात की हृदय में प्रतीत करे है। यह विषयी (बालम्बर उच्छिद्यमान और प्रसन्न) का कस्य है, यह (महाबन्ध) 'प्रधान' की प्राप्ति कराने वाला तथा (दीनों बाधों के मध्य में स्थित त्रि स्थान) केदार में मन की स्थित कराने वाला है।"

कि० ६० में महाबन्ध

"बायीं लड़ी है योनि स्थान (गुहा प्रीत) का निरीध करे दाहिं पर है कस्युर्क बायीं लड़ी की दवाही हुर ले: ले: योनि का बालुन करे। बालम्बर बन्ध है प्राण वायु की धारण करे। ली महाबन्ध करे है। यह महाबन्ध उन पुत्राओं में है कि यह पुत्रावस्था ली कस्यु की दुर करे है। यह महाबन्ध है ली मनीष कि ली है।"

ह० प्र० में महाबन्ध की प्रक्रिया विस्तृत रूप है। उल्लिखित है तथा महाबन्ध है लीन बाध बाध्यात्मिक ली शरीरिक लानी का भी वर्णन किया है। दीनों की प्रक्रिया में कस्यु यह है कि स्वात्माराम ने दाहिं पर की बायीं बंधा पर ली तथा परण्ड ने दाहिं पर की बायीं बंधा के स्थान पर बायीं पर की लड़ी पर ली का लीन किया है। परण्ड ने बालम्बर

१- ह० प्र० अ० २० से २३ तक

२- कि० ६० अ० १४ से १६ तक

बन्ध लगाने की संस्तुति दी की है किन्तु ठीड़ी हृदय पर रही वायव्य कमा नहीं सका कोई उद्योग नहीं किया है। स्वात्माराम ने ठीड़ी को हृदय पर स्थापित करने के लिए उल्लेख किया है। दोनों ने प्राणवायु पुरक करने के लिए वर्णन किया है किन्तु स्वात्माराम ने व्यावहारिक कुम्भक करते वायु को ज्ञेयः ज्ञेयः रोक करने के लिए भी निर्दिष्ट किया है, घेरण्ड ने कुम्भक की रोक का कोई उल्लेख नहीं किया। घेरण्ड के अनुसार बन्ध्यास करने से वायव्य प्रभित होकर शक्ति भी उठा जाता है। स्वात्माराम महाबन्ध की वामांग तथा दक्षिणांग से करने के पक्षधर है, किन्तु घेरण्ड का इस विषय में ध्यान नहीं गया है। वस्तु, यह निर्विवाद बातें या उल्लेख है कि घेरण्ड की महाबन्ध मुद्रा की प्रक्रिया वर्णन है।

महाविध

योगसूत्रोपनिषद् में महाविध

“ महाविध में स्थित होकर चित्त एकत्र कर वात्सल्य बन्ध लगाकर वायु को पुरक द्वारा भरकर कुम्भक में स्थित रहना चाहिए, इसके प्राण वायु का दोनों नासा गुटों को होकर पुनश्चात् में ऐसी से स्फुरण हो जाता है। इस महाविध का योगी दिन रात बन्ध्यास करते हैं। ”

वशिष्ठ योग में महाविध

“ महाबन्ध मुद्रा में स्थित होकर पुरक करते कुम्भक कर हैं, जब दोनों बन्ध लगाकर क्षैतिज भूमि पर दक्षिण वाम की रक्कर बायें पाद धरित उद्दीर को ऊपर उठा दें, जब उड़ी पर पुनः पुनः धीमेन प्रीति का वाहन करे । ”

१- योगसूत्रोपनिषद् पृ० ११५, ११६

२- वशिष्ठ योग पृ० ३२४

बहिरंग योग की दूसरी विधि

फुमाइन लाकर पुरे उल्लि कुम्भ करके
 धूमि से उठाकर धूमि पर फुमाइन की पुनः पुनः ताड़न करे। क्योंकि प्राणित
 महाविध की क्रिया में जब शरीर की शक्तों के उदारे उठाया जाता है तब सुत-
 पन्थ स्थिर नहीं रहता, फुमाइन लाकर करी से यह दोष नहीं जाता, काः
 फुमाइन लाकर करना ही उत्तम है। इसे भी पैर बलकर करें, प्राणावायुओं
 की संख्या समान रहे।

लिख संख्या में महाविध

“ है भिक्षुनेश्वरी। जपान और प्राण
 की एक करके महाविध लिख योगी उदर की वायु से पूर्ण करके दोनों स्थिर
 कार्य पायुर्वा का ताड़न करे। इसकी सभी महाविध कहा है। जो मनुष्य इस
 उत्तम महाविध को गुप्त करके सर्वदा ब्रह्माचार होगा उसकी जन्म मरण नाशनी
 वायु छिड ही जायेगी। ”

शरीरस्थ फु में जो देवता हैं वह वायु के
 ताड़न से सम्पादमान होती हैं और महाभावा कुण्डलिनी देवी केरास कार्य
 ब्रह्मस्थान में लग जाती है। महाकुटा और महाबन्ध जिना पैध के निष्कर्ष हैं।
 उल्लि योगी की कनपूर्वक क्रम से तीनों मुद्राओं का ब्रह्माचार करे। जो यह मुद्रा
 बन्ध और पैध तीनों का ब्रह्माचार दिन में बार बार करेगा वह हः पाठ में
 निश्चय मुक्त पर विजय प्राप्त करेगा। इसमें कोई नहीं है।

गौरदा पदवि में महाविध, लिख संख्या के
 समान है।

१- लिख संख्या ४१४२ से ४८ तक

२- गौरदापदवि पृ० ४०-४८

“ ६० १० में महाविध जुआ की प्रक्रिया
जिह संज्ञित के समान है किन्तु ६० १० में बाह्यधर वन्ध के साथ करने का
विधि है । ”

प्रोक्लियस में महाविध की विधि में ८ बार
हीन हीन घण्टे के पर्याप्त करने का विधि किया है-

“ वष्टया द्विती केशु यामि यामि विने विने । ”

“ ६० १० १० में महाविध की प्रक्रिया जिह
संज्ञित के समान बाह्यधर वन्ध के साथ की है । ”

६० २० में महाविध

“ यह प्रकार रूप सावधान है कृष्ण ली
पुरुष के किता निष्कस है उषी तरह महाजुआ की महावन्ध की महाविध
के (वन्ध्याव के) किता ज्यो है योनी की महावन्ध में स्थित होकर फिर
लगाकर बाह्यधर वन्ध (कण्ड जुआ) लाकर वायु की प्रकृष्ट द्वारा हीन
कर उषी कृष्ण की विधि के स्थिर करना चाहिये, कभी स्थिर (फुट्टी)
की प्रकृष्ट पर ली वायी के पाम कर (फुट्टी पर योनि स्थान है ली लड़ी
वाले बायी पर स्थित कृष्ण लक्षर की कीर उठाकर) ली: ली: साक्षि करना
चाहिये । उषी प्राण वायु कथ्य नाड़ी (पुष्पुम्मा) में बली लगी है लक्ष
कन्ध पूर्व कीर वन्धि (पुष्पुम्मा) के वन्ध्याव के कृष्ण लक्षर की प्राप्ति होती
है । ”

परजावस्था उत्पन्न (ली विधि

१- ६० १० म ४६, ६०

२- ६० १० १० २५ म

३- ६० २० म २४ के २० तक

वायु रहित) होने पर वायु का रोक करना चाहिए । इसी मर्यादा है किताब
क्याप करने से मर्यादितियां प्राप्त होती हैं। इसी मर्यादा नष्ट हो जाती
है, अतः वायु का रोक होने लगी है और कर्म नष्ट हो जाता है। उत्तम कर्म
वायु मर्यादा का क्याप करते हैं । मर्यादा, मर्यादा और मर्यादा - ये
तीनों मर्यादा परम गोपनीय हैं। मर्यादा और मर्यादा (मर्यादा) की नष्ट करने वाली
है, मर्यादा की मर्यादा है, और मर्यादादि विधियों की प्रदान करने वाली
है ये मर्यादा प्रारंभ प्रारंभ (तीन तीन कर्म के बाद) प्रत्येक दिन वायु वायु की
वायु है । ये मर्यादा की नष्ट करने वाली है और पापों के लिए वायु के उत्पन्न
है मर्यादा पापों की नष्ट करने वाली है । इसके क्याप के फल मर्यादा (मर्यादा-
निष्ठ) है क्याप विधि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । "

के० ६० में मर्यादा

" मर्यादा के किताब की लकी का रूप-मर्यादा
और लकी मर्यादा है, लकी की मर्यादा के किताब मर्यादा और मर्यादा निष्ठ
है प्रदान मर्यादा का क्याप कर उद्विग्न मर्यादा कर मर्यादा है वायु की लकी,
लकी मर्यादा लकी है । "

की मर्यादा प्रविष्टि मर्यादा के लकी मर्यादा
और मर्यादा का क्याप करते हैं ये मर्यादा, मर्यादा में लकी हो जाती है, मर्यादा
मर्यादा और मर्यादा उन पर मर्यादा लकी करती है। यह परम मर्यादा है, लकी मर्यादा
रहता चाहिए ।

के० ६० में मर्यादा

" मर्यादा मर्यादा निष्ठ मर्यादा

१- के० ६० मर्यादा के २० लकी

कहापुत्रा, महाबन्ध दोनों महाविध के बिना नहीं हैं।

ये दो में कहापुत्रा के स्थान पर- पुत्र बन्ध
महाबन्ध महाविध बिना-पुत्र बन्ध और महाबन्ध, महाविध के बिना दोनों
निष्कल हानि का निर्दिष्ट किया है।

महाविध कन्याधर्म में ६० प्र० कार ने कहे
महाबन्ध में स्थित हीकर बालन्धर बन्ध बनाकर प्रकृति करी हुए रिफरों (पुष्टी)
की शक्तों की क्रिया करी हुए प्राण का पुनर्जन्म में से बाने की प्रक्रिया बन-
नाही है तथा दिन में बाठ बार करने के लिए कहे दिया है।

ये दो कार ने महाविध के कन्याधर्म में महा-
बन्ध में स्थित हीकर उद्धियानमन्ध का कृष्ण करने की संयुक्ति की है। दोनों
की मुद्राओं में बालन्धर और उद्धियान कर्णों का कन्तर की है ही बाय ही
परम ने पुष्टी की प्राप्ति करने का निर्दिष्ट नहीं किया है और न दिन में स्थित
बार कन्याधर्म किया बाय कन्या की कीर्ति उत्ति है।

स्वात्माराम ने महाविध के कन्याधर्म के
कहाविधियों की प्राप्ति एवं शरीर के कुरियों का दूर होना तथा बाह्य
कहे होना शरीर की कमीरी के कारण कम्पन उत्थापि का नष्ट होना
बापि का उत्ति किया है।

परम ने पुनर्जन्म नष्ट नहीं कन्या तथा पुनर्ज-
न्म का कल्पना नहीं करती है, का उत्ति किया है। स्वात्माराम ने यह
मुद्रा के द्वारा कर्तव्य प्राप्ति के लिए की कहे किया है।

१- ६० प्र० अ० २४

२- ये दो अ० अ० १०

विपरीतकरिणी

योगसूत्रोपनिषद् में विपरीतकरिणी

“ विपरीत रूप से करने से कुछ रोगों का उरण करके नित्याभ्यास युक्त होने से बढाग्न प्रदीप्त होती है। वायु की प्रकृताहार भक्षण करना चाहिए। यदि बल्पाहार होगा तो शरीर का क्षय होगा।

प्रथम दिन तिर नीचे पैर ऊपर करके एक पाण करना चाहिए और एक एक पाण प्रतिदिन बढ़ती हुई एकका इ: पाच तक करने से बली-पक्ति दूर हो जाती है तथा एक प्रसर करने से योगी कायचित्त हो जाता है।^१”

वहिरंग योग में विपरीतकरिणी

“ दोनों छेलियाँ नीचे तिर भूमि पर बिहार गद्दे जादि कोमल वस्त्र पर धर कर पैरों उल्टि शरीर उठाकर पाद तल बाकात की नीचे करके शिर नीचे छेलियों पर तोल दें- शरीर सीधा रहे, उस स्थिति में कायचित्त रहे। ”

दुधरी विधि

पीठ के वल भूमि पर बैठकर कटि की छाथों का सहारा लेकर, ग्रीवा तथा कन्धों पर शरीर को थोड़ा तिरखा रखी हुई खड़ा कर दें (जैसे खानेपान में करती हैं) फिर बालन्धर बन्ध लगा कर दृष्टि पैर के अङ्गुली पर स्थिर कर दें। प्रथम विधि से यह दुधरी विधि

१- योगसूत्रोपनिषद् पृ० १२२ से १२५

२- वहिरंग योग पृ० ३२६

देख है क्योंकि शिर पर कावचक पदाव नहीं पड़ता है । ”

“ शिव संज्ञिता में विपरीतकरिणी की प्रक्रिया “ योगसत्त्वोपनिषद् ” के समान ही है । ”

गौरक्षा पद्धति^२, ह० २० एवं ह० सं० चं० में विपरीतकरिणी मुद्रा की प्रक्रिया “ योगसत्त्वोपनिषद् ” के समान है ।

ह० प्र० में विपरीतकरिणी

“ दिव्य तालु में स्थित चन्द्रमा है जो कुंडली (लीम कहा चल) प्रसिद्ध होता है, उसे नामि में स्थित जलसत्त्वक सूर्य ग्रह होता है, इसी तरीक़े पुढावस्था की प्राप्ति करता है। यह (कुंडली) की सूर्य मुद्रा में निरुद्ध है बलने के लिए गुरु के उपरीत है दिव्य करण (विपरीतकरिणी) की जानना चाहिए । करीबों जालों के वर्ण है यह सातव्य नहीं है । ”

“ ह० प्र० एवं पे० सं० में विपरीतकरिणी मुद्रा की बन्ध्या विधि “ योगसत्त्वोपनिषद् ” के मुख्य है । ”

ह० प्र० में - नित्यमभ्यासमुक्तास्य पठरा-

१- शिव संज्ञिता ४। ६६ से ७१ तक

२- गौरक्षा पद्धति ५० ४८, ४९

३- ह० २० सं० ६७ से ७३

४- ह० सं० चं० १६ क

५- ह० प्र० सं० ७६ से ७७

६- ह० प्र० सं० ७८ से ८१

७- पे० सं० सं० ३। २६ से ३१

८- ह० प्र० सं० ७८ से ८१

‘निविदिधिनी’ नित्य के बन्ध्यास से चठराग्नि प्रतीत्य होती है तथा वसिष्ठ पक्षि के ‘अध्यालोच्य’ न दुखी । याम भागं तु यो नित्यमन्वेष्यते स तु कात-
 फि । क्वात् इव (कुडा) से इः भाग के बन्धर कुरियां एवं फी फी दिताई
 नहीं देते हैं । इस तरह एक प्रहर एक बन्ध्यास करने वाला मृत्यु पर विषय प्राप्य
 कर खाता है ।

धो ६० में विपरीतकरिणी

‘कुडा व वाधेनित्यं चरा मृत्यं व नात-
 ये । स सिद्धः सर्वलोकेशु प्रत्ये पि न सीदति - इस कुडा के नित्य बन्ध्यास
 करने से मृत्यु भय और बुद्धावस्था पीड़ित नहीं करती है और वह (वाधक)
 सब लोकों में सिद्ध तथा प्रत्ये में ऊपर ऊपर है ।’

वैसाफि इसके नाम से विहित है कि यह
 ‘विपरीतकरिणी’ कुडा क्वात् उल्टे रूप से करने पर- शिर (वन्ड) की
 धूमि पर और नामि केन्द्र (पूर्व) की पैरों सहित बाकात की और करने
 से होती है। यह कुडा बाकात बिज पर में ‘शीर्णासन’ नाम से विख्यात
 है । बाधुनिक हठयोगियों ने इसे वासनों की पैरों में ही नहीं रखा बल्कि
 इसे सर्वोत्तम वासन कहा है। विपरीतकरिणी की शीर्णासन कहना उक्ति
 प्रतीत नहीं होता ।

१- ‘शीर्णासन’ नाम की शिर कक्षा
 मत्तक नीचे की और तथा पैर ऊपर की और करने से किसी भी वासन की
 ‘शीर्णासन’ क्या या करता है, जैसे कपासासन, वृश्चिकासन, ऊर्ध्वपद्मासन,
 क्षीमुत पद्मासन आदि किन्तु विपरीतकरिणी कुडा पर एक विशिष्ट कुडा
 है, जिसके बन्ध्यास में शिर, उदर एवं पैर सीधे धूमि पर सम्पर्क होने चाहिए

क्या शरीर की स्थिति रती के लिए हाथों की कृतियों से नर्तन को उत्तार
मिलता बाहिर । शरीर का पार तिर क्या दोनों हाथों की कृतियों पर
रखा है।

२- विपरीतकरिणी मुद्रा को शीर्षांजन
कर्म का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि उद्योग की प्राचीन परम्पराओं में
‘ शीर्षांजन ’ नाम का कोई भी उल्लेख नहीं है।

३- बाहुनि उद्योगियों में शीर्षांजन के
कल्याण के लिए तीन फटे क्या की संसृति नहीं की है जबकि उ० प्र० में
एक मात्र (तीन फटे) एक कल्याण का निर्दिष्ट किया है- ‘ याम मात्रं तु यो
नित्यमभ्यस्येत् सः काश्चित् । ’

४- शीर्षांजन के कल्याण में मोक्ष बहुत
माना में करने का निर्दिष्ट नहीं है जबकि उ० प्र० में विपरीतकरिणी के वर्णन
में - ‘ वाहारीवृत्तस्तस्य उवाचः पाथकस्य च ’ वाक् की बहुत वाहारी करना
बाहिर ।

उद्योग तन्त्रों की दृष्टिगत रती हुए ‘ शी
विपरीतकरिणी की ‘ शीर्षांजन ’ नाम देना स्वीकार नहीं है ।

विपरीतकरिणी उद्योग वाक्ता की उच्चा-
वस्था की मुद्रा है। वाहाराण कल्याण के कर्म विपरीतकरिणी मुद्रा की उनेः
उनेः करना ही पर्याप्त होता । उ० प्र० में कल्याण की तीन फटे एक मात्र
बाहिर । स्वात्माराम का यह निर्दिष्ट शरीर के नेत्र, कर्ण , नासिका मुख एवं
मस्तिष्क जैसे अंगों की देखी हुए उचित नहीं मान पड़ता है। एक मुद्रा
की अधिक कर्म एक उद्योग के नेत्र, मुख एवं मस्तिष्क पर रत का वर्णन

१- उ० प्र० ३।८१

२- उ० प्र० ३।७६

भार कौन विस्ती परिणामस्वरूप से कसक विकारी हो जाती है। तब ज्योति कुछ दिनों में बनी जाती है। व्यावहारिक में ऐसा देखा गया है। इसे कन्यास के 'दृष्टि विमान' (स्ट्रीना) विलुप्त नष्ट हो जाती है। वस्तु वस्तु कन्यास कृतवी वाक्य के मत से ही करना चाहिए।

योनिमुद्रा

यह मुद्रा का किसी ग्रन्थ में 'अणुसीमुद्रा' तथा किसी में योनिमुद्रा नाम से उल्लेख किया है।

दर्शनोपनिषद् में अणुसी मुद्रा

“ स्वस्तिक वासन से बैठकर वपानवायु को ऊर्ध्व करते हुए प्रणव वप के द्वारा मन को ओः ओः समाहित करे। हाथों से कर्णादि छन्दियों को सम्यक् रूप से जंठों से कानों की तथा कानिका, मध्यमा से मुक्त को डकते हुए प्रसरन्त्र में प्राण की प्रकृत्यपूर्ण धारण करते हुए वानन्दानुभव करें। ”

बहिरंग योग में योनिमुद्रा

“ चिदासन से बैठकर हाथों से जंठों से दोनों कानों तर्जिनियों से नेत्रों की मध्यमाओं से दोनों नसों को बाँध कानिका तथा कनिष्ठा से दोनों बीचों की बजाएँ, इसके पूर्व 'काली मुद्रा' द्वारा स्वास को वन्दर खींच कर उदरगत 'वपान' से मिलाएँ और उक्त रूप से सब द्वार बन्द करके ओं का मानसिक वप करते हुए ऐसा दृढ़ संकल्प करें कि बागी हुई कुण्डलिनी चोरी का भेदन करती हुई सलग्रह कन्त में गारही है। ”

१- दर्शनोपनिषद् ६।३२ से ३५ तक

२- बहिरंग योग पृ० ३२८

पै० ६० में योनिमुद्रा

“ पितावन लगाकर बैठें और दोनों हाथ के कूठों से कानों को, दोनों हाथों की उर्वनिर्धों से नेत्रों को, कन्यमाखों से नासिका छिद्रों को आम्बिका तथा कनिष्ठा से मुत को आम्बुद्विषित कर दे ।
 “ काकी मुद्रा ” द्वारा प्राण की छींकर अपान से निताई और शरीरस्थ षट् चक्र का ध्यान करता हुआ “ हूँ ” कर्मा “ हंघ ” मंत्र से कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर उनके हाथ ही बीजात्मा की सहायता में ले जाय । उस समय यह स्थान्त भावना करती बाहिर कि “ मैं तिम के हाथ शक्ति सम्पन्न होकर पुनर्पुनर्क विचार कर रहा हूँ तिम शक्ति के संगम से ही मैं आनन्दमय स्वयंसे प्रस हो गया हूँ ” यह योनिमुद्रा है । ”

इसके बन्धास से ब्रह्महत्या , धृषणहत्या, सुरा-पान , गुहस्फामन् आदि पापों से मुक्त हो जाता है। संसार के सभी महापाप उपपाप आदि इस योनि मुद्रा से मिट जाते हैं इसलिए मुमुक्षा वर्गों को इसका बन्धास करना बाहिर ।

योनिमुद्रा का उत्तेज उठयोग के रूप ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है।

पै० ६० में योनिमुद्रा का कोई उल्लेख नहीं है।

वज्रोक्षीमुद्रा

व्याधिन्दूपान्धित में वज्रोक्षी

“ हमरी के द्वारा बिम्बा में विषर में प्रीत करने के पश्चात् स्त्री की योनि में तिम के प्रीत होने पर भी उसकी बिन्दु का

चारण नहीं हो जाता । जब तक शरीर में विन्दु वर्तमान है तब तक मृत्यु भय भी नहीं है ।^१”

योगतत्त्वबीपनिषद् में ब्रजोत्ती स्वरूप

“ ब्रजोत्ती का अभ्यास भी योगी करता है वह विदियों की प्राप्ति करता है। और उसे ही योग की विधि प्राप्त होती है । ”^२

बहिर्ग योग में ब्रजोत्ती पुनः-प्रक्रिया

“ कैप्टर नाम की रकड़ की बनी एक विशेष नखिका कैपिटों की दुकानों से मिल जाती है। यह ४-५ नम्बर की १४-१५ केंचुल लम्बी है और उसके लगभग में ४-६ केंचुल तक बायाम रोगन, पूरा व तिल का तेल लगाकर भूविन्द्रिय के छिद्र में डाल कर ऊपर मसाने की ओर प्रविष्ट करें- हे बाद, प्रथम पियस २-३ रंग ही है जायें । जब नित्य एक दो रंग मसाने की ओर अधिक बढ़ते हैं, यदि पीढ़ा प्रतीत हो तो सुरक्षित बाहर निकाल दें । इसका अभ्यास हो जाने पर फिर ७-८ नम्बर का कैप्टर लेकर पुनर्विष्ट होति से बढ़ावें । अभ्यास हो जाने पर उक्त रंग बैठकर नीति क्रिया से केशिकाओं को उठाकर मूलाधार को चिकोड़ कर कैप्टर के द्वारा बाहर की वायु का वाकर्षण करें (इसे फुत्कार करना कहते हैं) इसके पश्चात् इसका भी अभ्यास हो जाने पर १२ नम्बर के कैप्टर से अभ्यास करें । जब जब का पात्र, लोटा, गिलास आदि पर कर कैप्टर जब में डाल कर फुत्कार विधि से जब को मसाने की ओर लेवि जब जब ऊपर पहुँच कर मूत्र को बाध लेकर निकल जाता है। जब रकड़ की इस नखिका से जब का वाकर्षण भी प्रकार होने लगे तब लोटे वा बाँदी के कैप्टर से जलवाकर्षण का अभ्यास कर दें । इससे सुविधा रहती है। जब के समान दूध, तेल का भी वाकर्षण किया जा

१- ज्ञानविन्दुपनिषद् पृ. ८३-८४

२- योगतत्त्वबीपनिषद् पृ. १२६

कहा है, ये सब प्रकार के सुवास के सब सुख को साथ लेकर बाहर निकल जाता है ।
 वह सब " सुवास " की वस्तु भी सब लेती है । "

हिन वसिता में कशीसी

" अन्न मुदिमान बाधक सब करके विधानपूर्ण
 स्त्री की योनि से सब की शिवालय में बाधपूर्ण करके सभी शरीर में प्रवेश करे
 और सभी विन्दु की निरीक्षण करके हिन बाधन की यदि देवासु विन्दु सभी स्थान
 से की ही योनि-मुद्रा से निरीक्षण करके ऊपर से बाधपूर्ण करे और उस विन्दु
 की बाध भाग में स्थित करके बाधपूर्ण हिन बाधन विचारण की फिर गुह्य-
 कीर्तन द्वारा योनि में गुह्य करके उच्च उच्चपूर्ण अन्न योनि में हिन बाधन की और
 सब से बाधपूर्ण की बाधपूर्ण करके स्त्री के सब की बाधपूर्ण करे । उसकी कशीसी
 मुद्रा करती है । "

गीरसा पदति में कशीसी

" सब करके सब सब शक्ति की
 शक्ति कीर्तन करके ऊपर लेनी है कशीसी हिन योनि में कशीसी मुद्रा हिन
 कीर्तनी है । "

कशीसी कशीसी की (१४ कुल सभी तीसरी
 उदाहरण की: स्त्री: हिन हिन में (प्रविष्टि) ऊपर ऊपर कशीसी बाध प्रवेश करे ।
 (उदाहरण कशीसी की बाध पर) स्त्री कीर्तन में सब विन्दु (कीर्तन) शरीर से
 कशीसी प्रवेश करे उदाहरण कशीसी ऊपर तीसरी कशीसी स्त्री में गिरि हिन कीर्तन
 की सब वसिता विन्दु की बाधपूर्ण कर (कीर्तन) कशीसी स्थापन करे । सब प्रकार

१- कशीसी कीर्तन पृ० १२६-१२७

२- हिनवसिता ४/६१-६४

३- गीरसा पदति पृ० ५०, ५१

को विन्दु की रक्षा करता है वह योनी पुस्तु पर विषय प्राप्त करता है। विन्दु के पास है पुस्तु की रक्षा है अतएव प्राप्त होता है ॥

स० १० में पञ्जीली

“ कुण्डलिनी तन्त्रि उद्बोधन, नाडी परि-
 शोधन एवं प्राण-व्यान का समाधीन करने के लिए पञ्जीली मुद्रा की जाती
 परम्परा के अनुसार कुम्भान बाध एवं बाधिकाओं के लिए पञ्जीली की प्रक्रिया
 प्रवर्तित की जा रही है। अन्त्यास के प्रारम्भ में एक नक्षत्र अन्तर प्रीत के लिए
 त्रि के सामने रहे और दूसरे नक्षत्र त्रि के अन्तर प्रविष्ट करके दोनों की
 बीच में तथा वायु का वाहक करे । ”

उक्त स्वर्ण, चांदी, ताम्र और लोह की लकी
 नक्षत्र की प्रारम्भ है अन्तर प्रविष्ट करे । यह २०(बीस) कुम्भ तन्त्रो पुनः
 गीत एवं पञ्जीली की वाहक । यह “ लोह ” की वाहक की नक्षत्र तन्त्रो-
 निर्वी के लिए उपयुक्त है। उक्त (त्रि में) प्रविष्ट करके फिर वायु की धर
 रूप में लोहा या लकड़ा है । ”

स० १०० में पञ्जीली

“ बाह्य कुम्भ की लोह की लकड़ी तथा
 गीत लकड़ा है वह त्रि के अन्तर धीरे धीरे प्रविष्ट करे । ठीक प्रकार अन्त्यास
 होने पर वायु का वाहक करे वायु के पर्याप्त रूप बाध का वाहक करे
 वायु के पर्याप्त रूप बाध का वाहक करे । अन्त्यास पूर्व ही पर लकी की
 योनि में प्रीत कर विन्दु एवं त्रि को भी पुनः त्रि द्वारा योनी लकी अन्तर
 है बाध । ”

स० २० में पञ्जीली

“ की योनी पञ्जीली मुद्रा (का अन्त्यास)

जानता है, वह योगशास्त्र के नियमों के पालन के बिना भी अपनी इच्छा से जीवन धारण करते हुए भी विधि प्राप्त कर लेता है । (वज्रोली) साधक के लिए जो दुर्लभ वस्तुओं का भी वर्णन करता हूँ । एक तो प्रथम और दूसरी यजमती स्त्री । ”

ह० प्र० में वज्रोली

“ सम्भोग के मत्वात् वीर्य को चारित्र्य होने से रोकने के लिए उसे (विन्दु) को धीरे धीरे बाहुचित कर उसे ऊपर से नीचे के लिए स्त्री छिद्र जैसा पुरुष (ज्ञेः ज्ञेः) जैसी तरह बन्द्यास कर तो वज्रोली मुद्रा छिद्र हो जाती है। शीशे की बनी हुई नली से उपस्थ के छिद्र में वायु के संचार के लिए फुत्कार करें । यदि सम्भोग के समय में विन्दु स्थिति होने की स्थिति में जायाव तो भी उसे बन्द्यास से ऊपर की ओर सीक्ना चाहिए । चारित्र्य होने वाले विन्दु का ऊपर बाकर्णण कर उसकी रक्षा करनी चाहिए । इस तरह विन्दु की जो योगी रक्षा करता है वह मृत्यु को पीत लेता है। वीर्य का स्थान जैसा चारण ही मृत्यु और उसके शरीर में धारण करना रक्षा ही जीवन है ।

विन्दु को शरीर में धारण करते रहने से योगी के शरीर में दिव्य गन्ध की उत्पत्ति होती है। जब तक शरीर में वीर्य स्थिर है तब तक कास का भय नहीं रहता- शरीर बीर्ण-बीर्ण होकर नष्ट नहीं होता । मनुष्यों का पित्त शूल के वाजित है । जीवन शूल के वाजित है। इसलिए वीर्य और मन दोनों की विशेष रक्ष से रक्षा करनी चाहिए । (योगान्यासी को वज्रोली मुद्रा के द्वारा) ज्युमती स्त्री के एवं और विन्दु की रक्षा करनी चाहिए । योगान्यास में निपुण योगी को उपस्थ के छिद्र से एवं और विन्दु दोनों को ऊपर बाकर्णण करना चाहिए । ”

१- ह० प्र० अ० ८२ से ८३

२- ह० प्र० अ० ८४ से ८६ तक

पे० व० में पञ्जीटी

“ दोनों हाथों की कुदृष्टांशुनी धूमि पर टेढ़ी
वीर दोनों पैर व फिर की बाकात में ऊपर की वीर (बाकात में) उठा है ।
आन्वियों ने इसे कुदृष्टांशुनी उभित प्रकृत करने वाली वीर जीवन देने वाली बलीली
मुता कता है । ”

यह योग मुद्रा योगियों के लिए सुविधि देने वाली विकारादिणी, चिदि प्रदायिनी तथा वैद्य है, इसके प्रसार के विन्मुक्ति होने के कारण बाधक उपस्थितितत्त्व में उत्पन्न होता है और जब विन्मुक्ति पर विभव प्राप्त करती जाती है तब मुक्ति पर कौनसा कार्य नहीं हो जाता, यदि भीमी पुरुष भी मुद्रा का अभ्यास करे तो उसे भी सभी चिदिया प्राप्त हो सकती है ।

धर्म के अनुसार प्रतीति व्यापक है मुसली
 भी काम उठा लेती है । सभी मुसली की योग्य रक्षा होती है । यह भी सभी
 लोग की इच्छा व्यापक की जाती है । यह मुसली की सर्वविधायक बताया है ।²

४० र० में बज्जीखो पर निम्न टिप्पणी प्राप्त है—

४० र० की बज्जीखो बापों पर शरीर का भार समुचित नहीं है। बापों की बांहों की जोर से बज्जीखो को धकेल कर पोट की जोर से गर्दन पर लटाने से शरीर की ऊपर उठाने से बज्जीखो मुड़ा जाती है। यह प्रक्रिया है कि वह प्रक्रिया है शरीर की ऊर्ध्वनामो करने के लिए बजाय पड़ता है। डा० फिलीप बरमाउ बज्जीखो प्रकाशन उपरीष्ठ बिबर मूल्यांक ३०

कै० सं० की सजीवी प्रक्रिया सामान्य प्रणाली
 में की गई प्रक्रिया के विस्तृत विवरण के अर्थों पर कुछ उदाहरण तथा टिप्पणी की गई

२- वि० सं० ३१३६

२- पे० सं० ३१४६ के अन्तर्गत : यह सीमा स्थिति भी बीतापुर पीठ दिये

हम संस्कृति संस्थान, बरेली के प्रकाशित थे० सं० में सदस्यिता उपलब्ध है ।

है बाने से विन्दु विधि हीमी वैवाकि परम्परागत हठयोग ग्रन्थ 'हठ २०', हठप्रदीपिका एवं तिल संखिता में कहा है। तांकि प्रणासी में वज्रोली की दो प्रक्रियाएँ दी गई हैं। --

एक प्रक्रिया हठयोग की है और अन्य क्रिया योग की। हठयोग की वज्रोली मुख्य रूप से मेरु की ओर ऊँच करती है और क्रिया योग की एक जाग्रत करने की ओर, किन्तु प्रथम प्रक्रिया से परिणाम होना होता है। (विचार स्कूट वाफ योग - वॉल्यूम २० नं० १ मार्च १९८१) हठयोग के प्राणाग्निक ग्रन्थ हठ ५० एवं तिल संखिता में वज्रोली की प्रक्रिया में बीच बाटें रख गई हैं। श्रीनिवास ने इसे विस्तृत में वर्णन किया है। हठ ५० के १६ श्लोकों से कई २ वर्ग मिलते हैं, कुछ तांकि रुद्रिवादी हठयोग में तांकि प्रक्रिया को बताने में संकोचशील है। संवत्स धाम से प्रकाशित हठ ५० में मेरु प्रक्रिया का कोई उल्लेख नहीं दिया है।

१-

One is from Hathyoga and the other Kriya yoga. The Hath Yoga Vajroli is mainly directed towards maithuna and the Kriya yoga technique towards Chakra awakening. Results are reached much sooner with the first method. (Bihar School of Yoga Vol. XX No. 3 March 1981) . These are certain gaps about the technique of Vajroli in standard texts like HP and S.S. and Sriniwas described this topic in detail. There are certain slokas in H.P. which are giving double meaning. They support that these processes have no references a member of the fair six. (Refer HP Kaivalyadham p.108) HR , P- 132.

2. Gh.S. Technique is entirely different from the Vajroli as it is commonly understood and described. Curiously enough this handstand with leg turned upward is said to result in Bindusaidhi and traditional Vajroli as in HR and H.P. & Shiv Samhita. In tantric system, there are two techniques given for Vajroli.

H.R. P. 132

ह० प्र० वीर प० सं० की वज्रोत्ती प्रक्रिया परस्पर विलक्षण भिन्न है। वैष्णव की वज्रोत्ती कुण्डलिनी शक्ति को बाध करने की साधना प्रक्रिया है। प० सं० की प्रक्रिया का उद्देश्य करने से साधक का विन्दु निरिक्त रूप से ऊर्ध्वगामी होगा तथा साधनास्त रहने से वीर्यपात नहीं होगा। किन्तु ह० प्र० की वज्रोत्ती प्रक्रिया 'स्वान-वमन' के समान है- कुत्ता जिस प्रकार वमन करके पुनः भक्षण करता है वही प्रक्रिया ह० प्र० में अपनायी है। पहले स्त्री सम्भोग करके स्त्री की योनि में साधक वीर्यपात करे फिर वीर्य वीर रूप का पुनः लिंग नाद के द्वारा उसका वाकर्षण करे। जब हठयोगी की शक्ति की ही आवश्यकता है तो मैथुन क्यों करता है। मैथुन से शक्ति नष्ट होगी।

ह० प्र० की प्रक्रिया की हठयोग में प्रविष्ट करने से मैथुन का मार्ग प्रतस्त करना पात्र है। हठयोग वीर स्त्री सम्भोग एक दूसरे के विपरीत है। स्त्री सम्भोग करता स्त्री की योनि में वज्रोत्ती का उद्देश्य करने से वीर्य क्षय होकर शक्ति का प्राप होगा जबकि हठयोगी की शक्ति की निरन्तर आवश्यकता है। हठयोगी जिसकी साधना निम्न भूमि की है वीर उल्टे स्त्री के साथ वज्रोत्ती का उद्देश्य किया तो जल का पात्र होगा। साथ ही हठयोग वैसी पवित्र परम्परा से विश्वास उठ जायेगा वीर योगी उपवास का पात्र होगा। वस्तु, ह० प्र० की वज्रोत्ती हठयोग साधना में साधक की अपेक्षा बाधक होगी। स्पष्टिह प० सं० की वज्रोत्ती ही वैवर्क होगी।

सखीती एवं वनरीती मुद्रा

लिख संविता में सखीती मुद्रा

“ लिख संविताकार ने सखीती एवं वनरीती की वज्रोत्ती का ही पैद स्वीकार किया है- उनका एक मात्र उद्देश्य वीर्य स्वप्न करना है। ”

कमरीसी फेर

“ यदि उठाव देगवत वीर्य बल वीर एव विन्दु
का सम्बन्ध- स्त्री सम्बन्ध ही बाय वी उठनी कमरीसी कर्ती है । ”

कमरीसी

“ निच विन्दु- वीर्य स्त्रायमान ही वी वीनी
वीन मुक्त के बन्ध से कमरीय करे उठनी कमरीसी कर्ती है। यह वीनी वन्धी में
गीफोय है ।

कमपि कार्य एक समान है परन्तु उठा है कमरीसी
कमरीसी वी फेर है । एवविच वीनी वी उठित है उन कमरीसी- कमरीसी
मुक्तियों का सम्बन्ध करे । ”

गीरसा फेरि में कमरीसी

“ वी साम कमरीसी के है वी कमरीसी वीर
कमरीसी है है । वे कमरीसी के वी फेर है । गीवर के कण्डे (उपरि) बसाकर
उठनी मस्म बल में फिटाये । कमरीसी के छिद मैनुन करी साण मात्र मुक्त है बैठकर
वनी व्यापार कीकर वी- पुरुष स्वाम एवं वीनि मस्म सेफ करे । यह फेर-
मुक्तिय (वाधमाजी में) वहाँ वीन है वहाँ वीसा नहीं , वहाँ वीसा है वहाँ
वीन नहीं , यह मुक्त के सम्बन्ध में वीन उठित वीसा वी है । ”

गीरसा फेरि में कमरीसी

“ विनाशु वी मस्म धारा फिच वी उठ्यता

१- विन उठित ४।६५ है ६८ तक

२- गीरसा फेरि मु० ५२

हे कर्मकारा निःशरणा के कारण त्याग कर निर्भिकार कर्म धारा के प्रवण कर देवन करी है । यह योगाभिमता कपातिकी क्रिया है। इसे कपरीसी करी है ।
 यो गुरुभ्यः कपरीय- शिवायु का पान व नस्य तथा यज्ञीसी का कर्म्याच प्रविष्टिन करी है यही कपातिकी कपरीसी करी गई है । "

ह० २० में कपरीसी

" कपरीसी एवं कपरीसी यज्ञी ही यज्ञीसी की पर्याय मुद्रा है। योगी- योगिनी यज्ञीसी मुद्रा (मुद्रा) करने के पश्चात् स्वान पर नाय के गोवर के उपर्य की मस्त्र यह में बिस्तार देवन करे कर्म कार्य है मुद्रा होकर कपरीसी में बिस्तार कर बैठे ।

कपरीसी कर्म

शिवायु (समुद्र) की पित्त मिश्रित प्रथम तथा बाद को निःशर धारा की होकर कर्म की तीव्र धारा का प्रयोग करे । यह कपातिकी परम्परा का मर्म है । "

" ह० २० व० में कपरीसी व कपरीसी मुद्रा ह० २० के समान ही है । "

ह० ३० में कपरीसी

कपरीसी और कपरीसी यज्ञीसी के ही पर्याय हैं । यदि हुए नाय के गोवर के कण्डे की मस्त्र यह में हास कर सम्पन्न के नाय मुद्रा रति क्रिया है बिस्तार होकर बैठकर यज्ञी-गुरुभ्यः स्वान पर समान देवन करे ।

१- गीरसा कपति पु० ५२ अर्ण ५३

२- ह० २० अ० १०५ से १०८ तक

३- ह० २० व० २० तक

४- ह० ३० अ० १०५ से १४ तक

योगियों ने कब्रों की शिवा की महत्त्व की बात है, यह कल्याणकारी योग है, जो भीम और भीम दोनों प्रदान करता है। यह योग पुण्यदातावी, धैर्यवान्, तत्त्वदर्शियों और राम देव रहित लोगों को हो शिव होता है। जो कब्र- राम देव है मुक्त है, उनके लिए कल्याणकारी नहीं है।¹⁾

कमरीली प्रक्रिया

“बलि फिट बाहो फली धारा और धार
 की है रहित कर्म की धारा की स्थान कर शीतल मय धारा का ही शिव
 शिवा जाता है, जो लम्ब कापातिक यह है कमरीली कहा जाता है। कमरी-
 लितायु का शिव पान एवं नम्य करते हुए कब्रों की कल्याण करता है यह कल्याण
 कमरीली कहा जाता है।

(कमरीली) के कल्याण के निम्न पन्नायु
 की मत्त में निम्नकर उत्तमार्गों में (धिर, क्वाथ, वेग, कम्पी, कण्ठ और
 सुख बादि) में रूप करना बाहिर (बाह्य की) दिव्य दृष्टि ही जाती है।

स्त्री की ब्रह्मीली मुद्रा

६० प्र० में स्त्री ब्रह्मीली

स्त्री की ब्रह्मीली मुद्रा “ यदि स्त्री कभी
 तब कल्याण में निपुणता प्राप्त कर ब्रह्मीली मुद्रा के द्वारा पुरुष के बौर्य का
 बाहुल्य कर रूप की रक्षा करती है तो वह योगियों की। यह प्रकार स्त्री का रूप
 नष्ट नहीं होता, कर्म कभी नहीं है। इसी उद्देश में (मुद्राधार के अनुसार)
 नाम (सुख के ऊपरी भाग में प्रवेश कर) विन्दु रूप ही जाता है।

ब्रह्मीली मुद्रा के कल्याण के विन्दु और रूप का

हीकर कभी ही शरीर में एक ही वायु की कल्पना चिह्नित प्रदान करता है ।
 जो स्त्री योनि के छेदीय द्वारा स्व की ऊर्ध्व कर रखा करती है, यह योनिनी
 है, जिसका है और निरवयु लेवरी की छिदि होती है। योनिनी के कन्धार है
 यह छिदि को प्राप्ति होती है। यह योनि अत्यन्त पुष्कल है । योनि के योनि
 पर जो यह योनि योनि प्रदान करता है । "

पै० ६० में कलमीही कलमीही का उल्लेख कलमीही
 नहीं है ।

स्त्री कलमीही के पश्चात् कलमीही में कलमीही
 नाम के योनि है जो कलमीही (उपरी) की मध्य पानी में भित्ति कर कलमीही शरीर
 पर लेनी का निर्मित है और स्त्री मध्य लेवरी की विपुलि लेवरी कर है । यह प्र-
 क्रिया कलमीही परिस्थितियों में मध्य शरीर की ठण्ड है सुरक्षा करती है । जो
 कलमीही पश्चात् का परिवर्तन कर लेती है, उनके छिदि कलमीही कलमीही होती
 है । यह मुद्रा का कन्धार स्त्री-मुद्रा योनि ही कर लेती है ।

पै० १० में कलमीही पर टिप्पणी

" पै० १० में कलमीही उपरी के १० के उल्लेख
 में कलमीही की कलमीही का नाम स्वीकारा है । कलमीही कन्धार " छिदि-योनि "
 वाक्य है किया जाता है। यह नाम के योनि की मध्य शरीर के कुछ नाम छिदि,
 मध्य, वात, वराः मध्य तथा वायु पर लेवरी को कलमीही की जाती है, जो
 विपुलि करती है । यह क्रिया है ठण्ड एवं कलमीही के योनि योनिनी है रखा
 होती है। कलमीही उल्लेख कलमीही में नहीं किया है। किन्तु कलमीही में कलमीही
 उल्लेख कुछ निम्न है । "

वस्तुतः कलमीही मुद्रा कलमीही उल्लेख मुद्रा के

अन्तर्गत है उसका वास्तव चिन्तन करता कुण्डलिनी वागर्ण है कोई सम्बन्ध नहीं है । यह मुद्रा तो यमरोही मुद्रा में बायीं शारीरिक फलन को दूर करने के लिए एवं शरीर को ऊर्जा से बचाने के लिए एक प्रक्रिया मात्र है ।

यमरोही

“ यह यमरोही प्रक्रिया का ही यह भाग है । इसकी तांत्रिक प्रक्रिया एवं विस्तृत वर्णन पृ० १० के परिचय भाग (इन्द्रीकृत) में मिलता है। यह “ शिवाभ्युदय ” नाम की स्वतन्त्र मुद्रा है। यह तांत्रिक कार्य है जिसका उद्देश्य शिव संस्थिता में भी है। प्राचीन समय में हमें कभी तक ध्यान करने वाली योगी यमरोही का प्रयोग करते थे । कुछ परिस्थितियों में यमरोही से पावन संस्थान स्वस्थ रहता है। ध्यान के अभाव में रक्त प्रमण एवं हृदय पर प्रभाव पड़ता है। रक्तवायु अवाक गिर जाता है। यमरोही के प्रयोग से रक्त संस्थान स्वस्थ रहता है। वैज्ञानिक डॉक्टरों ने यह प्रस्तुत कर दिया है कि यमरोही (शिवाभ्यु) में जीवीच (२४) प्रकार के हास्यान्व है ।”

यमरोही का विशिष्ट प्रयोग विधि

“ है पार्वती । जब छिदि देने वाली क्रियाएं करता हूँ और शास्त्र पानने वालों द्वारा विचारपूर्ण कार्य मात्र करता हूँ । स्वर्ण, रक्त, ताग्र, कणिका, पीतल, लोहा, जस्ता, मिट्टी, काँच, पेषु (बाँस), मैत, रत्न, हड्डी, जम्ही और पत्तों का बना हुआ मात्र हो । इनमें से किसी भी प्रकार के मात्र में बाधक शिवाभ्यु का धारण करे । है देवि । मिट्टी का उत्तम तथा ताग्र धातु का मात्र सर्वोत्तम है ।

हारे (शारदुक्त) कड़े, तिष्ठत पदार्थ न

१- पृ० १० पृ० १२४

२- विचार सूत्र बाक योग वीर्यम १६ नं० १ पृ० ३६ व ३७

३- वारोग्य का अमृत बाधन शिवाभ्यु पृ० ३६१ से ३६२

हानि वाला नगरहित । सुषाण्य एवं वायुविक मोहन करने वाला विविधिय साधक
 रात को मुनि पर हो जाय । चतुर्थ प्रहर में उठकर विविधी तथा उच्चाङ्गवाँ वाला
 साधक पूर्व दिशा की ओर मुख करके शिवायु उत्तर्ण करे और वादि वन्त की धारा
 को होकर मध्य धारा ग्रहण करे । शिवायु पान की यह उत्तम विधि है । है
 स्त्रि । जैसे चाप के मुख में और पुंन में बहर होता है वैसे ही मुख धारा के विषय
 में यह बात प्रसिद्ध है । शिवायु दिव्य वस्तु है कुदापा एवं रोग नाशक है। महा-
 योगी उसका पान करके अपनी साधना करे । ”

उठयोग में कमीली प्रक्रिया एक शरीर को
 निरोग करने तथा स्वस्थ रखने के लिए एक कर्तकारिक विधि है । यह शरीरगत
 समस्त परमाणुओं का मार्जन कर देती है। यह एक दिव्य रसायन है ।

शक्ति-वालिनी-मुद्रा

वहिरंग योग में शक्तिवालिनी मुद्रा

“ ब्रह्मचर्य से बँटकर दोनों नयनों से पुरु
 करके बन्दर वपान के साथ निता हैं । अब प्रयत्न करें कि उदरगत वायु कुचुम्मा
 के बन्दर प्रवेश करने लगे, उसके लिए शक्तिवालिनी मुद्रा कर्मात् मुद्रा का संकीर्ण-विकास
 करे । मुद्रा की ऊपर लीपे फिर डोला छोड़ दिया करें यह क्रिया है प्राण
 का प्रवेश कुचुम्मा में होने लगता है और कुण्डलिनी शक्ति पान उठती है । ”

शिव धरिता में शक्तिवालिनी मुद्रा

“ मुद्राधार कमल में लीपे हुए कुण्डलिनी शक्ति
 को बुद्धिमान साधक वपान वायु पर बाध होकर कर्मात् वपान की बलपूर्वक वाक-

ब्रंज कर बतायें । इस अभित्तालिनीमुद्रा को जो प्रतिबिम्ब करता है उसकी वायु की वृद्धि होती है तथा समस्त रोगों का इस मुद्रा से नाश होता है । "

गौरवा पद्धति में अभित्तालिनी मुद्रा

"वज्रासन करके हाथों से पैरों की एड़ी फाड़ कर कंधे स्थान की वृद्धि से लगाकर पीछे की तथा नाभि स्थान (मूल) की वाहुंजन कर कुण्डली को बताये इसका पूर्ण अभ्यास होने पर मृत्यु का भय नहीं है । बार पड़ो निर्भय होकर अभित्ता बालन कर तो कुण्डलिनी पुष्पुन्ना में प्रवेश करने लाती है । "

ह० १० में अभित्तालिनी मुद्रा

"एक बाज से बैठकर दोनों हाथों की इरुल पर रखें , कुली जाने की ओर तथा कुंडा पीछे की ओर कर तथा दाहिं नासा छिद्र से पुरु करके बाएँ कुल उन्नी ६ कुली पीछी अभित्ता नाडी को कुली की सहायता से बायें से दाहिं पुनार्यें । निर्भय होकर जो मुहूर्त पर्यन्त पुनान से कुण्डलिनी पुष्पुन्ना में बसी जाता है । "

ह० २० में अभित्तालिनी मुद्रा

"कुटिसांगी , कुण्डलिनी, मुक्ती, अभित्ता, ईश्वरी , कुण्डली वीर बहन्नी ये सभी उक्त कुण्डलिनी के पर्यायवाची है । किस प्रकार कुंजी द्वारा उत्पुर्नक कपाट को खोला जाता है उसी प्रकार उन्नीग

१- सिन संख्या ४।१०५-१०६

२- गौरवा पद्धति पृ० २६

३- ह० १० स १११ से ११४ तक

६ कल्याण है योगी कुण्डलिनी उभय है योग के द्वार को खोलता है । किन्तु मार्ग है निराश्रय- दुःखदिव्य इस स्थान- अवरन्ध्र में प्रवेश किया जाता है, उन्नी कुण्डलिना द्वार को खोलकर परमेश्वरी कुण्डलिनी को कल्प के ऊर्ध्व भाग में खींची रहती है, यह योगियों को योग प्रदान करती है, ज्ञानियों के लिए कल्याणकारिणी है। जो उसे जानता है, वही योग का ज्ञाता है । "

दुष्कर्मिणी तपस्विनी का वाक्पार सर्व के सुख है,
 वह तपस्विनी किसी द्वारा पण्डित-प्रभु की जाती है, वह योगी पुण्डरीक है, सभी
 कर्मों की मूर्ति । गंगा (बड़ा नदी) और यमुना (पिछला नदी) के मध्य
 में वाक्पण्डिता तपस्विनी के समान दुष्कर्मिणी निवृत्त हैं । उन्हीं वाक्पण्डिता का परमपद
 की प्राप्ति है ।

बीबी हुई चुकी कुण्डलियों की पूर पकड़ कर
 बनाना चाहिए । पर पिछा की स्थान कर उत्तमिक बाणकर स्थित की वाली
 है । सुवाधार में स्थित कुण्डलियों वणिजा नाया है वायु हीनी हुए प्ररु की
 विधि है सुवास्त और सुवास्त है कसब छे छे पण्टे तक परिधान मुचित है परि-
 वास्त (सुवास्त) की ।

सुविचित्र है एक बाह्यतः ऊपर पार क्षुब्ध
 बौद्धों की का स्थान है। यह नीचे की ओर खींचा है, उल्टी हुए चक्र के समान
 है (यथा की) चक्रासन के स्थित होकर दोनों पैरों की हड्डियों के पास हाथों
 के कुण्डला कुण्डल बनाकर इस चक्र का प्रसारण की। यह चक्रासन है बैठकर शक्ति
 प्राप्त करते हुए बीजों की मन्त्रा-कृष्ण प्राणागाम कर कुण्डलिनी की प्रस्ताव
 पाएँ। ”

“ नाथि- वेत में स्थित स्वयं का वाह्यन करे ।

एक तरह कुम्हलिली स्थिति का बालक करे। इससे योगी की मृत्यु का नय नहीं रहता। यही सुनिश्चित स्थिति का बालक करने से कुम्हलिली पुनर्जन्म में प्रविष्ट होकर पुनः ऊपर की ओर चले जाती है। ऐसा करने से कुम्हलिली पुनः बार से उसी कर्म पर प्रवेश करती है प्राणावायु स्पष्ट पुनर्जन्म में नहीं जाती है।"

उस बहन्मन्थी (कुम्हलिली) का भी कुछ है सीधी है, नित्य बालक करता चाहिए। उसी योगी रोगी है कुटकारा या बालक है। यही योगी कुम्हलिली की सेवाधि कर देता है, वह बणिमादि विधियों को प्राप्त कर देता है, अधिक क्या क्या पाय वह तब में ही कात की वस में कर देता है।

यही (बाह्य कर्मियों की वस में रहकर) प्रत्यक्ष का बालक करता है व उचित बाह्य-विहार का ध्यान करता है, वह स्थिति बालक मुक्त का उच्चावह करने वाला योगी एक मण्डल (४० दिन) में ही स्थिति मुक्त हो जाता है। कुम्हलिली का बालक कर योगी की विशेष कर्म से अपना कुम्हल का नित्य उच्चावह करता चाहिए, इसी उच्च कर्म (कात) का कोई कर्म नहीं रहता। मृत्यु पर विषय प्राप्त कर देता है।

" बिना कुम्हलिली बालक किये (शरीर में स्थित) ७२ हजार नाडियों के वस हीनन के लिए उनके प्रयात्नार्थ कर्म कोई उपाय ही नहीं है। योगियों के मृत कर्म्याह से बाह्य प्राणावायु और मुक्तावी के द्वारा कर्म्याह नाड़ी वस्तु ही जाती है क्योंकि कुम्हलिली के प्रवेश के लिए पुनः-मार्ग के रूप में प्राप्त हो जाती है। "

कर्म्याह के समय मन की सेवाधि में सीन करने

१- पृ० प्र० ३। ११२-११८ तक

२- पृ० प्र० ३। ११६-१२५ तक

पर निवारण की अवस्था में वायु को रुद्राणी, शम्भनी, तथा उन्मी अवस्था
हुम- विवहारिणी एवं सिद्धि प्राप्त करती है।

राजयोग के बिना पूरुषी (वायु) निता
(कुम्भ प्राणायाम) और मुद्रा (विवहाण होने पर भी) सीमित नहीं
होती । वायु को प्राणायाम की छी विधियों को कौशिकपूर्वक व्यास करना
बाहिर तथा वायु को मन की वृत्ति को अन्य विषय में नहीं लगानी चाहिए ।

बादिनाथ तिल की ने उन वर मुद्राओं का प्रका-
श किया है, जिनमें से प्रत्येक मुद्रा योगी को महासिद्धि प्राप्त करने वाली है ।
यही योगी मुद्राओं का साम्प्रदायिक (गुरु परम्परा से) उपदेश प्राप्त करता
है, वही वास्तव में गुरु है, वही स्वामी है, वही ईश्वर स्वयम् है। वायु उस
गुरु के वादित का अनुवर्ती होकर मुद्राओं का वापधानी से व्यास कर अणि-
मादि सिद्धियों की प्राप्ति करते हुए मुद्रा का वर्ण करता है ।

६० वं० में अवितवालिनी मुद्रा

“ मुद्राधार में कुण्डलिनी बाई तीन वर लपेट
कर सर्पिणी के रूप में होती है । उसकी सुप्तावस्था में योगी अज्ञानावस्था में
रहता है, जब तक ज्ञान न हो पाय तब तक व्यास करते रहना चाहिए । जैसे
कुंभी से तावा हुत्ने पर कपाट खुल जाते हैं, वैसे ही कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर
ब्रह्मरूप हुत्ता है। नामि को बल से लपेट कर स्कान्त में लुका व्यास करे ।
नन्नावस्था में लुका व्यास निश्चित है। ”

वासिस्त मर लम्बा, चार कुंठ चौड़ा सफेद
मुद्रायाम वस्त्र नामि पर रखकर कटिबन्ध में बांध दे । शरीर में भस्म लेपन कर

१- ६० वं० ३।४० से ४६ तक

सिंहासन से बैठकर, प्राण को धीकर अपान से बिठावें, जब तक बुधुम्मा
 द्वार से वायु गमन करती हुई, प्रकाशित न हो तब तक धरिणी मुद्रा से मुद्रा
 का आकुलन करता रहे। इस प्रकार स्वसन क्रिया रुकने से कुम्भक के प्रभाव से
 उपकार कुण्डलिनी वायुत हीकर मार्ग में लड़ी हो जाती है, इस शक्ति वालिनी
 मुद्रा के बिना योनि-मुद्रा सिद्ध नहीं होती है। शक्ति वालिनी मुद्रा के पश्चात्
 ही योनि मुद्रा का बन्धाव करे। है वण्डकापादि। इस मुद्रा को गोपीय रह
 कर प्रतिदिन बन्धाव करे।

“यस्य परम गोपीयं सर्वं वरा-नृत्यं को नष्ट
 करने वाली है। चिदि की वांछावां वांछे योगियों को एका नित्य प्रति बन्धाव
 करता बाधित। लगे विग्रह चिदि शक्ति की चिदियां प्राप्त होती है तथा
 समस्त योगों का नाश होता है।”

इ० प्र० एवं पे० ६० दोनों ही ग्रन्थों में कुण्ड-
 लिनी शक्ति को वायुत करने के लिए वासन, प्राणायाम तथा परिधान को
 आधार मानते हैं किन्तु फिर भी दोनों में निम्न भिन्नता है -

इ० प्र० में वज्रासन, मन्त्रिका कुम्भक, प्राणायाम

१- ऊँच परमाणुवा वरामरण वालिनी।

तस्मादव्याधं कार्यं योगिनिः चिद्विद्विद्विः ॥

नित्यं योऽव्यक्तो योगी चिद्विद्विद्विः को स्थिता।

तस्य विग्रह चिदिः स्वात् रोगाणां संशयो भवेत् ॥

- चैरुण्ड संलिता ३। ५६ व ६०, ऐन्दुति संस्वान एवं भी पीताम्बर
 पीठ, दक्षिणा से प्रकाशित पे० ६० में श्लोक वदिरिख्य प्राप्त
 है।

नाभि पर परिधान प्रयोग १ वास्तव्य सन्धा ४ क्षुब्ध बीड़ा । प्रतिदिन २ सुस्तर्ष
वन्द्यास का समय, ४० दिन (२० मण्डल) में उचित वास्तव्य की वधि । सन्धा
वास में शुद्ध वन्द्यास एवं वधि प्रकाशित करना ।

धे० ६० में- धिवापन, धृष्ट प्राणायाम, नाभि
पर २० वास्तव्य सन्धा बार क्षुब्ध बीड़ा परिधान । वस्त्रिनी मुद्रा में सन्धा
में वन्द्यास । योनिमुद्रा की उचित वास्तव्यी मुद्रा का वधि स्वीकार किया है ।

दीर्घा प्रयोगों की मुद्रा प्रक्रिया में कोई वन्द्यास नहीं
है । दीर्घा का मुख्य उद्देश्य वास्तव्य की वास्तव्य करना है। ४० प्र० में उचित-
वास्तव्यी मुद्रा है दीर्घा वधि सन्धा का उचित बार बार किया है तथा मुद्रा की
प्रक्रिया के प्रकरण में राक्षसीय प्रक्रिया और कुण्डलिनी के वर्णिकारी तन्त्रों का
प्रयोग वीक्षितपूर्ण नहीं । राक्षसीय प्रक्रिया में " पुष्पी " की वास्तव्य तथा
" भिन्ना " की प्राणायाम के प्रक्रिया में प्रयोग करना उपयुक्त नहीं है। यह प्रकरण
में क्रियात्मक वरुच, भाषा को तन्त्रायसो ही प्रयोग की वान्नी वीक्षित है ।
विशेष वास्तव्य की वधि उत्पन्न न हो ।

तडानी मुद्रा

धे० ६० में तडानी मुद्रा

" वस्त्रिनीत्वाय वास्तव्य वनाकर वधि वीर
उपर की तडानी के वधान किया करें । यह तडानी मुद्रा वन्द्यास-मार्ग की वधि
करने वास्तव्य है । "

यह तडानी मुद्रा का ४० प्र० तथा वन्द्यास वधि

१- धे० ६० ३।१००

२- ०० ३।१२२

३- धे० ६० ३।५०

योग प्रयोगों में उत्प्रेत नहीं है। यह मुद्रा की प्रति पश्चिमोत्तान वासन में उत्प्रेत-
यान बन्ध से ही जाती है।

माण्डुकी मुद्रा

पै० पै० में माण्डुकी मुद्रा

“ मुद्रा की बन्ध करके वायु में जिह्वा को
धुमाना चाहिए। (जिह्वा उल्टार से टपकते हुए) सुधारण का उः उः पान
करे। यह माण्डुकी मुद्रा कहलाती है। इसके बन्ध्याप है वसीपक्ति रोग, बातों
का स्वेत होने का दूर होता है। नित्य योगन की प्राप्ति होती है। ”

माण्डुकी मुद्रा का उत्प्रेत पै० प्र० में नहीं है।
इसकी प्रति खेरी या नवी मुद्रा से ही जाती है।

घेरण्ड संज्ञिता की पंचधारणा

पै० पै० में पंचधारणा प्रविष्टा

“ घेरण्ड संज्ञिता का कथन है कि पंच धारणाओं
के सिद्ध होने पर ऐसा कौन सा कार्य है जो कि सिद्ध न हो सके। इन धारणाओं
के सिद्ध होने से मनुष्य का शरीर से ही स्वर्ग में जाना जाना होता है। मनुष्य
इससे मनीषि और खेरीत्व को पा सकता है। ”

योगतत्त्वोपनिषद् में पंच धारणा

“ जिसका चित्त वायु से चित्त सुशुद्धा में

१- पै० पै० ३। ५१-५२

२- पै० पै० ३। ५३-५४

प्रीत कर जाता है उसके लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वाकाश इन पंच महाभूत सभी देवताओं की पंच प्रकार की धारणा ही जाती है ।^१

पार्थिवी धारणा

योगतत्त्वोपनिषद् में पार्थिवी

“(शरीर में) पृथ्वी है वातु पर्यन्त पृथ्वी का स्थान है। पृथ्वी चारकोण वाली बीच वर्ण की “ सं ” अक्षर युक्त है। पृथ्वी तत्त्व में वायु का आरोप करके और “ सं ” को उसमें युक्त करके स्वर्ण के समान वर्ण वाले क्युर्मुष ब्रह्मा का ध्यान करने से पृथ्वी तत्त्व बच ही जाता है ।^२”

पि० सं० में पार्थिवी

“ पृथ्वी तत्त्व का वर्ण हस्ताक्षर के समान बीच “ सं ” चौकीर वाकार और ब्रह्मा देवता है। योग बत है इसे उदय कर हृदय-पैठ में धारणा कर, पांच पक्षी प्राण का निरोध पूर्वक कुम्भक करे । इसे पृथ्वी मुद्रा कहते हैं । इसे ही सभी धारणा मुद्रा भी कहते हैं । इसके छिद्र होने पर योगी पृथ्वी बच हीता है। जो नित्य पृथ्वी तत्त्व पर धारणा करता है, वह मृत्यु को बीच कर छिद्र होकर पृथ्वी पर विचरण करता है ।^३”

वाय्वी धारणा

योगतत्त्वोपनिषद् में जल वाय्वी धारणा-

“ वातु है शुद्ध स्थान एक जल तत्त्व का स्थान

१- योगतत्त्वोपनिषद् पु० ८३ व ८४

२- “ पु० ८५ व ८६

३- पि० सं० ३। ५६

है। सर्व चन्द्र के रूप में 'व' बीज वाला है। इस वस्तु तत्त्व में वायु की आरोप करके 'व' की समन्वित करे और क्लृप्त किरीटधारी सुख स्फटिक के समान पीत वस्त्र धारण किये हुए भगवान् नारायण का ध्यान करे। इस प्रकार पाँच घड़ी तक करने से सभी पापों से मुक्त हो जाता है।"

ध० सं० में वस्तु तत्त्व की धारणा- 'व' का वर्ण रंग, चन्द्र, कुन्द के समान शुद्ध है। 'व' एका बीज, देवता मिश्र है। योग्यतः से कृमय में इसे एकाग्रचित्त से पाँच घड़ी तक कुम्भक द्वारा धारण करे। इसे वाष्पही धारणा करते हैं। इसके बन्धन से असुर पीड़ा नष्ट हो जाती है।

वाग्नेयीधारणा

योगतत्त्वोपनिषद् में वाग्नेयी धारणा

"हुता से कृमय तक अग्नि का स्थान है। अग्नि तीन कोण वाला एक वर्ण 'र' उत्पन्न होता है। अग्नि में वायु का आरोप करके और 'र' उत्पन्न की समन्वित करके तीन मैत्र वाहि वर पायक सहज वाचित्त के समान प्रकाशमान अग्नि में भस्म रमा कर प्रसन्न मन से भगवान् रुद्र का पाँच घड़ी ध्यान करे। यह अग्नि द्वारा भी भस्म नहीं किया जा सकता।"

१- ध० सं० अ० ५६

२- ध० सं० अ० ६०

३- योगतत्त्वोपनिषद् पृ० ६१ से ६४ तक

ध० सं० में वाग्नीवी धारणा

“ अग्नि नामि मे स्थितः । एका वर्णं रुद्र-
गोप कीदृ के तुल्य है । “ र ” अक्षर एका बीज है । वाकृति त्रिकोण है, रुद्र
एका देवता है। यह तत्त्व ऐशः पुंस्त्व दीप्तिमान् वीर सिद्धिप्रद है। योग से
ऐसे उदयकर चित्त की एकाग्रता से पाँच घड़ी तक कुम्भक करते प्राण की धारणा
करे । इसे वाग्नीवीधारणा कहते हैं। एका अम्यास होने पर काल-भय नष्ट हो
जाता है वीर इसके अम्यासी की अग्नि से मृत्यु नहीं होती । इसे वैश्वानरी
धारणा भी कहते हैं । ”

वायवीय धारणा

योगतत्त्वोपनिषद् में वायवीय धारणा

“ इन्द्र से प्रकृतियों तक वायु का स्थान है । यह
हः कोण का वृष्ण वर्ण वाला “ य ” अक्षर युक्त है। भरतु स्थान में “ य ”
अक्षर के शक्ति सर्वज्ञ विश्वोन्मुख ईश्वर का ध्यान करे । पाँच घड़ी तक ऐसा
करने से वायु गमन की शक्ति प्राप्ता होती है वीर साधक वायु से मृत्यु को प्राप्त
नहीं होता । ”

ध० सं० के अनुसार वायवीय धारणा

“ वायु का रंग लाल वीर धुरंधरे के समान काला होता
है । एका बीज “ य ” वीर देवता ईश्वर है। यह तत्त्व उत्त्वगुण वाला है ।
योग बल से एका वाक्मिर्वा होने पर एकाग्र चित्त से कुम्भक द्वारा पाँच घड़ी
तक प्राण वायु की धारणा करे । इस वायवीय धारणा नाम की मुद्रा के अम्यास
से साधक को वाकाल गमन की शक्ति प्राप्ता होती है । ”

“ यह मुद्रा बरा- मृत्यु को दूर करती है । वायु

१- ध० सं० अ० ६१

२- योगतत्त्वोपनिषद् ६८ से १०२ तक

३- ध० सं० अ० ६२

ये साधक की मृत्यु नहीं होती, और वाकाश गति प्राप्त होती है। भक्तिहीन सब की ओर नहीं देना चाहिये। हे कण्ड। ऐसा करने पर सिद्धि की प्राप्ति होती है, यह मैं कह सकता हूँ।”

वाकाशी धारणा

योगसूत्रबीपनिषद् के अनुसार

“ प्रकृति है दृढान्तर्निहित वाकाश का स्थान है। अर्थात् वाकाशकार धर्म वर्ण का तथा “ ह ” अक्षर है प्रकाशमान है। वाकाश अक्षर में वायु का आरोप करके भगवान् ऊँकार का ध्यान करे। ऊँकार सदाशिव ही विष्णुरूप महादेव सर्व व्योमाकार हैं। वे सब वायुओं से उत्पन्न सभी वृक्षों से विस्तृति प्राप्त करने के कारण वादायक सर्व सभी कारणों के कारण हैं। वाकाश की धारणा करने से वाकाश ही वाकाश गन्त की सन्धि प्राप्त होती है। अर्थात् साधक वहीं भी रहे, वही प्रमाण है वाकाश प्रकृति होता है।”

योग सूत्र के अनुसार

“ वाकाश अक्षर का वर्ण विष्णु अक्षर कण्ड

१- योग सूत्र ३.७८ व ७९

जो बीजान्तर बीज संस्कृत परिणाम दत्तिया तथा संस्कृति संस्थान होती है प्रकाशित योग सूत्र में वर्णित उपलब्ध।

२- योगसूत्रबीपनिषद् ६८ से १०२ तक

कहते हैं अनादि केवला * ह * कीय है । प्राण संयमपूर्वक यदि यही एक कृष्ण करने से एकही चिदि होती है। एकही चिदि से केवल हीर मुक्ति प्राप्त होती है । --

-- की योगरत्ना वाक्याली धारणा की वाक्याली होती है। प्रथम में ही उसे ले नहीं पाया । --

वसिनी- मुद्रा

पे० ६० में वसिनी मुद्रा

-- मुद्रा दूर का बार बार कीय कीर प्रसारण की । यह वसिनी मुद्रा शक्त होती है --

-- यह मुद्रा मुद्रा रोगों को नष्ट करने वाली, शारीरिक शक्ति बढ़ाने वाली तथा कष्ट मुक्त का उरण करने वाली है । --

उ० प्र० में वसिनी मुद्रा का उल्लेख नहीं है ।

पालिनी मुद्रा

पे० ६० के अनुसार पालिनी मुद्रा

-- कीर्ति परी को कण्ठ के पीछे को कीर है

१- पे० ६० ३।६३

२- पे० ६० ३।७८-७९ जो पीठाम्बर पीठ पतिया(प० प्र०) एवं संकृति संस्थान , पुरी के प्रकाशित पे० ६० में वर्णित ।

३- पे० ६० ३।६४

४- ०० ३।८३

००

००

००

बाकर उन्हें परस्पर मिलकर बात के समान हुए रूप से बधि, वह वाक्छिन्नी मुद्रा
कही है। वह स्थिति को वाक्छिन्नी कहती है।^१”

“ वह मुद्रा मुद्रा है, वह मुद्रा वाली बाहि
वाक्छिन्नी को कवचपूर्वक कहती वाक्छिन्नी कहती वाक्छिन्नी ।”

हम वाक्छिन्नी मुद्रा प्रक्रिया में ६० की कमीशनी
के मुख्य हैं। ६० प्र० में वक्ता कीर्त उल्लिखित उल्लिखित नहीं है।

वाक्छिन्नी मुद्रा

६० ६० के अनुसार

“ मुद्रा कीर्त की वाक्छिन्नी के समान कही उल्लि
वाक्छिन्नी : ओः वाक्छिन्नी की । यह उल्लि रीति को नष्ट कही वाक्छिन्नी
मुद्रा है।^१”

“ वह वाक्छिन्नी मुद्रा की रूप प्रकार के मुख्य रक्ता
वाक्छिन्नी । वह मुद्रा के कवचपूर्वक के कीर्त के समान रीति रक्ता है।^१”

धरम में वह मुद्रा का उल्लिखित वाक्छिन्नी रक्ता
है, क्योंकि “ वाक्छिन्नी धीरि ” में भी वही प्रक्रिया वर्णन की है।

६० प्र० में वह मुद्रा का उल्लिखित नहीं है।

१- ६० ६० ३१ ६५

२- ६० ६० - वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी वाक्छिन्नी
३१ ६५ ६० ६० में वाक्छिन्नी वर्णन

३- ६० ६० ३१ ६६

४- ६० ३१ ६०

५- ६० ३१ ६५

मार्तन्दिनी- कुडा

पे० सं० के अनुसार

“ कस में कण्ठ फेंकें लई हीकर नाखिना है कस
 लीकर मुस दार है बाहर निकल दे । फिर मुस के द्वारा कस लीव कर नाखिना
 द्वारा निकलै । कसका कसबाध बार बार करना बाहिर । कस मार्तन्दिनी नाम
 की परम कुडा है, जिसके छिद होने पर परा पराण का कस नहीं रहता । ”

कस कुडा की रक्तान्त स्थान में कसका निरत है
 करना बाहिर । कसके छिद होने पर योगी छापी के कसका कसबाध ही जाता है
 और कस हुली रहता है । कस कुडा की कसपूर्ण करना बाहिर । ”

मूर्धनिनी कुडा

पे० सं० की विधि

मुस की फैलाकर कण्ठ है वायु का पान की ।
 कस मूर्धनिनी कुडा कसबाधी है । कसके छिद होने पर परा- मुस का नाश होता
 है । कसके कसबाधी भी उबर रोग नष्ट हो जाती है । ”

कुडाकी की विधि

“ है कसकापाति । कस की कुडा कस है
 कस है, कस परा-मुस का नाश और भी छिद मुसबाधी की विधि है । कस

१- पे० सं० ३१६० प ६

२- पे० सं० ३१६०-६१ संस्कृति संस्वान, मरीही है प्रकाशित पे० सं० में वसिष्ठ
 वर्णन

३- पे० सं० ३१६२-७०

कल्पित गोपनीय एवं कै- दुर्लभ पदों को मन्त्रिहीन सब को कभी न प्रार्थित करे और प्रत्यक्षपूर्वक गुप्त रहे। यह प्रार्थित करना वाञ्छनीय ही ही तो सरल, साम्य, दुरुपलब्ध अधिकारी की ही यह भीम और पीला वाक्य पदस्य माना जायित। यह सर्व रोग नाशक पदस्य मिल्य कल्याण करने वाले वाक्य के लिए कठोरान्ति प्रतीत्य करने वाला और बरा मरण नाशक पदस्य होना। उद्दे अग्नि, पद, वायु वादि के किसी प्रकार का क्य कभी रहना। काय, स्वाय, श्चीका, स्तेयना वादि बीच प्रकार के रोग का मुक्तियों के कल्याण के कल्याण नष्ट ही वाली है। वे कल्याण। अधिक कया क्य का मुक्तियों के समान पदस्य वाक्य कीर्त कल्याण ठाम मुन्युद्ध पर नहीं है।

मुक्तियों की उत्पत्ति

मुक्तियों की उत्पत्ति के विषय में धेरुद्ध तथा स्वात्माराम के कला कला विचार हैं। स्वात्माराम ने ८० प्र० में पद (१०) मुक्तियों का उत्तम सुवीय उपमेय में किया है तथा कर्मीसी के साथ कर्मीसी व कर्मीसी मुक्तियों को भी बताया है। उद्दे अतिरिक्त कर्मीसी व उम्मी मुक्तियों का उत्तम मुक्त- पदस्य (सुवीयुद्ध) में न करके कर्मीसी प्रारण (कर्मीसी) में किया है। यह प्रकार ८० प्र० में दुर्लभ पदस्य नायक (१४) मुक्तियों का उत्तम एवं उनसे होने वाले शारीरिक और वाय्यात्मिक कर्मीसी का बताया है।

८० प्र० में मुक्तियों की उत्पत्ति पञ्चोद विधायित

१- ८० प्र० ३१६४ से १०० तक - संस्कृति संस्वान, वरीसी के प्रकाशित ८० प्र० में मुक्तियों की विविधता का उत्तम अतिरिक्त उपलब्ध होता है।

२- ८० प्र० ३१६

३- ८० ३१६०

४- ८० ३१६२-६४

५- ८० ४१३५

६- ८० ४१३६

७- ८० प्र० ३१६-२ तक

की है। इन पञ्चीक मुद्राओं के सम्बन्धित तीन बन्ध बाँर पाँच धारणाओं की भी सम्मिलित किया है। वस्तुतः घेरण्ड की पाँच धारणाएँ मुद्रा नहीं हैं, वह ती धारणा के उच्च चौर में ध्यान की पाँच प्रकार की कला कला प्रतिकार हैं, जिन्हें मुद्रा कला उपयुक्त नहीं। इसके अतिरिक्त सहागी, पाण्डुकी, वसिनी, पाणिनी, काकी, मार्तण्डी व मुर्धनिनी आदि आठ मुद्राएँ अन्य हठयोग क्रियाओं के नाम परिवर्तन कर पुनरावृत्ति मात्र हैं।

सेवरी

सेवरी की ४० प्र० एवं घेरण्ड संज्ञिता की समान प्रक्रिया है। किन्तु सेवरी छिद करने के लिए स्वात्मचारांग ने बहुत पक्षों के समान चेकधार वाले स्वच्छ बाँर किले सस्त्र हैं। जिह्वागुल की नाड़ी से: से: रोम मात्र ऐन कर्मात् काटने के लिए उत्तेजित किया है तथा उस कटे स्थान पर रेंवा नक्क व हरद का पूर्ण लगाने की प्रक्रिया अपनायी है। घेरण्ड ने किसी चेकधार वाले सस्त्र का सेवरी के ऐन क्रिया में उत्तेजित नहीं किया है, किन्तु बाल एवं मक्खन लाकर दोहन करके ठोसे की चिमटी से तोपने का निर्देश किया है।

मानव देह में जिह्वा एक कौमल एवं मुख्यांग है जिससे रोम मात्र अधिक कट जाने से जिह्वा ऐन पातक छिद हो सकती है। इसलिए ऐन क्रिया करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए तथा इसके बाँ विले-जाल से उन्ने हो ऐन कर्म कराना उचित है। किन्तु इसके विशेषज्ञ बाय संसार में कम ही मिलती हैं। कभी भी असावधानी के कारण ऐन क्रिया में वाक् शक्ति संचारित करने वाली नाड़ी भी जिह्वा मूल से होकर जाती है और कट सकती है। इसलिए काटने की प्रक्रिया बहुत प्राचीन हो चुकी है। काटने की अपेक्षा जिह्वा मूल का वर्णन किया जाय तो आश्चर्योच साम होना।

लेखी पुस्तक के सम्पादन की आवश्यकता पर
स्वात्माराम ने उल्लेख किया है कि " जो नियम नीमादि मन्त्राणां करता है-
विदुषा की साधुता में प्रीति कर स्वत्माराम की दीक्षा है- कस्तूर है प्रसिद्ध
बन्दापूर का पान करता है। उषी की में (स्वात्माराम) कुशीन सम्प्रदाय है।
कल्प की कुछ बातें हैं ।

स्वात्माराम तथा मेरुद वीरों की लेखी की
कभी पुस्तकों में अविधि स्वीकार करते हैं । उ० प्र० में लेखी की प्रतीति की पुन-
रावृत्ति की गई है ।

ताम्बरी पुस्तक

ताम्बरी की विधि एवं उल्लेख परिणाम उ० प्र०
एवं वि० ६० वीरों प्रन्तों में समान रूप है है। स्वात्माराम तथा मेरुद ने ताम्बरी
की कुछ वस्तु के समान पुस्तक रली का निर्दिष्ट किया है। मेरुद ने ताम्बरी पुस्तक
कानि वाचा " वापिनाथ ", " नारायण ", " सुचिन्ता " तथा प्रसन्न-
की बताया है ।

ताम्बरी पुस्तक का सम्पादन कष्ट साध्य है ।
हस्तलिखी की उल्लेख सम्पादन साधनानों के करना चाहिए । ताम्बरी है मन्त्रिक

१- नीमादि मन्त्राणि विविधमन्त्राणां ।

कुशीन तम्बरी मन्त्र लेखी कुलमातकाः ।। उ० प्र० ३१४६

२- उ० प्र० ३१४५

३- वि० ६० ३१४६

४- वि० ६० ३१४५ है ५५ तक

सर्व नेत्रों पर लिखाय पड़ता है। इसलिए इसी व्यास है पूर्व वाटक का व्यास कर दिया बाग ही कामकारी होता। उन्मयी मुद्रा के व्यासों की मस्तिष्क सर्व व्यास भाँति भी नहीं करनी चाहिए। किन व्यासों की नेत्र ज्योति कमजोर है क्या नेत्र किसी अन्य कारण से रुग्ण है, उन्हें यह मर्ति है।

उन्मयी मुद्रा

ह० प्र० में उन्मयी मुद्रा प्रकरण में - न दिन में दिन का पूजन की वीर न रात में, किन रात का निरोध होने पर सर्वदा दिन का पूजन करे। यहाँ दिन पूजन है तात्पर्य वात्म चिन्तन है। दिन रात्रि है ह्रीं- फिंगरा नाड़ी के प्रातः काल है। ह्रीं- फिंगरा के प्रातः काल में वात्म चिन्तन न करे तथा इनका निरोध करके बुधुम्मा के प्रातः काल में वात्म-चिन्तन उक्ति ठहराया है। बुधुम्मा के प्रातःकाल में ही प्राण बुधुम्मा में प्रवेश करते हैं।

निकर्ष

मरामुद्रा

पै० ६० की मरामुद्रा व्यास में दृष्टि की प्रकल्प में रली का निर्देश किया है- "पुनर्मध्ये निरीक्षयि"।

ह० प्र० में - "कण्ठे बन्ध समारोच्य" वात्स्यर

१- दिवा न पूजयेत्किं सर्वा के न पूजयेत् ।

सर्वदा पूजयेत्किं दिवा रात्रि निरीक्षाः ॥ ह० प्र० ४१४२

२- पै० ६० ३१४

३- ह० प्र० ३१९०

बन्ध छानने की संशुद्धि की है। व० १० में उल्लेख है कि व० ६० की प्रक्रिया वास्तविक के अनुसार पैर परम्परा में प्रवृत्त है।

पैरुण्ड के अतिरिक्त किसी प्रकार के दृक्चय में दृष्टि रखी के विचार में निर्दिष्ट नहीं दिया है। स्वात्मनारायण ने महापुरुष के विचार में विस्तृत रूप में उल्लेख किया है।

नवीपुत्रा

व० ६० में नवीपुत्रा बन्धन में बाधक प्रक्रिया बन्धन में दृक्चय करी विचार उल्लेख कर रही है। यह स्थिति वृत्तीय की उच्च बाधना में ही सम्भव है। सर्वसाधारण के लिए नवी पुत्रा का बन्धन बन्धन कठिन है। उक्त बन्धन बन्धन प्रणाली में उपलब्ध नहीं है।

उद्दिष्टबन्धन, वास्तव्य बन्धन एवं पुत्र बन्धन प्रक्रिया इनो प्रणाली में एक समान है।

व्यापक

व्यापक में पैरुण्ड में बायीं पैर की बायीं पैर की लकी पर रखी तथा पुरुष करी वास्तव्य बन्धन छानने का निर्दिष्ट किया है। स्वात्मनारायण ने बायीं पैर की बायीं पैर पर रखी तथा पुरुष दृक्चय तथा लकी: रोक करने का उल्लेख किया है। पैरुण्ड दृक्चय का उल्लेख ही करते हैं किन्तु कोई निर्दिष्ट नहीं करते। व्यापक पुत्रा की स्वात्मनारायण की प्रक्रिया अधिक प्रभावी है।

१- व० १० पृ० १२५

२- व० ६० पृ० ३१७

विपरीतकरिणी षे० ६० वीर ६० प्र० की समान

विधि है ।

योनिमुद्रा

योनिमुद्रा का दर्शनोपनिषद् में यजुस्वी मुद्रा नाम दिया है। षे० ६० में उपलब्ध योनि मुद्रा के बन्धन में 'काकीमुद्रा' भी सम्मिलित की है। षेण्ड की योनि मुद्रा कुण्डलिनी वागर्ण हेतु तथा 'ब्रह्म' के साथ लय करने के लिए विशिष्ट मुद्रा है। ६० प्र० में इसका उल्लेख नहीं है।

वज्रोली- मुद्रा

षे० ६० में प्रस्तुत वज्रोली मुद्रा ६० प्र० तथा उद्योगपरक ग्रन्थों से बिलकुल भिन्न है। ६० प्र० की वज्रोली विधि मुख्य रूप से स्त्री सम्भोग की ओर प्रेरित करती है, जो योनियों के लिए उचित नहीं है। वहाँ वज्रोली के द्वारा कुण्डलिनी वागर्ण का प्रत्यक्ष है वहाँ उद्योग से वन्तर्गत बहुत सी प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा शक्ति स्फूर्ण होता है जो फिर मेनु की क्या आवश्यकता है ? मेनु विधि है जो शक्ति का साथ होता है जबकि उद्योगियों की शारीरिक शक्ति की हर समय आवश्यकता है। ६० प्र० की वज्रोली प्रक्रिया से यह प्रतीत होता है कि इस सम्प्रदाय के उद्योगियों के मन में स्त्री सम्भोग के कुर वर्तमान थे। इसलिए उन्होंने उस भाग के प्रेम मार्ग की प्रस्तुत किया। षेण्ड की वज्रोली विस्तृत प्रक्रिया है जिस पर कोई वाच्य नहीं कर सकता।

१- दर्शनोपनिषद् ६।३२ से ३५ तक

२- षे० ६० ३।३६ से ३८ तक

कमीरी व कमीरी

ध० ध० में कमीरी व कमीरी का वर्णन उप-
लब्ध नहीं है। ध० प्र० की कमीरी का विवरण परिस्थितियों में क्या वस्तु स्थान
किया हो वहाँ कमीरी कि है। कमीरी ' शिवांगु पान ' शरीर की स्वस्थ
रही के लिए गौरवान्वय तथा उनके सम्प्रदायों की अनुपम वीर है। शिवांगु
पान से कमीरी प्रकार के रोग उत्पन्न नहीं होते हैं।

कमिरीवाली कुआ

ध० प्र० एवं ध० ध० दोनों ग्रन्थों में कुमिरी
कमिरी के उद्घोष के लिए कमिरी वाली कुआ नाम की एक विशिष्ट कुआ का
उल्लेख है। दोनों ग्रन्थों की प्रक्रिया में निम्न अनुमानित है।

कमिरीवाली के अनुसार

- १- ब्रह्मण पर विचार
- २- ब्रह्मण के अन्तर्गत प्राणायाम
- ३- एक ब्रह्मण सम्पादन के लिए ब्रह्मण पर विचार
नामिनी पर प्रयोग
- ४- ब्रह्मण २ अक्षरों का अन्वय
- ५- एक ब्रह्मण (४० दिन) में ब्रह्मण वाग्व्यास की
कवि
- ६- ब्रह्मण के अन्तर्गत अन्तर्गत अन्वय
- ७- ब्रह्म (ब्रह्मण) ब्रह्मण का प्राप्ति करना
- ८- ब्रह्मण वाग्व्यास तथा ब्रह्मण पर विचार
- ९- ब्रह्मण प्राप्ति के अन्तर्गत

- १- विद्यालय प्रयोग
- २- गुरुक प्राणात्मन
- ३- एक वादिकस सम्पादक वरुण वीरु परिधान
नामि केन्द्र वर प्रयोग केन्द्र
- ४- वरिष्ठी मुद्रा के सम्पादन में सम्पादन
- ५- वरिष्ठी वादिकी मुद्रा में वीरिष्ठी मुद्रा का सम्पादन
वर्तमान
- ६- सम्पादनम्पा में वर्तमान सम्पादन

कल्प सुधार

वे० सं० की लक्ष्मी, माण्डवी, वसिष्ठी,
पाणिनी, कश्यप, वासुदेवी, मुनिनी, कुशावती की धीरि, वासु, एवं
कुशावती की प्रसिद्धि में कर कर कसा नाम परिवर्तन संस्था करने के लिए कुशा
वती में सम्मिलित किया है।

कति क-वाय में क्रयाहार का बीज है स्थान,
क्रयाहार के संपादन, क्रयाहार की विधि, क्रयाहार धारणा का परिणाम
बादि का उल्लिख करने का प्रयास करें।

- 99 -

१- दो दो गिरो ते या वर

सप्तम अध्याय

प्रमाण-विधान

प्रत्याहार

प्रत्याहार का योग में स्थान

सर्वप्रथम कौटिलि में 'योग दर्शन' में प्रत्याहार का स्थान प्राणायाम के पश्चात् निर्धारित किया है। उनके अनुसार 'वन-विश्राम' वाक्य प्राणायाम 'प्रत्याहार' धारणा ध्यान और समाधि में योग के बाँट का है।

'कठ' नाम उपनिषद् में योग के चारों को स्वीकार करते हुए 'प्रत्याहार' की प्रथम स्थान दिया है- 'प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, एवं और समाधि चारों योग हैं।

पठनीयनिषद् में योग के बाँट कौटिलि का उल्लेख करते हुए 'प्रत्याहार' की प्राणायाम के पश्चात् प्रथम स्थान पर रखा है।

'योग ब्रह्मसूत्रनिषद्' में योग के चारों का वर्णन करते हुए 'प्रत्याहार' की वाक्य, प्राणायाम के पश्चात् तथा धारणा के पूर्व तृतीय स्थान दिया है।

'योगमार्तण्ड' में योग के चारों का उल्लेख करते 'प्रत्याहार' की प्राणायाम के पश्चात् तृतीय स्थान दिया है।

१- योगदर्शन २३६

२- कठनामोपनिषद् ६

३- पठनीयनिषद् १४, ५

४- योग ब्रह्मसूत्रनिषद् २

५- योगमार्तण्ड २

महर्षि घेरुण्ड ने घेरुण्ड संज्ञिता में योग के सप्त
साधनों का उल्लेख करते हुए 'प्रत्याहार' का कर्तव्य स्थान पर वर्णन किया है
तथा घेरुण्ड के अनुसार प्रत्याहार है साधना के अन्तर्गत धर्म उत्पन्न होता है।

स्वात्माराम ने उ० प्र० में 'प्रत्याहार' साधना
का कोई विवरण नहीं दिया है। निष्कर्ष यह है कि उक्त प्रतीफिकाकार की होड़
कर उपर्युक्त ग्रन्थकारों ने किसी न किसी स्थान पर 'प्रत्याहार' का उल्लेख करते
हुए योग साधना का आवश्यक कग स्वीकार किया है।

प्रत्याहार के स्वरूप

पतंजलि के अनुसार प्रत्याहार के स्वरूप निम्न-
लिखित हैं - इन्द्रियों को अपने विषयों को त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुसृत
होना प्रत्याहार कहलाता है।^{१००}

योगदर्शन के उपर्युक्त सूत्र पर महर्षि व्यास जी
का भाष्य निम्नलिखित है- " अपने विषय के संयोग से रहित चित्त-स्वरूप
के अनुसृत हो होना इन्द्रियों का प्रत्याहार कहलाता है। चित्त के रोकने पर
चित्त के समान इन्द्रियों का भी रुक पाना इन्द्रियवश के समान अन्य उपायों
की अपेक्षा नहीं क्योंकि आवश्यकता नहीं होती जैसे रुक की जाने वाली रानी
मनसो के उड़ते हुए उड़ते पीछे सब मछियाँ उड़ती हैं। प्रीत करती हुई के पीछे प्रीत
करती हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ चित्त के निरीय होने पर निरुद्ध हो जाती हैं,
इसका नाम 'प्रत्याहार' है।

१- पै० उ० २।६-२०

२- स्व विषयार्थप्रयोग चित्तस्वरूपानुसार इन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥

-योगदर्शन २।४४

३- स्व विषयार्थप्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुसार इति चित्तनिरीये ।

चित्तवन्निहदानीन्द्रियाणि नेतरिन्द्रियवशमुपायान्तरमपेक्षन्ती ।

यथा मधुरराशे मणिका उत्प्लवत्तमुत्प्लवन्ति निविशमानमनुनिविशन्ती ।

तथेन्द्रियाणि चित्तनिरीये निहदानीत्येव प्रत्याहार इ ॥ योग० २।४४

“ गौरवा पद्धति में प्रत्याहार लक्षण- ” वेद
कहुवा अपने मुख, हाथ, पैरों को थिथोड़कर बन्दर दिया जाता है, वेद ही योगी
नी “ प्रत्याहार ” कहते हैं अपनी एवं इन्द्रियों को विचारों से छटाकर बन्दर
करे । --

रस, रस, गंध, स्पर्श, स्पर्श ये पाँच विषय हैं,
उनमें वस्तु, जिज्ञासा, प्राणा, त्वक्, सर्व कर्णों पाँच ज्ञानेन्द्रियों के कर्म होती हैं ,
क्यात् उक्त ज्ञानेन्द्रियों के उक्त विषय क्रम से हैं, बाह्य प्राणागाम सिद्धि द्वारा
जिस इन्द्रिय का भी विषय है उसे दूसरे के समीप मानना कर क्रमः स्नेहः स्नेहः
स्वागत करना क्यात् इन्द्रिय से उसके विषय का अनुभव करते फिर इन्द्रियों को
विषय से अलग करना प्रत्याहार है ।

जीमदग्नीता में प्रत्याहार

“ कहुवा वेद (अपने समस्त) कर्णों को समेट
लेता है उसी प्रकार जब योगी सब बाँर से इन्द्रियों को इन्द्रियों के विचारों
से थिथोड़ लेता है (तब) उसकी बुद्धि स्थिर होती है- क्यात् प्रत्याहार की
सिद्धि होती है । ”

गौरवा पद्धति में प्रत्याहार की उद्योग प्रक्रिया

जीमदग्नीता कर्तव्यिका चन्द्रविम्ब से भी समस्त

१- का मन्त्रे यथागतं कूर्मः धौविकं ध्रुवम् ।

योगी प्रत्याहारविमिश्रित्याणि सवात्मनि ।

चरणां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम् ।

कप्रत्याहारणं तैर्जा प्रत्याहारः उ उच्यते ॥

- गौरवापद्धति पृ० ७७

२- जीमदग्नीता २५

“ जिस ज्ञान बलि का फल बुद्धि के बल में नहीं है, उसकी शक्तियाँ भी बल में नहीं रहती, वेही अज्ञान किन्तु बल की वजह से कर दुर्लभ धारण के बल में नहीं जाती, अतएव: कार्य में बाध फैलती है, परन्तु भी बुद्धिमान व्यक्ति अज्ञानहीन होता है जिसका फल उसी बल में है, उसकी शक्तियाँ बल में रहकर ही चीजों के समान, बुद्धि धारण के अधिकानुसार रहती है । जिसकी बुद्धि सभी धारण सामर्थ्य है, फल सभी समान, उसके साथ में अधिकारपूर्ण वाया है, शक्ति-सभी चीजें भी उसके बल में ही रहते हैं । अतएव भी बुद्धिमान व्यक्ति रहता है । ”

... कम उन्निवर्त विचारों के सम्बन्धित नहीं रहती, जब समय उन्ना भित्त के स्वल्प का वा अनुकरण करना भित्त की ही तरह रहना- जब कार्यों में भित्त की राय केला प्रयासात् कलहाता है। भि-
न्निय सन्ध की वस्तु जादि उन्निवर्त ज्येष्ठ वस्तु में परिणत भित्त के वस्तु की जाती है, स्वतन्त्र रूप के वे कम के भित्तर दुसरे- दुसरे विचारों का भिन्न नहीं

• कठिपनिचः १/३/६

बँधे रहती । चित्त के निरुद्ध होते ही वे स्वयं बिना महिम निरुद्ध होने लाती हैं । काः वे उस समय चित्तानुकारिणी बनती जाती हैं- क्योंकि इन्द्रियाँ चित्त की वैश्या रहती हैं और चित्त २ कामों में चित्त प्रवृत्त होता है उन इन्द्रियों में इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती रहती हैं । यत्नियों चित्त तरह प्रवर राज के पीछे पीछे रहकर उसके उठने पर उठती हैं और वहाँ पहुँचता है वहाँ रुक जाती है, उसी तरह चित्तेन्द्रिय मनुष्य की इन्द्रियाँ भी चित्त के पीछे बीबानी होकर उसी में अपना वसितत्त्व का भी वन्त में वष्ट कर हासती हैं । चित्तेन्द्रियों की इन्द्रियाँ जो चित्त के निरोधीन्मुख होती पर भी स्वतन्त्र रूप से हय, रज आदि अपने अपने विषयों में संवर्ण करती रहती हैं और वन्त में चित्त की अपना अनुकरण करने के लिए साधारण बना देती हैं । काः विषयावन्मर्शण कात (जब इन्द्रियाँ विषयों से सम्बद्ध नहीं रहती) इन्द्रियों का चित्तानुकरण ' प्रत्याहार ' कहलाता है, और वास्तविक चित्तेन्द्रियत्व भी इसी प्रत्याहार के ध्यान से उपलब्ध होता है ।

विष्णु पुराण में प्रयोजन उचित प्रत्याहार

विष्णु पुराण में प्रयोजन उचित प्रत्याहार

का इस तरह वर्णन मिलता है :

‘ तद्वादिष्यतुस्त्वानि निष्कृष्यान्नाणि योगिन् ।
 दुर्यान्वित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥
 वर्यता परमा तेन जायते निष्कलात्मनाम् ।
 इन्द्रियाणाकस्यैस्तेन योगी योगताम् ॥

क्योंकि योग का जानने वाला मनुष्य प्रत्याहार परायण होकर तद्वादि विषयों में लगी हुई इन्द्रियों को रोक कर उन्हें चित्तानुकारिणी बना ले, इसी चित्ते-

न्द्रियता में दृढ़ता का जाती है । इस दृढ़ता के बिना कीर्त भी योगसाधक योगी नहीं हो सकता । ”

वर्णिक

यवष्टादशभेदेषु मम स्वानेषु धारणान् ।

स्वानात् स्वानं ध्यातुं प्रत्याहार उच्यते ॥ ९

बठारह मम स्वानों में है प्रत्येक स्वान में (जो है परमात्मा के साथ) धारणा कर जो वो उनकी ' प्रत्याहार ' कहते हैं । इसके अनंतर १८ मम स्वानों के नाम इस प्रकार हैं :- पादांगुष्ठ, गुल्फ , जंघा, मध्य, ऊरुमध्य, भूत, पाशु , हृदय , शिरः, वैकुण्ठ, नाभि, गच्छपीर , वायुमूल, प्राणमूल, नैमज्जल, धूमध्य, ललाट, ऊर्ध्वमूल, वायुमूल वीर कश्चित् ।

प्रत्याहार की विधि

प्रत्याहार-साधन के लिए प्रधान उपाय-

१- वाक्य विषय पर ध्यान न देना

२- मानस भाव छेड़ रखा ।

कल्पित होकर वस्तु वादि के द्वारा विषय ग्रहण का बन्धन न छोड़ने से प्रत्याहार नहीं होता है। जो वाक्य विषय को ध्यात् तत्त्व (स्वभावतः) नहीं कर सकते उनकी प्रत्याहार छेड़ होजाता है। ऊपर उन्मत्त का भी एक प्रकार का प्रत्याहार होता है । चिष्टिहिन (मृगी रोगी) को भी एक प्रकार का प्रत्याहार होता है जो चिन्मोहक लैलन्ध (धम्मोत्त वादित) के बहीभूत हैं उनकी भी बही भाँति प्रत्याहार होता है, नफ़ को छेड़कर कछेर देने से वे छेड़कर का स्वाद पाते हैं ।

जब जब क्रियाहारों से योगिक क्रियाहार की विशेषता है। योगिक क्रियाहार सम्पूर्ण सैव्याधीन है। योगी जब इच्छा करते हैं कि मैं यह नहीं चाहूंगा तो तत्काल ही उस ज्ञानेन्द्रिय शक्ति का रोध का उदाहरण होता है। वह कि देर तक प्राणायाम करने से इन्द्रिय समूह में निरोध का भाव गाढ़ हो जाता रहता है। उसके साथ क्रियाहार छूट जाता है। अन्य उपाय (भावना) के द्वारा भी यह ही करता है। यम नियम आदि के बन्धन के साथ ही क्रियाहार होने पर ही यह वैयत्न्य होता है, नहीं तो दुष्ट चित्त व्यक्तियों का दुष्कर्म में बाधित क्रियाहार अधिकतर दोषग्रस्त होता है।

चित्त निरोध होने पर इन्द्रिय का निरोध
साधन रूप क्रियाहार ही योगियों को उपादेय होता है।

कल्याण(योग विवेचक) में क्रियाहार सिद्धि प्रक्रिया

“ बारह प्राणायामों का एक क्रियाहार होता है, १२×१२ कर्मात् एक ही कालीय प्राणायामों की एक धारणा होती है, फिर $१२ \times १२ \times १२$ कर्मात् बारह ही कटालि (१७२) प्राणायामों का एक व्यास होता है और $१२ \times १२ \times १२ \times १२$ कर्मात् बीस हजार सात ही इत्थी (२०७३६) प्राणायामों की एक समाधि होती है। ये सब प्राणायाम एक ही बैठक में करने होते हैं। अन्तिम साधन केवल अन्यस्त योगी ही सात दिन तक बहोरात्र सतत उसी में लगाकर कर सकते हैं। ”

कल्याण(योग विवेचक) में क्रियाहार सिद्धि की अन्य प्रक्रिया

“ फलान्न से बैठ कर केवल दृष्टि द्वारा

१- योगसूत्र स ४४ पर भाष्य- स्वामी हरिहरानन्द बारणसी पृ० २५६

२- कल्याण(योग विवेचक) पृ० ६३

स्वातन्त्र्यवास की गति रोकने है, सिद्धांत से बैठकर किट्टी जमा नाकिताग्र पर निमेषीन्मेषरहित दृष्टि स्थिर करने है पूर्ण प्राणायाम के व्यास है शान्त चित्त है १२०० (एक हजार दो सौ) प्रणव के वप करने है विपरीत-करिणी जुआ के व्यास है और मनोवृत्तियों को स्वातन्त्र्यवास के लोभन के स्थान में स्थिर करने है (प्रत्याहार की) चिति होती है । "

वहिरंग योग में प्रत्याहार चिति

" कौहें एक साधक मन्त्र वप में तल्लीन होना चाहता है, किसी एक विषय में का कुराग उसे स्मृति रूप में प्रकट होकर स्थाग्र नहीं होने देता । ऐसी अवस्था में जब वह सब विचार भी सहायक न बन रहे हों, साधक प्राणायाम करना प्रारम्भ कर दे । वप- धारणा- ध्यान है प्राणायाम की प्रक्रिया स्मृत है, काः स्व क्रिया में लगे मन- बुद्धि पूर्ण विचार को होकर पुनः पुनः स्व वप में चरता है जा जाये । प्राणायाम में इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं, स्व कारण इन्द्रियां प्राणायाम है शीघ्र वश में जाने लगती है, क्योंकि प्राण का सम्बन्ध स्व इन्द्रियों के साथ है, काः प्राण निरोध का प्रभाव इन्द्रियों पर भी पड़ता है, इसके प्रभाव से वे भी निरुद्ध हो जाती है और वि-षयों में गमन करती इन्द्रियां उधर नहीं जाती । स्व रूप में प्राणायाम इन्द्रिय निरोध में परम सहायक होता है। स्मृति आदि धर्म निरूपक शास्त्रों में प्राणायामों की मन्त्रां स्वस्तिर कही गई है। वैसे-

तथेन्द्रियाणां वक्ष्यन्ते वीणाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ २

वैसे स्वर्ण रत्न आदि धातुओं के वीणा मट्टी में तपाने से दूर हो जाते हैं, वही

१- कल्याण (योग विवेकादि) अगस्त १९३५ पृ० ४४६

२- वहिरंग योग पृ० ३३६

३- पृ० ६१७९

प्रकार प्राणायाम के द्वारा प्राण निरीव करने से विषयानुसारिणी शक्ति का विषयानुसारिणी की स्वाधीनी है । ”

शरीर वात्मा का वाक्चर और मन उसका ध्या-
न है । इसलिए मन का वाक्चर यदि नीति प्रयोगों में बलि रहता तो
मनुष्य का सम्पूर्ण क्रिया कलाप उन्हीं तक सीमित रहता और वात्मान्यति के
लिए फिर बलि बाँटे सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान सिद्ध होगे । मन की नीति वाक्चरों
के हटकर मन में करना ही स्वाधीन , तब ध्यान बाँटे है । नीतिप्रव मनुष्य
के शरीर में एक वाक्चर मनुष्यपूर्ण वाक्चरों परितोष उपस्थित कर देता है ।
और जो मनुष्यपूर्ण एवं वाक्चरों परितोष है यही प्रत्याहार की विधि है ।

पेरुण्ड वीरिया में प्रत्याहार विधि वर्णन

पेरुण्ड वीरिया ने कहा है कि मन में प्रत्याहार
का वर्णन करता हूँ जिसे वाक्चर के काम कीयादि शक्तियों का नाश होता है । यहाँ
यहाँ पेरुण्ड मन विनश्वर की उरी यहाँ यहाँ है हटकर वात्मा के मन में की । यहाँ
यहाँ दृष्टि जाती है मन यहाँ यहाँ पीडा करता है । मनः उरी वाक्चर वाक्चर वात्मा
के मन में की ।

हुरकार, विरकार सुनि मे सुख या मयानक
कहाँ है मन की हटकर वात्मा के कर्मी की । उरी एवं उच्छा मनुष्य करने
पर भी मन की यहाँ है हटकर वात्मा के कर्मी की । सुख और दुःख है मन
की हटा है । मरु, वन्द, विन्द बाँटे रणों की और मन वाक्चर ही तो उरी
यहाँ है भी हटकर वात्मा के मनोभूत की यही प्रत्याहार है । ”

मन की मन विषयों है हटकर वात्मा के मन में

करना ही प्रत्याहार कहलाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य
आदि विकारों को मन से उटायें क्योंकि ये देहाभिमान उत्पन्न करते साधना से
च्युत कर देते हैं। इसलिए हि प्राणायाम के सहयोग से मन को सर्व विरुद्ध रहे।
इससे ही प्रत्याहार की सिद्धि प्राप्त होगी।

प्रत्याहार साधना का परिणाम

योगदर्शन के अनुसार प्रत्याहार का फल

“ततः परमावस्थोन्मियाणान्” उच्यते
प्रत्याहार से इन्द्रियों का उत्प्लुष्ट बलिकार होता है।

महर्षि पाणिनि ने सूत्र में प्रत्याहार से इन्द्रियों
की परमावस्थता बताया है। यह परमावस्थता अपरमावस्थता की अपेक्षा है
है, इसके विषय में व्यास भाष्य में इस प्रकार उल्लेख किया है-

१- कोई कहते हैं कि शब्दादि विषयों में
वाक्य न होना अर्थात् विषयों के अधीन न होकर उनकी अपनी अधीन रहना
इन्द्रियवस्थता अर्थात् इन्द्रियव्यय है।

२- दूसरे कहते हैं कि वेद शास्त्र में उल्लिखित
विषयों का परित्याग इन्द्रियव्यय है।

३- तीसरे कहते हैं कि विषयों में न फँसकर
अपनी शब्दा से विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्प्रयोग होना इन्द्रियव्यय है।

४- चौथे कहते हैं कि राग-द्वेष के आवरणों
मुक्त-दुःख से मुक्त शब्दादि विषय का ज्ञान होना इन्द्रियव्यय है।

१- योगसूत्र अ ५५

२- योगप्रतीप पृ० ४६६ भाष्यकार स्वामी जीउमानन्द तीर्थ

“योगरहस्यम्” में प्रत्याहार की व्याख्या -

“प्रत्याहार) है इन्द्रियों की परमावश्यकता होती है।” यानी प्रत्याहार प्रतिष्ठा होने है इन्द्रियों की परमावश्यकता क्योंकि स्वान्त-बहिर्भूता ज्ञाना ही जाती है। उसके पहले भी वरीकार संज्ञा-वैराग्य की बात हुई है, वह वही इन्द्रियों की परमावश्यकता ही है। प्रत्याहार छिद होने है राग, द्वेष, विमुक्त इन्द्रियसमुह द्वारा विषयों में विवरण करने पर भी विवेकात्मा व्यक्तिकर्ण चित्त प्रसाद लाभ करते हैं। यह भगवत् गीता का वाक्य है। वस्तु मात्र ही द्रष्टा का साक्ष्य है- विषय मात्र ही प्राण है- इस तरह का दर्शन ऐसा अनुभव पुनः पुनः करने के फल है - ज्ञानाच परिपाक के प्राप्ति होने पर राग-द्वेष दूर हो ही जायेगी। उस अवस्था में इन्द्रियाँ विषय के चरित संयुक्त होने पर भी वास्तविक उत्पादन नहीं कर सकती हैं। जो लोग इन्द्रियसंयम का जब इन्द्रियों का वस्तुवर्क विषयों से वाक्यार्थन करना समझते हैं उनसे सहमति नहीं है। ऐसा संयम उपलब्ध अवसर पर निश्चय ही भंग हो जाता है। किन्तु विषय द्रष्टा ही है, वह बुद्धि है विषय-रस से वाक्य न होकर द्रष्टा के रस से मुग्ध होते हैं। फलतः उस इन्द्रिय का संयम ही होता है। ऐसा प्रत्याहार होने पर इन्द्रियाँ वाक्य विषय कहे जायें। अन्विष्टावस्था: वाक्य होने पर भी स्वस्थ रह सकती हैं। कारण है यहाँ कहीं भी पड़ी हों ज्ञानन्द स्वरूप है वास्तव है वस्तु नहीं रहती।

इस प्रकार इन्द्रियाँ विषय में विमुग्ध नहीं होती- सगो नहीं रहती स्वयं स्वस्थ ही रहती हैं।

वस्तुतः “प्रत्याहार” प्रक्रिया का नाम है, जिससे इन्द्रियों का निग्रह होकर सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से विमुक्त हो जाती हैं और अन्तर्मुख होकर चित्त के साक्ष्य रूप में वास्तव तत्त्व की ओर अभिवृत्त करती हुई समाधि लाभ कराता है, जो योगी का अन्तिम लक्ष्य है।

कस्तुरि प्राणधारणीय धामना में एक वायव्यक की स्मिता में भी नही है ।

कष्टम कथाय के कष्टम प्राण का स्वयं ,
 प्राण की मलिता, प्राण की वनितायता, प्राणायाम के वेद, नाही सीध,
 कष्टम के वेद, कष्टम वेदी, कष्टम वेदी , वनिता, वनिता, प्राणारी , कष्टम
 स्व वेदी , वनिता, कष्टम- वनिता तथा वनिता प्राणायाम का विवरण
 प्रस्तुत किया जायेगा ।

अष्टम अध्याय

चतुर्थः प्रणायामविधानः

संजीवनी में प्राणावायु-विधान

प्राण का स्वरूप

शरीर परमाण्वर्ण है। जहाँ वायु, कीमार्ग, यौवन एवं मृत्यु के जहाँ संचित होते हैं। शरीर के ये अणु प्राण प्रकृति के पंच-तत्त्व पर आधारित हैं। इन पंच तत्त्वों में एक तत्त्व वायु है। जब एक वायु-कण बर्तित होता है तब एक एक एक परमाणुओं की एक छोटी मात्र प्रकृति होती है। इस शरीर का स्वरूप एवं स्थायि स्थिति है। इन परमाणुओं से ही यह शरीर बना है तथा इनके निकार ही यह शरीर के आधार हैं। जैसे पार्थिव शरीर, लवण, कर्म, कुछ कर्मों के और यह तथा इसके उच्छ्वास के कुछ आधार के जहाँ कही है जीवन की धारण करता है वैसे ही अन्तरिक्षवासी स्वः प्राण वायु का आधार भी यह जीवन धारण के लिए आवश्यक है। इस जीवन की धारण करने वाले सूक्ष्म प्राण के अतिरिक्त एक सूक्ष्म प्राण भी है जो "जीवात्मा" और अन्तरिक्ष के अन्तर्गत है प्राणों के कारण और सूक्ष्म शरीर की जीवित रहता है, इन जीवों के जीवित रहने से सूक्ष्म शरीर भी जीवित बना हुआ है।

सुस्पष्ट: जो प्राणिमात्र के जीवन का आधार बना हुआ है वही "प्राण" (वायु कर्त) है। परमाणु वायु की तरह यह "प्राण" भी एक अणुमात्र सूक्ष्म रहता है। किसी भी काल मात्र स्वयं एवं अन्तरिक्ष की स्थिति में यह कार्यशील रहकर प्राणी मात्र की जीवित रहता है।

वैज्ञानिक स्तर पर यह विद्वत् ही कहा है "प्राण" तत्त्व परमाणु वायु है सूक्ष्म होती है यह भी प्राण तत्त्व का परमाणु वायु के साथ

सम्बन्ध बना रहता है। उदाहरणस्वरूप जब किसी पशुपक्ष के प्राण वायु के जाने जाने के समस्त मार्ग बन्द हो जाते हैं उनके शरीर की पंजाब छिना समाप्त हो जाती है। वर्तमानस्थितियों के अनुसार वह समस्त वायु और जो कुछ भी उनके अन्दर है वह सब कुछ वाकाल और प्राण इन दोनों तत्त्वों से बना है। प्रत्येक वाकालवासी वस्तु, संघटन का परिणाम है और इस वाकाल से उत्पन्न है, जो अंगत और अंगत वस्तु है, कल्प के अन्त में प्रत्येक वस्तु वाकाल में ही पुनर्जीव हो जाती है। प्राण वह शक्ति है जिसने वाकाल को बहिष्कृत कर विश्व की रचना की है। ठीक जिस प्रकार वाकाल सर्वव्यपितमान और सर्वव्यापक है, उसी प्रकार प्राण भी इस विश्व को सर्व समस्त एवं सर्वव्यापिनी बहिष्कृतिका शक्ति है। वायु में गुरुत्वाकर्षण शक्ति, धक्का-चक्का शक्ति, विद्युत् शक्ति, विचार-शक्ति, नाड़ीप्राण आदि कितनी शक्तियाँ हैं वे सब प्राण नामक एक ही शक्ति की निम्न २ बहिष्कृतिका है। काः प्राण विश्व की मानसिक एवं शारीरिक सभी प्रकार की शक्तियों की समष्टि है। इस समष्टि वायु के जो नियम हैं वही व्यवस्था वायु में भी लागू होती है। काः प्राण ही प्रत्येक जीव की जीवन शक्ति है।

अथर्व वेद में प्राण का स्वरूप

“प्राण विराट् है, प्राण एकता प्रेरक है इसलिए सब इसकी उपासना करते हैं। प्राण सूर्य-चन्द्रमा है और प्राण ही प्रजापति है।”

अथर्व वेद के ११ वें अध्याय के चतुर्थ सूक्त में भी प्राण को समस्त संस्कार का स्थापक स्वीकार किया है -

“यो भूतः सर्वव्यापरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।” २

अथर्व वेद के इसी सूक्त में प्राण का स्वरूप एवं कार्य की निम्न प्रकार वर्णित है -
प्राण ने वज्र द्वारा विशाल पृथ्वी को सींच दिया तब जीव-जन्तु दृष्टि में

१- प्राणी विराट प्राणी वैष्णवी प्राण सर्व उपासी ।

प्राणी ह सूर्यचन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ अथर्व ११/४/१२

२- अथर्व ११/४/१

हैन्दोग्य में प्राण का स्वरूप

“ सर्वाणि ह वा ह्यानि भूतानि प्राणमेवामिदं विवर्त्तन्ति
प्राणमनुजिह्वस्यते । ” १

ये सब भूत प्राण में हीन होते हैं और प्राण से प्रादुर्भूत होते हैं ।

उपनिषद् में प्राण स्वरूप का वर्णन

“ अपश्यं गोपामनिष्कमान , मा च परा च पथिमिस्वरन्तम ।

उ छद्मीवीः उ विन्धूवीर्वसान, वावरीवर्ति भुवनेऽन्तः । ” २

इस मंत्र के द्रष्टा पीप्लया ऋषि कह रहे हैं कि मैंने प्राण को देखा है- वात्सा-
त्कार किया है। यह प्राण सब इन्द्रियों का गोपा (रक्षक) है। यह कभी
नष्ट नहीं होने वाला है। यह मन्त्र २ मार्गों द्वारा नाड़ियों के द्वारा जाता
जाता है । मुख तथा नासिका के द्वारा प्राण प्राण में इस शरीर में जाता है
तथा फिर जाता जाता है। यह प्राण शरीर में व्याप्त रूप में, वायु रूप में
है , परन्तु अद्वितीय रूप में भूयं है ।

प्राणियों में प्राण विषा का प्राणिमात्मक वर्णन
है तथा आरण्याओं में प्राण विषा का विस्तृत विवेकन किया गया है।

प्रश्नोपनिषद् में प्राण का उत्सव

“ यह प्राण वादित्य रूप से मुख्य तथा आ-
न्तर विशाओं को व्याप्त कर वर्तमान है और समस्त भूषणों के मध्य में बार बार

१- हैन्दोग्य १।११।५

२- उपनिषद् १।१६४।३१

वाक्य निवास करता है। इस समय है यही धारण निश्चय है कि इस समय
चित्त है कि, मनुष्य तथा पशु वादि अन्य प्राणी वायु है धारा व्यापक है।

प्राण कसूत रूप है। यह एक अज्ञात रूप है। यह
विज्ञात है, यह तरीक़े मुक्त की प्राप्ति नहीं होता। यह विज्ञान की पुष्टि
के लिए कर्मों में यह पद दिया गया है-

* अथाह० प्राह०पि स्वध्यानादपि नार्थोऽपत्त्येता सुधीनिः ।

सा ह्यस्या विष्णुपीना निदंताम्यथ विष्णुं निविश्युष्यम् ॥ २

“ यह प्राण एक शरीर में स्वयं - अन्य के द्वारा ही स्थित है । यह यह भूमादि की निम्नलिखी के लिए अधिभाग में बाया करता है तथा स्वास के लिए फुल आदि उर्ध्व भाग में उर्वरणा किया करता है। अर्थात् यह अथान तथा प्राण के रूप में शरीर में जीवा उर्वार किया करता है। प्राण अन्तर्ध है- अर्थात् प्रत्यक्ष रहित है, परन्तु यह प्राण धर्म बाहे शरीर के बाय ऊपर एक स्थान पर निवास करता है। ये शरीर तथा प्राण विविध व्यापार सम्बन्ध है तथा बाय में नि-
रुद्ध है, क्योंकि फुल ही धाने पर शरीर फुली पर फिर बाता है परन्तु प्राण ऊपर किछो जीवाम्बर में रता बाता है । ”

उपस्थित अथवा नहीं के आधार पर हमको यह स्वीकार करना है कि प्राण का विश्व का धारक है। प्राण की ही शक्ति से जैसे वह वाक्यात सभी स्थान पर स्थित है, उसी तरह सभी जीव प्राणी से लेकर बौद्धि तक अथवा जीव का प्राण के द्वारा ही विभूत है। यदि प्राण न होता

१- वागित्थी वै ब्राह्मण उपपादेन पूर्णं वाच्यं प्राणमयमिति ॥

• प्रदीपनिबन्ध १।७

२- ५५५ १११६१५

तो उस विश्व का जो महान संस्थान हमारे नेत्रों के समक्ष खड़ा आश्चर्य पैदा किया करता है, वह कहीं भी नहीं रखा ।

कर्म वेद में प्राण की व्याख्या

“ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं बभूव ।

यो भूतः सर्वस्यैश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ” १

“ प्राण की भेदा नमस्कार है जिसके अधीन समस्त संसार है। वह सबका ईश्वर है जिसमें समस्त संसार स्थित है । ”

कठोपनिषद् में प्राण का स्वरूप

“ यदिदं किं न जगत्सर्वं प्राण एवेति निवृत्तम् । ” २

“ प्राण तत्त्व की ही संपूर्ण दृष्टि का मूल कारण कहा है । ”

“ यह जो कुछ है सब प्राण है, सब प्राण के स्फन्दन से निर्मित हुआ है। दृष्टि के प्रारम्भ में उसी सर्व प्राण उत्पन्न होता है । इन्द्रियाँ, मन और पंच महाभूत सब उसी के विकार हैं। क्या शास्त्र का व्यवस्त कसा प्रभान (प्रकृति) प्राण ही है, कसा प्राण उसी भिन्न कोई और तत्त्व है ? उसका उत्तर प्राण शब्द में ही समाविष्टित है । शास्त्र का व्यवस्त केवल प्रकृति माना जाता है, इसलिए शास्त्र के व्यवस्त को केवल न मानकर चेतन प्रस की चेतन सचित या चिति- सचित मान लिया जाय तो उसे प्राण कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, शास्त्र के सिद्धान्त है हम प्राण की व्याख्या उपर्युक्त रूप से कर सकते हैं । ”

१- कर्मवेद ११।४।१

२- कठोपनिषद् ६।२

३- योगशास्त्री- सत्ययोग विवेचनार्क जनवरी १९८१ पृ० ८८

भी हार्ड मरफट ने "योग" नामक पुस्तक में प्राण की सत्ता की स्वीकार करते हुए लिखा है कि "प्राण ऐसी वस्तु नहीं जिसकी प्राणों से जुक्त करते सीधेसादा में परीक्षण हो, लेकिन सत्य यह भी कई नहीं कि सत्ता अस्तित्व नहीं। एक समय या सब विस्तृत की पूर्ण शक्ति, रेडियो, एच-रे आदि के आविष्कार विज्ञान के द्वारा नहीं हुए थे लेकिन उन सत्ता अस्तित्व था, और यह अस्तित्व दुष्ट के प्रारम्भ में था। कई २ योगियों ने जीवन की प्रयोगशाळा में यह सिद्ध कर दिया है कि उनके लिए प्राण एक शक्ति है।"

प्राणायाम का कार्य

स्वातन्त्र्य-प्रवाह की गति की रीतिना क्या उसके स्वाभाविक रूप में कृत्रिम बाधों को हटाने के लक्ष्य में करते हुए प्रवाह के कभीन करने की प्रक्रिया को प्राणायाम करते हैं।

महर्षि पंथसि ने प्राणायाम की निम्न प्रकार वर्णित है-

"उच (वासन) के स्थिर होने पर स्वातन्त्र्य

१- PRANA is not a thing that has been isolated and identified in scientific research laboratories. But that does not mean it does not exist. There was a time when the great forces of electricity, radio waves, X-Rays, and many others, were not known to science. But they all existed and beginning of time..... the great logic proved that the force of prana for themselves in the laboratory of life.

- Howard Murphet - Yoga p. 29

प्रत्यास की गति को रोकना प्राणायाम है। " वायु वायु का उन्मूलक प्रोक्त करना स्वास और कोष्ठस्थ वायु का नासिका द्वारा बाहर करना प्रत्यास कहलाता है।

योगसूत्र में, नासिका द्वारा बाहर निकलने और रोकने दोनों से मन की स्थिति को सम्पादन करने का उल्लेख मिलता है।

महर्षि व्यास जी ने इसी प्रकार भाष्य किया है- " कोष्ठस्थ वायु को नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा प्रकृत विशेष से बाहर निकालने को प्रवर्धन कहते हैं। बाहर मन की हुई वायु को वहीँ पर रोक देने को विधारण कहते हैं। प्रवर्धन और विधारण दोनों प्राणायामों से मन की स्थिति को सम्पादन करें। "

योगवार्तिक में प्राणायाम

" प्राणी की समस्त उन्मिद्यकृतियों के व्यापार की गति देने वाली बीजनी शक्ति को नियन्त्रित करना है। वह बीजनी शक्ति ही प्राण-वपान से वभिप्रेत है। "

१- तस्मिन् उति स्वास प्रत्यासयौर्गति विच्छेदः प्राणायामः ।

- फांजि- योगसूत्र-साधनपाद ४६

२- प्रवर्धन विधारणान्यां वा प्राणस्य ॥

- फांजि- योगसूत्र १।३४

३- कोष्ठस्य वायौर्नासिका प्लुताभ्यां प्रकृतविशेषादप्यप्रवर्धनम् विधारणं प्राणायामस्ताभ्यां वा मनसः स्थितिं सम्पादयेत् ॥

- फांजि- योगसूत्र - व्यास भाष्य १।३४

४- बीजनाम्नी उन्मिद्याणां वृत्तिः प्राणनापाननादिरूपेभ्यः ॥

- योगवार्तिक ५० ३५७

कुण्डलीपनिषद् में प्राणायाम

“ रोक . प्रक . हुम्क केद से प्राणायाम
कीन प्रकार का है । ”

छाण्डोग्योपनिषद् में प्राणायाम

“ प्राण जमान के उभायीन की प्राणायाम
कही है । ”

योगसिद्धोपनिषद् में प्राणायाम

“ प्राण की रोक कर उठी प्राण के कम्बर
झाना बाधिए । ”

बीजकृष्णगीता में प्राणायाम

“ जमान में प्राणवायु की छन करी है की
ही (अन्य योगीजन) प्राणवायु में जमानवायु की छन करी है तथा अन्य
योगी प्राण और जमान की गति की रोक कर प्राणायाम परायण होती है । ”

१- प्राणायामास्त्र्य प्रीयता रोक प्रक हुम्कः ॥

- कुण्डलीपनिषद् ६।१०

२- प्राणायाम उभायीनः प्राणायामी यवति ॥

- छाण्डोग्योपनिषद् ६।१

३- प्राणान् धारयेत् तस्मिन् नावाभ्यन्तरवारिणः ॥

- योगसिद्धोपनिषद् ४।७

४- बीजकृष्णगीता ४।२६

निष्कर्ष यह है कि रोक प्रकृष्ट दुष्प्रकार की प्रक्रिया है प्राण-व्यायाम की रीति-निकातना ही प्राणायाम की प्रक्रिया है। इसलिए यही प्राणायाम है।

उत्तरीय में प्राणायाम की अनिवार्यता

मनुस्मृति में प्राणायाम की अनिवार्यता

“यिष क्रार (लोहादि) धातुओं के पक्ष
वर्ण में तपाने से नष्ट हो जाती है (उषी क्रार) लोहादि के समस्त दोष
प्राणायाम से निवृत्त हो जाती है।”

मन्वान् दत्तात्रेय ज्योतिषि शिष्य धर्मिष्ठ की
प्राणायाम की अनिवार्यता कहते हुए कहते हैं कि वे धर्मिष्ठ । वादार्थ्य हन
- रोक प्रकृष्ट और दुष्प्रकार तीन प्रकार का प्राणायाम होता है। यह प्रकार का
है: नासक तक कम्पाव करने पर (मनुस्मृति) ज्ञानवान् हो जाता है। प्राण पर
ध्यान करने पर ज्ञान सुख ही जाता है।

वराहीपनिषद् में प्राणायाम

“उन्मिष्यो का नाथ (व्यापी) मन है और
मन का स्वामी वायु और वायु का स्वामी सत्य है। इसलिए सत्य के वासिष्ठ हीना
वासिष्ठ ।” और सत्य की उपलब्धि के लिए प्राणायाम का कम्पाव करना उचित
है।

१- मनुस्मृति ॥ ७४

२- वराहीपनिषद् ॥ १, १०, १२

३- वराहीपनिषद् ॥ ८०

योग साधिष्ठ में प्राण की वनिवार्यता का उत्प्रेष

“ तद्दीर्घं रूपं त्वं को गति के तिर संस्वर ने
 मन कीर प्राण का वनि किया है, बिना इसके तद्दीर्घ त्रिवासीत ही ही नहीं
 होता । प्राण के निष्ठ जाने पर तद्दीर्घ का कार्य समाप्त ही जाता है। मन मन
 कार्य ही होता है तब प्राण तद्दीर्घ में गतिहीन होता है। प्राण के सम्पन्न होने
 पर ही मन गतिहीन होता है। ”

मीमांसाग्रन्थ में प्राणायाम की आवश्यकता का उत्प्रेष

“ बाह्ये शीघ्र-के तिर समस्त पुनः पुनः पुनः
 रोक पुन है अन्तः इसके विपरीत रोक, पुनः, पुनः करते प्राण के मार्ग का
 शीघ्र करे किन्तु बिना विरक्त ही जाय । ”

ह० ६० व० में प्राणायाम का उत्प्रेष

“ मन तक प्राण पुनः हीकर पञ्चमार्ग
 (पुनःपुनः) में प्रीति नहीं करता तथा मन तक बिना वाक्य के समान निष्ठ
 नहीं ही जाता तब तक मन निष्ठ, पञ्च कीर प्रसाध है। मन प्राण हीना
 पञ्च मार्ग (पुनःपुनः) में प्रविष्ट कर जाता है, योगी मनो समाधि में पहुँचा
 है कीर समस्त मनो है किन्तु हीकर समस्त मनो- विचारों से रहित ही जाता
 है । ”

ह० १० में प्राणायाम

“ प्राण स्थिर नहीं ही कोई वस्तु स्थिर

१- योगसाधिष्ठ ३/२४/३४ से ३८ तक

२- मीमांसाग्रन्थ ६। २५। ३

३- ह० ६० व० १। ७ व०

महो है। किन्तु लक्ष्मी (प्राणायाम) से उसे स्थिर हो जाती है।

घेरुण्ड उक्ति में प्राणायाम

घेरुण्ड उक्ति में प्राणायाम की वनिवाक्य स्वीकार करते हुए लक्ष्मी तथा वायवी के सम्पर्क ' प्राणायामास्तावत् ' कर्वातु प्राणायाम से की वायु की प्राप्ति का उल्लेख किया है। घेरुण्ड उक्ति के संक्षेप में प्राणायाम के अन्वय से यह मुख्य वैकृत्य ही जाता है- ' वायु वायव्याणि वैकृत्योन्मिरः ' का उल्लेख किया है।

ह० प्र० में क्लृप्त की स्थिति करने के लिए प्राण-वायु निरोध पर बल दिया है- प्राणवायु के स्थापमान होने पर क्लृप्त भी बल ही जाता है, और प्राणवायु स्थिर हो तो क्लृप्त भी निश्चल होता है। स्वाणु-त्त्व की प्राप्ति के लिए वायु प्राण का निरोध करना बाह्य शरीर में जब तक प्राण वायु है तभी तक बोजन है, जब शरीर से प्राणवायु निकल जाता है उस दृश्य ही जाता है, इसलिए वायु (प्राण) का निरोध करना चाहिए।

स्वात्माराम का कहाँ वायु निरोध से तात्पर्य प्राणायाम अन्वय से है। योगाभ्यास के लिए घेरुण्ड तथा स्वात्माराम दोनों ही प्राणायाम की आवश्यकता की स्वीकार करते हैं।

नाड़ी शोध विधान

भित्तिक्रावणीपमिन्धु में नाड़ी शोध

" वासि वायु की नाडिका पुटी पर रहें तथा

१- ह० १० ३१७६

२- वै० ह० ११११

३- .. ५११

४- ह० प्र० २१ २,३

फिंगर (ध्रुव) स्वर से वायु का लीः लीः रैक करें फिर लड़ा (चन्द्र) स्वर से लीकत मात्रा एक बज करी हुए वायु को गुरुक करे तथा लीकत मात्रा से धुम्क करे तथा कर्त्तवीस मात्रा से धुम्क प्रकार से फिंगर (ध्रुव) स्वर से रैक करे । तथा एक प्रक्रिया को चतुष्टय से करे । एक दिन में बार बार तथा एक बार में कस्की प्राणायाम करे । एक प्रकार एक वर्ष तक प्राणायाम पारायणा होना है तो वह समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है तथा वायु को जोष कर योगी योग सिद्ध हो जाता है ।

दर्शनोपनिषद् में नाड़ी शोधन विधान विशिष्ट-
ब्राह्मणोपनिषद् के मुख्य ही उपलब्ध होता है।

योगब्रह्मसूत्रोपनिषत् में नाड़ी शोधन विधान

“ लड़ा से वायु का नियमित रूप से गुरुक करे तथा फिंगर से रैक करे, फिंगर से समीर को पीते हुए लड़ा से रैक करे । एक प्रकार ध्रुव चन्द्र स्वर से रैक गुरुक करने से दो मास में नाड़ी शोधन हो जाता है । ”

बहिरंग योग में नाड़ी शोधन प्रक्रिया

“ कुमाऊ पर बैठकर , दाढ़ नखी की दाढ़ हाथ के कंठ से दबाकर प्राणवायु को धीरे धीरे मुलाधार तक भर दें । किता धुम्क किये ही दाढ़ नखी से लीः लीः रैक करें । इसी प्रकार नासिका के बायें

१- विशिष्टब्राह्मणोपनिषद् मंत्र भाग पु० ६५ से ६७ तक एवं १०१, १०२

२- दर्शनोपनिषद् ३॥ से १०

३- योग ब्रह्मसूत्रोपनिषत् पु० ६८

कि वह पूर्णतः प्राण का प्रसक्त नहीं किया हुआ है। ऐसे प्रकार
कहते हैं और कभी कभी कहते हैं ।

उत्तराध्यायी में नाड़ी शोधनप्रक्रिया

“ प्रमाण पर स्थित होकर योगी कदा दारा
वायु प्रसक्त करे तथा कदा के दारा को रोक करे तथा प्रसक्त रोक के अन्तर में ही
हृत्प्रसक्त करे । पिता (पूर्व) के प्रसक्त करते हुए उदर को वायु से पूर्ण करे तथा
प्रसक्त करे के प्रसक्त करे ततः ततः कदा (अन्त) के रोक करे । ”

कदा के प्रसक्त करे हृत्प्रसक्त करते हुए (पिता)
के रोक करे । फिर पिता के प्रसक्त करते हुए हृत्प्रसक्त करे तथा कदा के रोक
करे । इस प्रकार इन दोनों पर स्थापना करते हुए योगियों का तेल नाड में
शोधन हो जाता है^१ ।

गौरवा पद्धति में नाड़ी शोधनविधान

“ चन्द्रांग मूर्धांग से बारह (१२) मात्रा
संयुक्त प्रसक्त अन्तः - पूर्व अन्तः ध्यान सुप्त पीठ (१४) मात्रा हृत्प्रसक्त
बारह (१०) मात्रा के रोक करे अन्तः पूर्व नाड़ी पद की नाड करते हैं ऐसा
योगियों की जानना चाहिये । ”

४० प्र० में नाड़ी शोधन विधान

“ जब तक (शरीरगत) नाडिका पद से परी
हुई है, तब तक प्राण वायु मन्त्रात्मको (सुशुद्धा से प्राप्त) नहीं होती ,
और न उष्मको कल्पना की प्राप्ति होती है तो कार्य सिद्धि योग सिद्धि कि

१- ४० १० अन्तः से ८०

२- गौरवा पद्धति ५० ६०, एकीक ३०४

प्रकार होगी : जब मत है परिपूर्ण नाड़ी का रुह ही जाता है तभी योगी प्राण संग्रहण में काम है। सात्त्विक बुद्धि है नित्य प्रति प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए जिससे सुषुम्ना में स्थित मत की बुद्धि ही रहे।

यह प्रमाणन लगाकर योगी चन्द्र नाड़ी है प्राण वायु को धृष्ट करे फिर व्यासक्ति धारण करे सूर्य नाड़ी है रैन करे । सूर्य नाड़ी है प्राण को धृष्ट करे लैः लैः उदर को धृष्ट करे विधिवत् धृष्ट करता हुआ चन्द्र नाड़ी है रैन करे । जिस नाड़ी है प्राणवायु बाहर निकले उसी है फिर प्राणवायु अन्दर लीकर धारण कर उसे लैः २ हुचरी नाड़ी है बाहर निकले ।

यदि (साधक) चन्द्र नाड़ी बायीं नासा है प्राणवायु अन्दर (उदर में) भरता है तो उस नियमित (अन्दर स्थित) वायु को हुचरी बायीं नाड़ी है बाहर निकालना चाहिए । यदि सूर्य नाड़ी- बायीं नासा है उस वायु का पान करता है (उस वायु को लीकर अन्दर उदर में भरता है) तो उस उदर स्थित वायु को बायीं नासा है बाहर निकाल देना चाहिए । इस तरह सूर्य और चन्द्र नाड़ी- बायीं- बायीं नासा है विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करे तो अभ्यासी को नाड़ियाँ तीन मास में मत रहित हो जाती हैं।

साधक को बार बार (दिन रात की सम्पूर्ण अवधि में प्रातः, मध्याह्न, सायं और रात्रि के समय लैः लैः (प्रत्येक समय) बस्ती बस्ती (८०-८०) धृष्ट प्राणायाम करना चाहिए ।

“ज्योत्स्ना टोका” में ब्रह्मानन्द ने उपर्युक्त श्लोक का वाक्य निम्न व्यक्त किया है- “बहुणादयः है तीन छोटी दिन

१- ४० प्र० स १०, ११ ४-८

२- ४० प्र० स १०, ११ ९०, ९१

बढ़ने के समय की प्रातःकाल, मध्याह्न (दोपहर) सुयस्त्रिंश के मध्य का समय, सायंकाल- सुयस्त्रिंश है तीन घड़ी बाद तक का समय तथा रात्रि के मध्य का समय वर्ष रात्रि कहा जाता है। प्रत्येक बार ८०-८० के क्रम से प्राणायाम की संख्या तीन ही बीच (३२०) ही जाती है। यदि तीन बार ही किया जाय (मध्य रात में न किया जाय) तो संख्या २४० ही रहती है।^१ "

उठपड़ीफिका में नाड़ी शोधन कन्यास का परिणाम

" कनिष्ठ (अल्फासीन साधारण कौटि के) प्राणायाम का कन्यास करते समय (साधक के शरीर पर) क्लिप्ता वा जाता है, मध्य (कनिष्ठ है भी कुछ विशिष्ट समय की मध्यम कौटि) के प्राणायाम में (साधक को) कम्प का अनुभव होता है। उत्तम पैण्टी (मध्य से अधिक समय तक स्थिरतापूर्वक किये जाने वाले) प्राणायाम से साधक ब्रह्मरन्ध्र में प्राण स्थिर कर उत्तम स्थान प्राप्त कर लेता है, इसलिए प्राण वायु को (कुम्भक प्राणायाम से शरीर के अन्दर दीर्घकाल तक) स्थिर करना चाहिए। "

प्राणायाम के कन्यास के भ्रम से शरीर पर जो स्वेद - बल कण उत्पन्न हो जाते हैं उनकी शरीर पर पतना चाहिए, ऐसा करने से शरीर में दृढ़ता, उचित और सद्यता (जड़ता का नाश) स्फूर्ति पैदा होती है।

कन्यास काल से पूर्व मौजन विधान

(प्राणायाम के) कन्यास काल से पूर्व (साधक को) दूध और पी बादि से सुकृत (पीष्टिक) मौजन करना चाहिए। कन्यास

१- योगशास्त्री उठपड़ी विवेचन - जनवरी १९८१ पृ० ४४, ४५

२- उ० प्र० सं० ११-१२

के दृढ़ (परिफल्य) हो जाने पर ऐसे नियम पालन की आवश्यकता नहीं ।

हठप्रोक्त की नाड़ी शोध सुविध

“ जिस तरह स्त्रीः स्त्रीः सिंह, शायी और व्याघ्र वन में ही जाती हैं, वन्यबा (शीघ्रता करने से) पालने वाले की ही मार हासते हैं, ठीक इसी तरह (प्राणायाम के) धीरे धीरे वन्यास से प्राण वायु वन में ही जाती है, वन्यबा (शीघ्रता करने से तत्काल सिद्धि मिलने की वपिता) श्रुति होने पर साधक के प्राणान्त कर देती है । ”

हठ प्र० के विधिपूर्वक नाड़ी शोधन से रोग उत्पन्न

श्रुति है कि ये नाड़ी शोधन वन्यास से अमृत प्रकार के रोगों से श्रुति जाती है। अमृत वन्यास से बीज प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। (विधिरहित अमृत) प्राणायाम करने से वायु श्रुति हो जाती है और सबसे बिल्का- बिल्की खास और कास- बुख साँघी , कान , नाँस और चिर रक्त बादि रोग उत्पन्न होते हैं ।

विधिपूर्वक धीरे धीरे (नाड़ी शोधन वन्यास + करते समय) वायु का रोक करना बाहिर और श्रुतिपूर्वक वायु को उदर में भरना बाहिर (ऐसा न हो कि एक बार बहिर और दूसरी बार कम वायु भरे) (इसी तरह) श्रुतिपूर्वक नासन्धर बादि वन्धों का वन्यास करते हुए वायु को उदर में धिर (कृष्ण) रक्ता बाहिर । इस तरह वन्यास करने से (साधक को) सिद्धि प्राप्त करने बाहिर । ”

हठ प्र० की नाड़ी शोधन प्रक्रिया से अन्य लाभ

“ श्रुति (विधिपूर्वक प्राणायाम) से जब

नाड़ी (के मध) की दृष्टिहीनता है- नाड़ी कम निर्मल ही जाती है, तो उस दृष्टि के हटाए गए हैं- शरीर स्थिति और कान्ति दृष्ट ही जाता है, यह निश्चित है । नाड़ी दृष्टि के परिणामस्वरूप वायु धारण की क्षमता की दृष्टि होती है। अंतराग्नि प्रतीक होकर नाद बध्ना होती है तथा बरीयता की प्राप्ति होती है।

“अनादि देवता की पुण्य के मय है (शरीर की कवर कवर रहने के लिए) प्राणायाम के कल्याण में तत्पर रहते हैं, इसलिए प्राणायाम का कल्याण करना चाहिए । जब तक शरीर में प्राण वायु स्थिर है, जब तक चित्त अनादिता लान्त है, जब तक (बाध की) दृष्टि दोनों पीछों के मय में स्थिर है, जब तक धारण का मय नहीं रहता- बाध दीर्घवर्ती होता है ।

(बाध, कथ्य आदि है दृष्ट) विधिपूर्वक प्राणायाम का कल्याण करने से नाड़ी क्लृप्त का लोभ होने पर प्राणवायु पुनर्ना नाड़ी के क्लृप्त का भेदन कर उसमें पुनर्ना प्रविष्ट होती है। प्राणवायु के मय नाड़ी (पुनर्ना) में संसार है मय स्थिर होता है और उन्मत्ती कल्याण होती है।

(दृष्ट प्राणायाम के कल्याण के) विधान की जानने वाले उन्मत्ती कल्याण की विधि के लिए की मार के (पूर्व भवन , उन्मत्ती , क्लृप्ती , पत्निका आदि) दृष्ट कल्याण करते हैं । की दृष्ट के कल्याण से की विधियां प्राप्ति होती हैं ।

धरुण्ड धरुण्ड में नाड़ी लोभ- विधान

“ क्लृप्त है निर्मल बाध, पुन, व्याघ्र, कल्याण,

१- व० प० सं १६-२०

२- .. सं २६ से ४३ तक

एक क्षण में वे कोई बात पर पूर्ण विष् की उत्तर विष् की ओर मुड़ करके स्थित होकर नाड़ी सीधे होने पर ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

धैर्य संज्ञा के शिष्य ब्रह्मकायसि ने धैर्य के प्रकाश में नाड़ी शुद्धि कि प्रकाश होती है उसका स्वरूप क्या है, इसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ, उसे बतायें।

धैर्य ने उत्तर दिया- "यह है परी नाड़ियों में प्राणवायु का प्रवाह नहीं होता, फिर प्राणायाम लाभ कैसा ? और उत्पन्न लाभ ही कि प्रकाश ही, इसलिए यही नाड़ी सीधे करना चाहिए। इसलिए यही नाड़ियों का सीधे करना चाहिए उत्पन्न प्राणायाम का वह अभ्यास करें।"

धैर्य की समुद्र- निर्मल प्रक्रिया

"धैर्य संज्ञा के अनुसार नाड़ी सीधे समुद्र और निर्मल मेरु से ही प्रकाश का है। बीच में ही ही नाड़ी सीधे होता है- उसे समुद्र और धीरे धीरे ही होने वाले सीधे की निर्मल करने ही धीरे धीरे का यही निरूपण किया जा चुका है। समुद्र नाड़ी शुद्धि की होती।

कुनायन है बैठकर सुनिश्चित करें। गुरु के बादिलानुसार प्राणायाम के लाभ के लिए नाड़ी सीधे करें। फिर वायु-बीज "यं" का ध्यान कर उस बीच में ही सीधे बार (२६) ब्रह्म हुआ बायीं नाड़िका से वायु की सीधे। ध्यान के समय इस वायु-बीज की बीच सुप्त धृष्ट वर्ण का मानना चाहिए। इस प्रकार चन्द्र मार्ग से शुरू करने के पश्चात् बाँध (६४) बार ब्रह्म करते हुए शुरू करें, और फिर ब्रह्म बार (३२) ब्रह्म हुआ बाँधों नाड़िका से शुरू करें।^{१)}

१- पृष्ठ ३३ से ३४

२- .. पृष्ठ ३६ से ४० तक

“ नामि केन्द्र में बलि तत्त्व की उचित कर
 “ सं ” तुल्य कुम्भी तत्त्व की निहाकर ध्यान करे । नीलस मात्रा “ र ” बलि
 का ध्यान कर दाहिनी नासाग्र से प्रारंभ करे । चौथठ (४४) मात्रा से कुम्भक की
 कथा कत्तीस (३२) मात्रा से बस करता हुआ कन्द्र नाड़ी से रोक करे ।

पै० सं० में पुनः सं , व , सं बलि मंत्रों से नाड़ी सीध

“ नाडिका के वह क्षेत्र में कन्द्र बिम्ब के ध्यान-
 पूर्वक “ सं ” बलि की पीछे मात्रा से बस करे, वीर वाम नाडिका से “ सं ” बलि
 से बाह्य की परे , पुनः “ व ” बलि मंत्र से चौथठ बार बीजता हुआ, कुम्भका
 नाड़ी से कुम्भक द्वारा बाह्य धारण करे । नाडिकाग्र से क्लृप्त टपक रहा है, उससे
 शरीर की सभी नाड़ियाँ सुत रहने हैं। इस प्रकार ध्यान करते “ सं ” बलि की
 कत्तीस बार बसता हुआ, दक्षिण नाका से रोक कर दे । इस प्रकार नाड़ी
 सीध प्रक्रिया से नाड़ियों का सीध कर वासन पर बढ़ता है बैठकर प्राणायाम
 का अभ्यास करे । ”

चतुर्थी में प्राणायाम के प्रकार

बीजमन्त्रकार परार्जि पंडित ने प्राणायामों
 का निम्न प्रकार वर्गीकरण किया है- “ वायु- प्रत्यास, वाय्वन्तर वीर स्व-
 भ्रुति (रोक, प्रारंभ एवं कुम्भक) क्षेत्र काय वीर संख्या से देखा हुआ, दीर्घ ,
 सूक्ष्म, सम्बा वीर रहता होता है । ”

उसी पुनः पर व्यास भाष्य इस प्रकार है- “
 विषम स्वास की बाहर निहाकर गति का ज्ञाप किया जाता है वह वायु कव-
 हाता है । विषम स्वास लोकर गति का ज्ञाप किया जाता है वह “ वाय्वन्तर ”

१- पै० सं० ५/५९ से ५५ तक

२- वायुवाय्वन्तरस्वभ्रुतिर्लोकस संख्यामि परिदृष्टी दीर्घ सूक्ष्मः ॥

कहा जाता है। जिसमें दोनों का आव हीता है वह "सामान्य" है, जो प्रत्येक-
पूर्ण होता है।"

"प्राण और अपानवायु के मिलाने की प्राणा-
याम कही है। प्राणायाम कही है रोक, धृक् और कृष्ण की प्रक्रिया समझी
जाती है। रोक, धृक् और कृष्ण यह तीनों वर्ण रूप हैं क्योंकि इन तीनों में तीन
तीन वर्ण होते हैं। यही वह प्रणव कहा गया है। प्राणायाम प्रणव रूप ही है।
(कि प्रकार बीजम् में क-उ-म ये तीन वर्ण हैं, उही प्रकार धृक्, रोक और
कृष्ण में तीन तीन वर्ण हैं इसलिए ये तीनों प्रणव ही हैं। "

कुरुक्षेत्रीपनिषद् व वराहीपनिषद् में भी
रोक, धृक् और कृष्ण तीन प्राणायामों का उल्लेख किया है। योगसूत्रपनिषद्
में पूर्व कृष्ण, उज्वायी कृष्ण, तीक्ष्ण कृष्ण तथा मन्त्री कृष्ण - चार प्रकार के
कृष्णों का उल्लेख किया है। योगसिद्धीपनिषद् में भी पूर्व मैत्री, उज्वायी, तीक्ष्ण
तथा मन्त्री- चार प्रकार के कृष्णों का विवेचन किया है।

१- योगसूत्र- व्यास भाष्य पृ० २५०

२- प्राणापान समायोगः प्राणायाम इति श्रुतिः ।

प्राणायाम इति प्राणवी रोकधृक्कृष्णः॥

वर्णव्यापका इति रोकधृक्कृष्णः ।

उ एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामसम्पन्नः ॥

- योगिसागरस्य ॥ २ ॥ ३ ॥

३- कुरुक्षेत्रीपनिषद् ६।१०

४- वराहीपनिषद् ४।५७

५- योगसूत्रपनिषद् १।२२

६- योगसिद्धीपनिषद् १।५५

* साङ्ख्योपनिषद् में उज्वायी, वीत्कार, तीक्ष्ण हृष्ण प्राणायामों के उत्तैल के साथ हृष्ण प्राणायामों के उत्तैल के साथ हृष्ण में भी वक्षि हृष्ण तथा केवली हृष्ण का वर्णन प्राप्त होता है।

योगसारसंग्रह में प्राणायाम प्रकार- रेक प्रकृ हृष्ण तीन प्रकार का प्राणायाम है तथा केवली हृष्ण चतुर्थ प्राणायाम है।

गौरवावस्थिता में वक्षि, सुखीदी, उज्वायी, तीक्ष्ण, वक्षि, प्रामरी, मुख्या, तथा केवली हृष्ण वाठ प्रकार के प्राणायामों का विवरण दिया है।

वृद्धावस्थिता में सुखी दी, उज्वाया, वीत्कार, तीक्ष्ण, वक्षि, प्रामरी, मुख्या तथा केवली हृष्ण - वाठ प्रकार के प्राणायाम वेद वीत्कार मट्ट ने बताया है।

ह० सं० ४० में सुखी दी, उज्वायी, वक्षि, मुख्या, सावित्री, वीत्कार, तीक्ष्ण तथा प्रामरी वाठ हृष्णों का उत्तैल मिलता है।

ह० प्र० में प्राणायाम वेद

* सुखी दी, उज्वायी, वीत्कारी, तीक्ष्ण, वक्षि, प्रामरी, मुख्या तथा सावित्री ये वाठ प्रकार के हृष्ण प्राणायाम कहे गये हैं।

१- साङ्ख्योपनिषद् १।१३३ १ से ५ तक

२- योगसार संग्रह पृ० ६६

३- गौरवावस्थिता पृ० १६५

४- वृद्धावस्थिता १५

५- ह० सं० ५० क से ६० तक

६- सुखी दी, उज्वायी वीत्कारी, तीक्ष्ण तथा वक्षि, प्रामरी मुख्या सावित्री

त्यक्त हृष्णः । ह० प्र० १४४

६० प्र० में कृष्णक व्यास विधि

“ (कृष्णक) प्राणायाम (का व्यास) करते समय (वायु अन्दर लीपने के पश्चात्) प्ररु के अन्त में जालन्धर बन्ध और कृष्णक (प्राणवायु बाहर फेंकते समय) के अन्त में रैक के पक्षे उडिय-यान बन्ध करना चाहिए ।

नीचे के प्रैर (रुवा प्रैर) के वायुन से मूलबन्ध से और कण्ठ की छिड़ कर हृदय प्रैर में लगाने से (जालन्धर बन्ध से) तथा मध्य में पश्चिमत्तान (नाभि- प्रैर की पोठ की ओर वायुष्ट कर उडियान बन्ध लगाने) से वायु ब्रह्मादी- हुम्मा में प्रैर करती है । ”

(बाधक की) प्राणवायु की ऊपर उठाते हुए (से जाते हुए) कण्ठ के नीचे (हृदय प्रैर की ओर) से जाना चाहिए । पहले योगी सुदापा से हुटकारा पा जाता है और वह चौलह साल का (स्वल्प) युवक ही जाता है । ”

“ वपानवायु की ऊपर और प्राणवायु की नीचे की ओर से जाने पर दोनों के मेल से (प्राण के हुम्मा में प्रविष्ट करने पर और उच्च मध्य नाड़ी का सुत सुत जाने पर) वायु ऊपर की ओर

१- प्ररुकांती तु कर्त्तव्या बन्धी जालन्धरानिधः ।

कृष्णकान्ते रैकादी कर्त्तव्यस्तु डिडियानकः ॥

क्यस्ताद् हुंकीनात् कण्ठ लीपने कृते ।

मध्यै पश्चिमत्तानेन स्याद् प्राणो ब्रह्मादिनः ॥

- ६० प्र० सं० ५ व ४६

२- ६० प्र० सं० ५७

प्राप्ति होती है, इसके कुण्डलिनी प्रारण में सहायता मिलती है। बालन्धर बन्ध और मूलबन्ध के चित्त होने पर उद्दिष्टानबन्ध (वाकर्षण बन्ध) स्वतः चित्त हो जाता है। संत योगी ज्ञानेश्वर ने नीता की टीका ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय में कहा है- " मूलबन्धे बालन्धरबन्धे च कृते नानेष्टीमान- वाकर्षणा- त्पीबन्धः स्वयमेव भवति । "

पै० सं० में कुम्भक प्राणायाम पैद

" सखि, धूर्य भेदन, उष्णायी, सीतली, मस्त्रिका, प्रामरी, मूष्ठी तथा केवली ये आठ कुम्भक हैं । "

पै० सं० में " सखि " कुम्भक पैद

" सखि कुम्भक दो प्रकार का होता है, जो वीर्य मंत्र के साथ कुम्भक होता है, उसे " सखि " तथा वीर्य मंत्र रहित को " निर्गम " कुम्भक कहते हैं । "

सखि प्राणायाम की विधि

श्रीं मुत वा उत्तर मुत होकर, कुलप्रति वाज पर बैठकर प्रजा का ध्यान करे, प्रजा सात वर्ण " व " कार कपी और खो- पुष्ट हुनत है ।

बाय बाबापुष्ट है " व " वीर्य की सीतल बार बपता हुआ वासु नरे, कुम्भक के श्रीं में और प्रसू के अन्त में उद्दिष्टान बन्ध करे

१- योगवाणी- दृष्टयोग विश्लेषांक , जनवरी १९८१ पृ० ६९

२- पै० सं० पृ० ४६

३- ,, पृ० ४७

४- ,, पृ० ४८ से ५१ तक

फिर सब गुण सुक्त ' उ ' कार बीच धुम्क रूप हरि का ध्यान कर चौंछठ बार पप करता हुआ धुम्क करे । तभीपुनी फकार हवी तिम के ध्यान के साथ ' म ' बीच की बत्तीस बार पपता हुआ (लैः लैः) रैक करे । फिर दाहिने स्वर के धुम्क आदि उक्त रीति से करके धुम्क कर तथा बाँये स्वर के रैक करे । इस प्रकार कुलीन- विहीन रीति से करता हुआ, तर्जनी, मध्यमा, इन कुंतियों की न लगावे । क्योंकि वाम- स्वर की कनिष्ठिका और जामिका से और दक्षिण स्वर की केवल कुंठे से फरक ।

निर्गम प्राणायाम विधि

“ बिना बीच मंत्र के निर्गम प्राणायाम होता है । धुम्क, धुम्क, रैक इस तीन की बातें प्राणायाम की एक से ही एक मात्रा है । धुम्क एक गुण मात्रा, रैक द्विगुण मात्रा, धुम्क चतुर्गुण मात्रा का होता है । इसी प्रकार उत्तम प्राणायाम बीच मात्रा का , होता का मध्यम, बारह का कम है। (उत्तम के साधन में धुम्क बीच मात्रा का, धुम्क अस्सी मात्रा का रैक चात्तीस मात्रा का अभ्यास करना चाहिए) । कम के साधन में फलीना जाता है, मध्यम के साधन में पैरुकम्प होता है। उत्तम में भूमि त्याग कर वाकृश में विचरता है। फलीना, पैरुकम्प और भूमि त्याग ये तीनों चिह्न लक्षण हैं । ”

धो धो में प्राणायाम फल

“ प्राणायाम से ताकात कम , रोग की निवृत्ति तथा बुद्धिहीन शक्ति का वाग्गर्ण होता है। जो प्राणायाम का साधन करता है उसी चित्त में वस्तु वागन्द प्राप्त होता है और वह सुखी रहता है । ”

सुखीवी प्राणायाम

योगबुद्धशुपनिषद् में सुखीव उत्तेज - “ दक्षिण

१- धो धो ५१२ से ५६ तक

२- धो धो ५१ से २९

नाड़ी किन्ता है बाहुय जन की ली: ली: कौष्ट रूप में वाक्यित- प्ररु कर
उसे नाम नाड़ी (कडा) है रेल करे । कपास लीज करे हुए ली: ली: रेल
करे । कपास- किन्ता तथा कुमि दोष की नष्ट करे वाता पूर्व की प्राणा-
नाम है ।

योगसिद्धिपनिषद् में पूर्व की

“ योगी की कथाय है छिद पूर्व नाड़ी है वाह
का प्ररु करे और विधिपूर्वक कृष्ण करे हुए कडा नाड़ी है रेल करे । पूर्व की
के कथाय है बहुत है उदात्त रोग और कुमि रोग नष्ट करे है । ”

साङ्ख्यसिद्धिपनिषद् में पूर्व की

“ सुलाय है बैठकर दक्षिण नाड़ी है वाह
की वाक्यित करे हुए नलाय नाम ली: ली: ली: प्ररु करे । कृष्ण करे नाम
नाड़ी है रेल करे । कपास लीज है वात ली: नाड़ी का कथाय दोष नष्ट
की जाते हैं । साङ्ख्यसिद्धिपनिषद् में कथाय की प्रयोगी न करे “ कपास-
लीज ” कहा है ।

अद्वैत योग में पूर्व की

“ कपी कथाय वाचन है प्ररु बैठकर पूर्व
नाड़ी (वायु नली) है ली: ली: ली: करे हुए प्राण का प्ररु करे । (प्राण
वाह की कथाय, कृष्ण और उदात्त में भी प्रकार भरकर) कथायित कृष्ण करे -
कपी ऐसी कथाय लीज वाहिर कि किन्ता है करे वात-नलाय कथाय प्राण वाह

१- योगसिद्धिपनिषद् १।२४, २५

२- योगसिद्धिपनिषद् १।६९, ६९

३- साङ्ख्यसिद्धिपनिषद् १।१३।१

देव में नर गया है । अब कुछ ध्वराष्ट ही शीत होने लगे तब दाएं नासास्थि की चन्द्र नाड़ी (बायें नहुँ) से रुक करती हुई वेगपूर्वक रेंपन कर दें । उस प्राणायाम में पुनः पुनः सूर्य नाड़ी से प्ररु और चन्द्र नाड़ी से रेंपन किया जाता है । प्रत्येक दिन तीन प्राणायाम करें । फिर १-२ दिन के पश्चात् एक एक बढ़ाते चैं । और २९ वा ३९ तक बढ़ाया जा सकता है । ”

ह० ६० वं० में सूर्य मैद प्राणायाम

“ यह वज्रासन से सुतपस्क योगी बैठकर दक्षिण नाड़ी से वाह्य पान की लं: लं: प्ररु करे तथा शिखा से लेकर नखाग्र तक वायु परे तथा कुम्भक करे लं: लं: वाम नाड़ी से रेंपन करे । कपाल रुद्धि, वात दोष तथा कृमि रोग नष्ट करने के लिए सूर्य मैदो का जन्घास पुनः पुनः करे । ”

“ ह० १० में सूर्य मैदो का उत्तैर ह० ६० वं० के समान हो है । ”

ह० ७० में सूर्य मैदन

“ सुतासन पर बैठकर योगी की लं: लं: दाहिने नासास्थि से बाहर स्थित वायु की चन्द्र सीध कर शिखा से लेकर नख पर्यन्त शरीर में उसे जितने समय तक स्थिर कर लें, उतने समय तक (कुम्भक की विधि से) रोक कर लं: लं: बायें नासास्थि से बाहर निकाले ।

यह सूर्य मैदन बार बार करना चाहिए । इससे (मस्तिष्क) के विकार नष्ट होते हैं । वात दोष, उदरगत एवं कृमि नष्ट होते हैं । ”

१- बहिरंग योग पु० २७

२- ह० ६० वं० ५७ व

३- ह० १० स० १९, २२

४- ह० ७० स० ४८ से ५० तक

पै० सं० में कुम्भक के पञ्चाशत् सूर्य भेद का उत्पत्ति

“ पहले शासन्यार कन्ध करके दक्षिण नासिका से बाहु मरे, वति यत्न से कुम्भक करके उसे धारण करे। जब तक पैर से कुछ पर्यन्त फसिना न जा जावे तब तक कुम्भक द्वारा वायु को धारण करे। ”

(शरीर के अन्तर्गत) प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान से सभी सूर्य स्वर से जुड़े हैं (नामि केन्द्र सूर्य स्वर से सम्बद्ध हैं)। (सूर्य स्वर से शुरू करके) वायु को नामि केन्द्र में से बाय तथा यया-विधि कुम्भक करके बायें स्वर (चन्द्र स्वर) से लंः लंः सावधानी पूर्वक रोक करे। पुनः सूर्य स्वर से शुरू करके ययाविधि कुम्भक करके रोक करे। यह सूर्य भेद चार मृत्यु विनाशक है। इसके अन्वयात् है कुण्डलिनी कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा शरीर में अग्नि प्रदीप्त होती है। इसलिए है पण्ड। उत्तम सूर्य भेद का उत्पत्ति किया है।

ग्रन्थान्तरे सूर्य भेदी वर्णन

“ प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृक, वैवस्वत, अर्जुन ये सब प्राण हैं। कुदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान, समस्त शरीर में व्यान, ये पाँच प्राण प्रसिद्ध हैं। नागादि भी प्राण कहे गये हैं, उन्हें उपप्राण कहते हैं। उद्गार में नाग, उन्मोला में कूर्म, चूआ में कृक, जंघा में वैवस्वत, मरने पर भी जो शरीर त्याग नहीं करता उसे अर्जुन कहते हैं। नाग से पैलता, कूर्म से निमेषण, चूआ-चूआ कृक से वैवस्वत से जंघा, अर्जुन है। यदि प्राण भर भी न निकले तो उससे लब्ध होता है।

१- पै० सं० पृ ५८, ५९

२- .. पृ ६० से ६३ तक

३- .. पृ ५९ से ६४ तक- संयुक्त संस्थान बीली तथा पीताम्बर पीठ दत्तिया से प्रकाशित पै० सं० में अतिरिक्त श्लोक।

उज्जायी कुम्भक

योगसूत्रोपनिषद् में उज्जायी

“ सुल को बन्द कर दोनों (रुद्रो-फिंगर)
 से वायु को लैः लैः अन्दर की ओर आकर्षित कर पुरक करे जिससे वह कण्ठ
 से हृदय तक एक उड़क करती हुई भर जाय, (छात्र को) ध्रुव मैदी की तरह
 कुम्भक कर प्राण वायु को बायीं नाड़ी (रुद्रो) से बाहर निकाल देना चाहिए ।
 इस (के अन्वयात्) से मस्तिष्क की उज्जाता एवं कण्ठ में होने वाले कफ के दोष
 नष्ट हो जाते हैं, चठरान्त प्रतीप्त होती है। नाड़ियों में स्थित जल (विकार)
 पतौदर रोग तथा धातु सम्बन्धी रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इस उज्जायी कुम्भक
 का अन्वयात् चले फिरे स्थिर होते कहा करना चाहिए । ”

योगसूत्रोपनिषद् में उज्जायी

“ नासिका के दोनों रुद्रों से वायु को पुरक
 कर उपर में धारण कर (कुम्भक कर) चन्द्र स्वर से रोक द्वारा बाहर निकाले ।
 (इसके अन्वयात् से) कण्ठ के कफ दोष विनष्ट होकर शरीर में अग्नि वर्ध
 होती है। नाड़ियों में जल (विकार) नष्ट होकर समस्त धातुगत दोष सम
 होते हैं । इस उज्जायी का अन्वयात् चले फिरे स्थिर होते करना चाहिए । ”

शाण्डिल्योपनिषद् में उज्जायी का उत्प्रेत
 योगसूत्रोपनिषद् के तुल्य ही उक्तव्य होता है ।

बहिरंग योग में उज्जायी

“ अन्वस्त बाधन पर बैठ कर, दोनों नासारुद्रों

१- योगसूत्रोपनिषद् १।२६ से २६ तक

२- योगसूत्रोपनिषद् १।६२-६४

३- शाण्डिल्योपनिषद् १।१३।२

हे लीं: लीं: प्राणवायु का प्रारंभ करें , यह वायु केवल कण्ठ से हृदय तक ही न रहे । वायु में वाहनधर बन्ध लगाकर और व्यासस्थित कुम्भक करते वाम नसुने से रोक कर दें । कुम्भक में हृदय से नीचे प्राण नहीं जाना चाहिए, और क्रमशः हृदय से कण्ठ में, कण्ठ से मुँह में छोटे छूट ना छिका से धीरे धीरे प्रत्यास की वाहर निकालें । दैनिक तीन तीन प्राणायामों से प्रारम्भ करते सुविधा के अनुसार उनकी संख्या बढ़ा दें ।

ह० सं०^२ सं० सं०^३ ह० सं०^३ में उज्जायी कुम्भक की प्रक्रिया योगसिद्धीपनिषद् के तुल्य ही है ।

ह० प्र०^४ में उज्जायी का उत्तैत योगकुण्डल्युप-निषद् के तुल्य ही उपलब्ध है ।

ह० सं० में उज्जायी का वर्णन

“ वायु वायु की दोनों नासागुहों से लीज कर, अन्तस्थ वायु की हृदय, कण्ठ से लीकर , कुम्भक द्वारा अन्दर धारण करे । फिर मुँह का प्रत्यास कर वाहनधर बन्ध लगाकर निर्दिष्ट रीति से शक्ति के अनुसार वायु की धारण करे । यह उज्जायी कुम्भक कहलाता है। इसके सभी कार्य सिद्ध होते हैं । स्तेज्य रोग, दुष्टवायु, कर्षीर्ण, कामवास, पाय कास, ज्वर , प्लीहा ये सब रोग दूर होते हैं। बुद्धावस्था और मृत्यु की पराजित करने के लिए उज्जायी कुम्भक का अभ्यास अवश्य करना चाहिए । ”

१- बहिरंग योग ह० २५, २५

२- ह० सं० सं० ५७ स , ४५, ४६

३- ह० सं० सं० ११४ से १६ तक

४- ह० प्र० सं० ५२ से ५३ तक

५- ह० सं० सं० ६४ से ६७ तक

हीनही कृष्ण प्राणायाम

योगसुष्ठुपनिषद् में हीनही

“ विष्वा हारा - विष्वा की बागे निकाल कर वायु का प्रसक्त करे तथा कृष्ण करे वायिका पुटी से ली: ली: रोक करे । हृत्, शीता, ज्ञाय, पित्त, ज्वर तथा रुजा वादि को दूर करता है, विषाई को दूर करने वाला है । विष्वा ही हीनही कृष्ण करती है । ”

योगसिद्धीपनिषद् में हीनही

“ सुत है हारा वायु की प्रसक्त- प्रसक्त कर प्राण के मार्ग से रोक करे । पित्त दोष, रुजा एवं रुजा की रने वाला वह हीनही है । ”

१
हाण्डित्योपनिषद् में भी हीनही प्रक्रिया योग-

सिद्धीपनिषद् के मुख्य ही है ।

बहिरंग योग में हीनही

“ सुवासन पर बैठकर नेत्र की वायुति की काक (कीर) की बीच के समान बनाकर सुत से बाहर निकालें (जब बीच की बीच के समान बनाया जाता है तब नेत्र के किनारों की पीढ़ कर गीत करती है पीछी नस की से नस जाता है) । जब इस दिन से प्राण वायु की ली: ली: प्रसक्त करे, उदर की पूर्ण रूप से भर कर, कर्मावित कृष्ण करें । प्यराष्ट हीने पर बीनी वाताहृटी से रोक करें । ली प्रकार पुनः पुनः प्रसक्त कर्मावित करें । हीनही प्राणायाम ली की लु में किया जाता है, कर्मा प्रकृति वादि ही न करें ।

१- योगसुष्ठुपनिषद् १।३०,३१

२- योगसिद्धीपनिषद् १।६५

३- हाण्डित्योपनिषद् १।१३।४

शीतली क्रीर्ण, कफ, पित्त नाशक है, तथा प्राण को शान्त करता, प्यास को दृढ़ताता, पित्त विकार से उत्पन्न रोगों को दूर करता है। शरीर में शान्ति शान्ति, उत्पादक तथा 'रक्त वायु' (रक्त क्लृप्त प्रसार) का शान्तक है।

ह० सं० च० में शीतली

“ कौर की बाँव के समान पुच्छ (जिह्वा) की वाहृति काकर वायु पुरक करे तथा जिह्वा को उलट कर लगाकर बहुत पान करे। नासिका छुट्टी से रोक करे। जुधा, रुखा, निद्रा तथा वातल्य के समस्त उपद्रवों को दमन करने वाला यह शीतली है। ”

ह० १० में शीतली प्रश्रिया

“ छड़ी (वाम नासा रन्ध्र) से वायु पुरक करके श्रवण कुम्भक करे परमात्मा ज्ञेः ज्ञेः वस्ती संख्या गिने तक रोक करे। शुष्म चम्बन्धी समस्त रोग, स्तीषा, ज्वर, पित्त, रुखा, जुधा तथा समस्त प्रकार के विषाणों को नष्ट करने वाला यह शीतली है। ”

ह० प्र० में शीतली

“ जिह्वा से वायु तीव्र कर उपर्युक्त विधि से कुम्भक का अभ्यास कर ज्ञेः ज्ञेः नासा रन्ध्रों से बाँगी को रोक करना चाहिए। यह शीतली कुम्भक शुष्म, स्तीषा, ज्वर, पित्त के विकार, जुधा रुखा तथा समस्त प्रकार के विषाण विकारों को नष्ट कर देता है। ”

१- बहिरंग योग पृ० २२, २३

२- ह० सं० च० पृ० ६, १२, १४

३- ह० १० सं० २०, २१

४- ह० प्र० सं० १७, १८

पै० सं० में सीतली

“ निश्वा द्वारा वायु को वादृष्ट कर पै
को वायु से पूर्ण कर दे, फिर कुछ साँस तक रुम्भक से वायु को धारण कर
वीनों नासा पुटों से निकाल दें, इसे सीतली कहते हैं । ”

साधक को रुका बन्धास करना चाहिए । इसके
बन्धास से कबीर्ण कफ और पित्त से उत्पन्न हुए समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

मस्त्रिका (मस्त्रा) शुम्भक प्राणायाम

योगसुष्ठुत्पनिषद् में मस्त्रिका

“ मन्वास्त्र लगाकर ग्रीवा और शरीर को
सीधा रखे हुए, मुँह को बन्द करके वायु को नासिका द्वारा सावधानीपूर्वक
रैक करके, वायु को वेग पूर्वक रुक करते हुए उस प्रकार सीपि कि कण्ठ , वायु ,
कपात और हृदय को उसका स्पर्श अनुभव हों । फिर वायु का रैक करके पुनः
प्ररक करे । इस प्रकार वायु को पुनः पुनः वेग पूर्वक इस प्रकार सीपि कर मरे,
जिस प्रकार लीलाकार की धौकनी चलती है, इस प्रकार शरीर में मरी हुई वायु
को क्वाविसि चलावे और जब जब का अनुभव हो तब सूर्य नाड़ी (दक्षिण
नासिका रन्ध्र) से प्ररक करे और उसी से अतिरिक्त अन्य चारों वायुतियों से
नासिका को मध्य से द्रुतेता पूर्वक फाड़ कर शुम्भक करे और फिर वाम नासिका
रन्ध्र से रैक करे । ”

इस बन्धास से कण्ठ- प्र्नास नष्ट होता है
तथा शरीरस्य अग्नि प्रबुध होती है। शुष्ठुलिङ्ग का जागरण करने वाला यह

१- पै० सं० पा० ६६

२- योगसुष्ठुत्पनिषद् १।३२ से ३६ तक

कम्पात हुए और हस्त का पैर बाधा है । प्रथम बाही (हस्त) के हस्त पर स्थित कम्पात की नष्ट करता है । यह कम्पातदि तीनों गुणों से उत्पन्न तीनों प्रक्रियाओं की पैर बाधा है । कम्पात वह पत्रिका नामक प्राणायाम का कम्पात विशेष रूप से करता चाहिए । ”

योगसिद्धिपत्रिका में पत्रिका की प्रक्रिया
योगसिद्धिपत्रिका के द्वारा है ।

बाह्य योग में पत्रिका

“ कम्पात बाह्य में बैठकर दक्षिण हाथ की कम्पात और बाह्य कम्पातों की पीछे बाधा रखें, पैरों की पीछे हैं । इन कम्पातों से बाह्य नष्ट की नष्ट कर हैं और कम्पातों की पीछे कर कम्पात के समान ऊंचा उठाएँ, बाह्य हस्त की बाह्य हस्त पर रखें । बाह्य कम्पात कि बाह्य नष्ट से कम्पात उत्पन्न करी हस्त कम्पात रोक और हस्त की बाह्य हस्त कम्पात कम्पात स्वाध- प्रसाध द्वारा करें । स्वाध- प्रसाध की टकर कम्पातों पर और से कम्पात से । यह प्रकार मूल से मूल बाध द्य (७-१०) बार हस्त रोक करें । कम्पात कम्पात हस्त करी कम्पात- कम्पात करें, कम्पात कम्पात के परसाध बाह्य बाधा-रुद्ध से रोक करें । रोक करी कम्पात कम्पात से दार नष्ट की दार हैं । कम्पात प्रकार हस्त दक्षिण नष्ट की नष्ट करी हस्त और से करें । तीनों और से तीनों- तीनों प्राणायाम करी मित्य प्रति कम्पात: कम्पात बाध । कम्पात बाध की यह प्राणायाम बाध कम्पात और पैर नष्ट नहीं करता चाहिए । नष्ट की धि में कम्पात बाध का मय रहता है । कम्पात कम्पात बाध का मय है कि कम्पात के कम्पात बाध कम्पात कम्पात कम्पात चाहिए । यह प्राणायाम के कम्पातों की बाध कम्पात बाध कम्पात हस्त का पैर कम्पात करता चाहिए । ”

१- योगसिद्धिपत्रिका १।६६ से १०० तक

२- बाह्य योग ५० २१-२२

४० सं० १० में मस्त्रिका प्राणायाम का उचित
योगकुण्डलपुनर्निर्माण के तुल्य है ।

४० १० में मस्त्रिका

“ देवक , प्रत्येक तथा कुम्भक प्राण ध्यान के
द्वारा है, अथवा स्वास- प्रत्यास तथा कुम्भक के द्वारा समान विधि मस्त्रिका है ।
४० १० में देवक प्रक्रिया योगकुण्डलपुनर्निर्माण के तुल्य है । ”

४० ३० में प्रत्येक मस्त्रिका प्रक्रिया योगकुण्डल-
पुनर्निर्माण के समान ही उपलब्ध है ।

४० सं० में मस्त्रिका

“ बीजकार धीमे की द्वारा वायु भरता है, उन्ही
प्रकार नासिका द्वारा वायु की घट में भर, धीरे धीरे घट में बाधित करे । एक
प्रकार बीच बार करी कुम्भक कर, वायु की धारण करे । पुनः बीजकार की
धीमे की वायु निश्चयी है, वही ही नासिका से वायु की निकाले वही ही मस्त्रिका
कुम्भक करती है । वही प्रकार क्वाविधि तीन बार करे, इसके अन्त्यार्थ है किसी
प्रकार की व्याधि नहीं होती । बारीक्या दिन पर दिन बढ़ती है । ”

ग्रामरी कुम्भक प्राणायाम

वर्तमान योग में ग्रामरी कुम्भक

“ बीरासन में क्वाविधि बैठकर दाएं हाथ के

१- ४० सं० १० से ४२ से ४५ तक

२- ४० १० से २२-२५ तक

३- ४० ३० से ४५ से ५० तक

४- ४० सं० ४० से ४२ तक

जंघुटे से दाढ़ नहूँ को दबाकर धरक करे । जब मुलाधार तक प्राण वायु मटे प्रकार
 नर बाय सब कुछ पैर धूमक करके, कण्ठ से भ्रमर (मीरे) जैसी मधुर सुरीली
 गुंवार उत्पन्न करके दक्षिण नासा छिद्र से धीरे धीरे रैक करते रहें, यथाशक्ति,
 रैक की सम्भा करते हुए इस गुंवार में मन बुद्धि को निमग्न कर दें । अभ्यास करते
 करते इस गुंभ में अन्य कई प्रकार के उन्नत प्रकट होने लगते हैं। इसे यथाशक्ति अधि-
 काधिक बढ़ा दें । विज्ञोष तथा अपस्तता के कारण जिनका ध्यान स्थाय्य न होता
 हो, जप में बुद्धि न प्रवृत्त होती हो, जो इसके अभ्यास से दोनों ही विघ्न दूर
 होकर स्थाय्यता तथा शक्ति की प्राप्ति होने लगती है । ”

ह० सं० २, ह० १० एवं ह० ४ में भ्रमरी की प्रक्रिया का उत्प्रेत

(भ्रमरी धूमक के अभ्यास में पहले) वेग से
 मीरे के समान उन्नत करते हुए बाहर से वायु अन्दर खींच कर धरक करते हुए मृगी
 (भ्रमरी) के नाद के समान मन्द मन्द बाबाब करते हुए रैक की विधि से वायु
 की बाहर निकाली है योगियों के चित्त में इस योगाभ्यास से आनन्द की अमि-
 व्यक्षित होती है । ”

ह० सं० में भ्रमरी

“ कभी रात्रि होने पर जब किसी जगह का उन्नत
 सुनाई न दे तब ऐसे स्थान में जाकर योगी अपने हाथों से कानों को बन्द करके
 धरक- धूमक का अनुष्ठान करे । ऐसा करने पर तत्काल को दाहिने कान में गाना

१- बहिरंग योग पृ० २७६

२- ह० सं० २० पृ० ३३

३- ह० १० सं २७

४- ह० २० सं ६

प्रकार के शब्द सुनायी देते हैं। पहले कर्कश का शब्द इसके बाद वशीनाद फिर मैथ, फिर कर्कर बायें की ध्वनि, फिर प्रसर की ध्वनि फिर घण्टा, फिर कठि के पाव, सुरही, मेरी, मुदंग और नगाड़ा का शब्द सुनायी देता है। इस प्रकार नित्य कन्यास के निम्न २ प्रकार के नादों की ध्वनि क्लृप्त होती है। हृदय (काष्ठ) में दादल दल कमल की प्रतिध्वनि सुनायी देती है। तथा प्रतिध्वनि के मध्य ज्योति का निरीक्षण करता है। यह ज्योति ही ब्रह्म है। इसमें योगी का मन लग होकर उसे विष्णु का परमफ प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्रामरी मुद्रा सिद्ध होती है। इसके सिद्ध होने पर समाधि सिद्ध होती है।^१”

बुद्धों के श्मशान

बहिर्ग योग में बुद्धों

“समाधान में बैठकर दाएं हाथ के कंगूठे से दाएं नखुने की दबाकर बायें नखुने से स्वास भरकर श्मशान कर दें। जातन्धर बन्ध लगाकर, मानसिक व्यापारों का जाग करी हुए, मुर्च्छित या होने का प्रयत्न करें। दृष्टि को भूमध्य में रहें। व्यासक्ति श्मशान रखकर दोनों नासाग्राओं से जलें: जलें: प्राण का रेख कर दें। श्मशान के समय मन को चिंतन या करने का प्रयत्न करें, जिससे मन शान्त होकर मुर्च्छित या हो जाय। फिर इसी प्रकार दक्षिण नखुने से भी करें। कन्यास की क्लृप्ति करें।^२”

ह० सं० १०, ह० सं० १० एवं ह० सं० १० में बुद्धों

१- ह० सं० ११ ७१-७७ तक

२- बहिर्ग योग पृ० २०

३- ह० सं० १० ५८ त ७३

४- ह० सं० १० त २०

५- ह० सं० १० त ६६

प्रक्रिया - " प्रत्येक प्राणायाम के समय में नासिकाएँ बन्द कर ली जायेंगी और दोनों नासिकाओं से प्रवाहित होने वाले वायु को एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया जायेगा । "

पंचमः पदः पञ्चमः प्रक्रिया

" सर्वप्रथम मुँह से वायु निकाल कर नासिकाओं से वायु को अन्दर लेना होगा और दोनों नासिकाओं से प्रवाहित होने वाले वायु को एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया जायेगा । "

केवली कुम्भक प्राणायाम

बाह्ययोग में केवली कुम्भक

" अत्यन्त लम्बा केवली कुम्भक (एक-प्रकार के प्रवाह) प्राण को अन्दर लेना और वायु को एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया जायेगा । केवली कुम्भक प्राणायाम होता है । "

पंचमः पदः केवली कुम्भक

" एक प्रकार के प्रवाह प्राणायाम को केवली कुम्भक प्राणायाम कहते हैं । एक-प्रकार के प्रवाह करने के केवली कुम्भक के अर्थ में कहा जायेगा । (केवली कुम्भक) के अर्थ में (योगी) को अर्थ में कहा जायेगा । अर्थात् वायु धारण करने के केवली कुम्भक करने में लगे रहें, वह अर्थ में है, अर्थात् अर्थ में कहा जायेगा । "

१- पंचमः पदः

२- बाह्ययोग पदः २०

३- पंचमः पदः २० से ३१ तक

६० प्र० में केवली कुम्भक का उल्लेख

“ प्राणायाम के तीन भेद हैं- रेक, प्रक और कुम्भक । कुम्भक प्राणायाम के दो भेद हैं- चक्षित और केवल । जब तक केवल कुम्भक की विधि हो तब तक चक्षित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए । रेक और प्रक को छोड़ कर सुतपस्क वायु-धारण (का अर्थ है अभ्यास) केवल कुम्भक कहा जाता है।

इस तरह कहे गये केवल कुम्भक के सिद्ध होने पर रेक और प्रक हट जाते हैं- इन दोनों का अभ्यास नहीं करना पड़ता है । योगी के लिए तीनों लोकों में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो उसे प्राप्त न हो । केवल कुम्भक से ही वायु धारण करने में समर्थ है और राज योगी की पत्नी प्राप्त करता है। ”

६० प्र० में केवली उल्लेख

“ केवली कुम्भक की विधि है कुण्डलिनी जाग्रत होती है और कुण्डलिनी के जाग्रत होने से पुष्पना नाड़ी कफ वादि दोषों के वन्धन से मुक्त हो जाती है। हठयोग की विधि होती है। हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग सिद्ध नहीं होता, इसलिए दोनों की ही विधि का अभ्यास करना चाहिए । कुम्भक के अभ्यास से प्राण निरोध कर चित्त को वाक्य रहित- ब्रह्माकारूप परम वैराग्य की वृत्ति में विचलित करना चाहिए । इस प्रकार के अभ्यास से राजयोगफल की प्राप्ति होती है। ”

शरीर की कृच्छा- कान्ति (चट् कर्म वादि के अभ्यास से शरीर की कृच्छा के परिणामस्वरूप) स्फूर्ति, सुख पर वैजीमयी दीप्ति - प्रकम्पता, नास का प्राकट्य (नास नमण) निर्मलता, धीर्य पुष्टि ,

जठराग्नि का प्रतीक, नाड़ी बुद्धि- नाड़ियों का मत रहित हो जाना - ये ही ठठ (योगान्यास) की विधि के लक्षण हैं ।^१

धै० सं० में केवली कुम्भक

“ स्वास के निकलने पर ‘ ह ’ और प्रोक्त होने पर सकार का व्यकीष्ट स्वार उः राँ (२१६००) की संख्या में गण होता है । यह दिन रात्रि की संख्या है। इसी संस या राँऽह की कृपा नाम गायत्री कहते हैं , प्राणी इसे सदा गणना करता है। मूलाधार, हृदय कर्मा और नासा छुट उन तीनों स्थानों में वायु का आवागमन होता है । ”

“ स्मृत शरीर का परिमाण (६६) क्रियान्वित कुंठ है और स्वाभाविक बहिर्गत वायु की गति बाधत कुंठ होती है। यही गति बाधत कुंठ होती है । यही गति गायन में होतक कुंठ, मोक्षण में बीस कुंठ , मार्ग चलने में बीबीस कुंठ , निद्रा में बीस कुंठ, नेत्रों में इत्तीस कुंठ और व्यायाम में और भी अधिक होती है। स्वाभाविक प्राण की गति बारह कुंठ है । यदि इससे न्यून गति हो जाय तो वायु वृद्धि होती है। बारह कुंठ से अधिक होने पर वायु का जाय होता है। शरीर में जब तक प्राण वायु की स्थिति रहती है, तब तक मृत्यु नहीं होती, कुम्भक के अन्यास से प्राण वायु की मुख्य कर्मि । जब तक शरीर स्थित रहे तब तक केवली कुम्भक करता हुआ कृपा मंत्र को गणना रहे । केवली के अन्यास से (२१६००) पर गति की संख्या छट जाती है और वायु में वृद्धि हो जाती है। अतः इसे काय्य करना चाहिए । कृपा की संख्या दुगुनी करे तो चित्त में बहुत आनन्द होता है।

नासाधृष्टों से वायु को रोककर केवल कुम्भक का अनुष्ठान करे । पहले दिन इस कुम्भक का आधन करने पर बीसठ बार तक, स्वास-

१- धै० सं० ५५७६ से ८० तक

२- , , ५५८१ से ६१ तक

प्रत्याव वायु को धारण करे। यह कुम्भक को बाठ प्रहर में रोज बाठ बार व्यास करे- प्रातः, मध्याह्न, शाम और रात्रि के रोज भाग में इसका साधन करे। कम प्रातः, मध्याह्न, शाम इन तीनों कालों में समान संख्या में व्यास करे। जब तक यह कुम्भक छिद न हो जाय तब तक कपडा के साथ, परिमाण है पांच बार के क्रम से बढ़ाता जाय।

शीतकारी कुम्भक प्राणायाम

बहिर्ग योग में शीतकारी कुम्भक

“ शिवासन पर बैठकर ‘शीतली’ के समान प्राणवायु को नाभ के समान नीचे नीम की मुठ से बाहर निकाल कर शीतकार या श्वेत करते हुए प्ररु करके, कुम्भक किये बिना, तत्काल दोनों नासा छुटों से रोग पूर्वक रोक कर दें। इसी प्रकार पुनः पुनः नीम के द्वारा प्ररु और नासिका द्वारा रोक किया करें। ”

योग प्रतीप में शीतकारी

“ श्वा को श्वाओं से बाहर निकाल कर और उसका बिल्कुल समान भाग दोनों नासों की पंक्ति एवं श्वाओं से साधारण इसका बचाकर श्वाओं से वायु को शीतकार पूर्वक कर्त्तु शीतकार की वायाव उत्पन्न करते हुए प्ररु करें, अन्य सब विधि शीतली के समान। ”

ह० सं० १० में शीतकारी कुम्भक

“ नीम को बाहर निकाल कर ‘शीतकार’ ”

१- बहिर्ग योग पृ० २२१, २२४

२- योगप्रतीप पृ० ४५६ नासिका की योगानन्द तीर्थ

करते हुए हवा वायु की प्रवाह करे, तथा हृत्पंक करते नाभिका पुटों से रोका करे।"

ह० १० में शीत्कारो हृत्पंक

"सुत है वायु प्रवाह करते हुए 'शीत' हृत्पंक हृत्पंकित करे तथा नाभिका द्वारा रोका करे। इस प्रकार के हृत्पंक है शिथिल 'कामदीय' के उत्पन्न होता है। इसी हृत्पंक से शूल, श्याम, निद्रा एवं वातस्य उत्पन्न नहीं होता। शरीर कमल हृत्पंकों से रहित होकर स्वस्थ हो जाता है और (योगी) शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लेता है।"

ह० २० में शीत्कारो हृत्पंक

"सुत है 'शीत्कार' (शी-तो की वायाप) करते हुए (सुत है ही योगी की योगी शीतों के बाहर स्थित कर) वायु की हृत्पंक शीत्कार (हृत्पंक की विधि से) स्थिर करना बाहिर और नाभिकापुटों से बाहर निकालना बाहिर। इस हृत्पंक है शीत कामदीय के शान (स्य, शान्त्य हृत्पंक) ही जाता है। योगियों के शूल द्वारा शिथिल (हृत्पंकित) होता है। यह शूल शिथिल करने में कार्य होता है। शूल, श्याम, निद्रा और वातस्य से अधिक नहीं होता। शरीर उच्च शान्त होकर स्वस्थ हुआ वह जाता है। निरमल हो इस शूलशूल में वह इसी हृत्पंक से योगियों में शीत ही जाता है।"

परन्तु शिथिल में शीत्कारो हृत्पंक का उत्तम उपक्रम नहीं है।

श्यामिनी हृत्पंक प्राणायाम

बाहिर योग में श्यामिनी हृत्पंक

"स्थिरासन है बैठकर योगी नाभिका पुटों से

१- ह० १० व० १५ क- ४६

२- ह० १० स० १० से १६ तक

३- ह० २० स० १५ से २६ तक

पूरक करके ज्ञाना वायु पेट में भर दें जिससे कि उदर 'मल्ल' के समान फूल
 बाय- खंथा उन बाय, मानो समस्त शरीर का वायु उदर में ही बाकर भर
 गया है। यथाशक्ति हुम्क करके, परमात् दोनों नासा छुटों से ज्ञैः ज्ञैः रोक
 करें। इसी क्रम की श्रद्धापूर्वक दोहराते रहें। "

योग प्रतीप में स्वाविनी हुम्क

" स्वाविधि वासन से बैठकर दोनों नासिका
 छुट से पूरक करें। नासि पर मन को एकाग्र कर सब शरीर भाव की वायु को
 उदर में भरकर पेट की चारों ओर से मल्ल या रक्छ के गोले लुप्त पुष्टाकर ऐसी
 भावना करें कि धारे शरीर का वायु पेट में एकत्र हो गया है और शरीर के किसी
 जग- प्रत्यंग में वायु नहीं रहा है। यथाशक्ति उस स्थिति में हुम्क करके दोनों
 नासिका से ज्ञैः ज्ञैः रोक कर दें। "

फल- प्राणवायु पर पुणर्विधा अधिकार, पेट
 के सब प्रकार के रोग कौशलकता वादि का नाश, अपानवायु की शुद्धि, बडरा-
 नि की शुद्धि, पीय तथा रक्त की शुद्धि, यस में सुख प्राप्त होता है² । "

ह० सं० च० में स्वाविनी

" शरीर के अन्दर अवस्थित वायु को पूरक की
 विधि से अच्छी तरह उदर में भर कर बाधक जगध यस में भी कमल पत्र के समान
 सुख प्राप्त होता रहता है । "

ह० प्र० में स्वाविनी की प्रक्रिया ह० सं० च०

१- बहिरंग योग पृ० २५४

२- योग प्रतीप पृ० ४१ भाष्यकार की जीवमानन्द तीर्थ

३- ह० सं० च० १६ स ७४

४- ह० प्र० २१७०

के तुल्य ही है ।

“ सावित्री कुम्भक के व्यास है योगी ज्ञाथ
 यज्ञात्म्य में तेरता है तथा उस पार है उस पार उन जाता है। यथाविधि वासन
 है बैठकर साधक को दोनों नासा छुटों है बाहु को भीतर सीमा बाहिर । नाभि-
 स्थान पर मन को स्थाप्य कर धारे शरीर की बाहु को फट में भरना बाहिर । ऐसी
 भावना करनी बाहिर कि कौ प्रयोग में बाहु नहीं है, सब बाहु उदर में ही है ।
 यथाविधि बाहु को कुम्भक विधि है इस तरह रोक कर दोनों नासा छुटों है उसे
 रोक की विधि है बाहर निकाल देना बाहिर । इसके साधक का प्राण बाहु पर
 अधिकार ही जाता है, कण्ठ का नास होता है, वीर्य पुष्ट होता है और रक्त
 शुद्ध होता है । ”

“ प्राणायाम विधान ” का उत्तर ६० प्र० के
 द्वितीय उपसर्ग के अन्तर्गत ही षट् कर्म विवेचन के पश्चात् किया गया है किन्तु
 नाडी शोधन की मर्यादा- “ महाहृत्तापु नाडीषु माहृतौ नैव मन्थनः ” जब
 तक नाड़ियाँ मल से मरी हैं तब तक बाहु मन्थनामी (सुष्टुम्भा में प्रवेश) नहीं
 होती । कनिष्ठ मन्थन तथा उत्तम प्राणायामों के परिणाम तथा सुक्तासुक्ता
 प्राणायाम का उत्तर भी षट् कर्म क्रमण से पूर्ण किया है । षट् कुम्भकों की
 प्रक्रिया तथा उनके होने वाले शारीरिक, मानसिक लाभों का वर्णन षट्कर्मों के
 पश्चात् किया है। यह प्रक्रिया ६० प्र० में क्रमबद्ध न ही कर प्राणायाम के प्रारंभ
 की कला बतलाने के लिए ६० प्र० में प्राणायाम का वर्णन क्रमबद्ध रूप से क्रमोप-
 देश में किया है। सर्वप्रथम नाडी शोधन विधान में समु- निर्मल प्रक्रिया एवं षट्
 कुम्भकों के अन्तर्गत “ शक्ति ” प्राणायाम में सम- निर्मल विधान का सम्पूर्ण
 रूप से विवेचन किया गया है ।

१- योगशास्त्री- हठयोग विवेचन- जनवरी, १९८१ पृ० ६६

२- ६० प्र० २४

३- ६० प्र० २१२

४- ६० प्र० २३६

५- ... २४४७

संज्ञा-सूची एवं परिष्कृत संज्ञा के बाठ कुम्भक

ह० प्र० एवं परिष्कृत संज्ञा दोनों ही ग्रन्थों में बाठ बाठ कुम्भक की प्रक्रिया एवं परिणामों का विवेक किया गया है। दोनों ग्रन्थों के कुम्भक में न्यूनाधिक अन्तर भी उपलब्ध होता है।

ह० प्र० के बाठ कुम्भक

“ धूम्रपदी, उज्ज्वायी, चोत्कारी, शीतली, मल्लिका, प्रामरी, मूर्च्छा तथा स्वादिनी कुम्भक हैं। ”

पे० सं० के बाठ कुम्भक

“ शक्ति, धूम्रपदी उज्ज्वायी, शीतली, मल्लिका, प्रामरी, मूर्च्छा एवं केवली कुम्भक हैं। ”

ह० प्र० एवं परिष्कृत संज्ञा के कुम्भकों में भिन्नता के साथ साथ समता भी उपलब्ध होती है। दोनों ग्रन्थों में धूम्रपदी, उज्ज्वायी, शीतली, मल्लिका, प्रामरी एवं मूर्च्छा इः कुम्भक समान हैं तथा ह० प्र० में चोत्कारी व स्वादिनी तथा पे० सं० में शक्ति कुम्भक व केवली कुम्भक का उल्लेख अवमान रूप से उपलब्ध होता है।

ह० प्र० एवं पे० सं० का नाड़ी शोधन विधान

ह० प्र० में नाड़ी शोधन सात्त्विक बुद्धि, नियमित तथा बद्ध फलप्राप्त के लिए, प्रारंभ व कुम्भक यथावत् धारण करने के लिए

१- ह० प्र० ३४४

२- पे० सं० ५४६

वस्तुति की है। "तुदा वाहिगण भवन्ति यस्मिन् पाण्ड्याह-वैतः" (देख, प्रत्येक दृष्टक का नियमित व्यवहार करने से) तीन पाद में नाड़ी सीध में जाता है। किन्तु कैवल्यधाम तीनपादा प्रता (महाराष्ट्र) से प्रकाशित योग पीमाणा (६० प्र०) में तीन पाद समान तीन पाद है अधिक समय नाड़ी सीध में लगता है। नाड़ी वृद्धि के लक्षणों में स्वात्माराधन ने उल्लेख किया है- "कायस्य कृष्णान्तात्तस्मात्तथापि निरिक्तान्- वैकुण्ठ कृत शरीर की प्राप्ति निरिक्त है तथा वायु धारण की शक्ति (दृष्टक प्राणायाम) एवं महाराष्ट्रि चक्र शरीर बाह्यस्थ होती है और नाद की अविव्यक्ति होती है। दृष्टक प्राणायाम के व्यवहार से समस्त रोग नष्ट होती है तथा बहुत से सभी प्रकार के रोग दिकी बना, काय तथा हिर, कर्ण वेना उत्पन्न होती है किन्तु लक्षित किया है। ६० प्र० में नाड़ी सीध की प्रक्रिया एवं उनके होने वाले साथ तथा वातियों की दृष्टकार ने स्पष्ट रूप से उल्लेखित वाक्य की बहुत प्राणायाम से लक्षित रूढ़ि के हिर नि- र्दिष्ट कर दिया है।

वि० ६० में समस्त और निम्न की प्रकार से नाड़ी सीध विधान का उल्लेख उपलब्ध होता है। समु- बीच नम उचित, निम्न विना बीच नम के। समु प्रक्रिया में 'य', 'ह', 'र', 'व', 'ह' बीच नमों के साथ नाड़ी सीध का निर्दिष्ट है। परन्तु उचित के सभी प्रकार में प्रत्येक में उचित माना दृष्टक में उचित तथा देख में कर्णीय मानाओं के विधान का उल्लेख है।

१- ६० प्र० अ ६

२- ६० प्र० अ ७

३- योग पीमाणा जगदी, मार्च, १९६० ५० ४०

४- ६० प्र० अ २०, २१

५- वि० ६० अ २६

६- .. अ २६-४०

घोरुण्ड संस्थिता में जगि बीज मंत्रों के साथ नाड़ी शोधन की प्रक्रिया - नाडिका के ऊपर बैठ में ' हं ' बीज का ध्यान सीधे मात्रा एक तथा नाम स्वर है ' वं ' बाहु बीज का समय करते हुए घुम्क, ' वं ' बीज है बसिष्ठ स्वर यक्षी हुए धृष्ट्या में घुम्क तथा दक्षिण स्वर है कर्त्तवीय स्वर ' हं ' बीज मंत्र की यक्षी हुए रीक करे तथा नाडिकाग्र है कुरु टक रका है और शरीर की सभी नाडियाँ धुल रही हैं, इस प्रकार मन में धारणा करने नाडि, का उत्तेज किया है ।

सं० प्र० में नाड़ी शोधन की महत्ता, प्राणायाम है जगि बाते परिणाम एवं सुखादुःख प्राणायामों का उत्तेज अनुभूति रूप है किया है किन्तु नाड़ी शोधन का व्यापक प्रारम्भिक व्यवस्था में कितनी संख्या में करे, इसका कोई उत्तेज नहीं बाया है। घोरुण्ड संस्थिता में नाड़ी शोधन की वैज्ञानिक प्रक्रिया १:४:२ (घुम्क : धुम्क : रीक) को शरीर की नियमित रूप है मह विमुक्त करती है का उत्तेज निधिपूर्ण किया है, जिससे बाधक सीधे साथ उठा करती है। इसमें १६:६४:३२ मात्राओं का व्यापक विधान सुस्त है ।

दुर्ग मंत्रो धुम्क

दुर्ग मंत्रो के व्यापक के लिए सं० प्र० में सुस्त बाधन का उत्तेज किया है। घोरुण्ड संस्थिता में बाधन के विधाय में कोई टिप्पणी नहीं की है जबकि प्राणायाम के लिए बाधन प्राथमिक प्रक्रिया है ।

सं० सं० में दुर्गमंत्रो के व्यापक में घुम्क धुम्क तथा रीक में जादुमंत्र बन्ध लगाने की संस्तुति की है । सं० प्र० में इसी व्यापक

१- सं० सं० ५४३-४४

२- सं० सं० ५४३-४४ सं० प्र० २४५

३- सं० सं० ५४४

४- सं० प्र० २४५

में दूसरे के अन्त में वास्तव्य कथ्य तथा रोक के प्रारम्भ में उत्प्रेषण कथ्य लगाने के विर निर्वह किया है ।

६० प्र० में पूर्व पैरी के अन्त्यार से अन्त्यार सीमा, वास्तव्य कथ्य कृति रीति नष्ट होना बताया है। ६० ६० में- बरा भूतल नष्ट करने वाला, कुम्हलिनो पात्रल तथा वैहल्य बलि कथाने वाला उत्पन्न कुम्हल कथा है ।

नीचीं प्रणवीं में कुम्हली के गुणों का उल्लेख किया है जो उपलब्ध बान पड़ी है, किन्तु उसका अन्त्यार कथ्य, वास्तव्य कथ्य (वास्तव्य, कथ्य, कथ्य) एवं उसके अन्त्यार के विषय में कोई निर्दिष्ट नहीं किया है । वस्तुतः पूर्व पैरी का अन्त्यार प्रत्येक वास्तव्य के अन्त्यार नहीं कथाने बर विविध कथ्य है किन्तु प्रकृति के वास्तव्य को जो उचित कथ्य हो लिख होगा । प्रीति कथ्य में पूर्व पैरी का अन्त्यार कथ्य को भी अनुमत्त नहीं है ।

उज्ज्यायी भुम्भ

६० प्र० में उज्ज्यायी की प्रकृति में कथ्य कथ्य के लगाने का निर्दिष्ट नहीं है तथा कथ्य अन्त्यार से कथ्य के बोन, कथ्यपर बर भानु अन्त्यार अन्त्यार विचार नष्ट होती है । उसका अन्त्यार कथ्य किन्तु किया जा सकता है ।

६० ६० में उज्ज्यायी के अन्त्यार में वास्तव्य कथ्य लगाने का निर्दिष्ट किया है। कथ्य कथी कार्य लिख होती है । कथ्य रीति नष्ट वास्तव्य कथ्य, वास्तव्य, वास्तव्य, वास्तव्य, वास्तव्य कथ्य से कथ्य नष्ट होती है ।

१- ६० प्र० स ५०

२- ६० ६० स ६२, ६३

३- ६० प्र० स ५२, ५३

४- ६० ६० स ६४ से ६० तक

दीनों ग्रन्थों में इसका अभ्यास दिन रात में कितने बार किया जाय इसका कोई उल्लेख नहीं है। साधक की वातु एवं पैर काट की देखकर ही उष्वायी का अभ्यास करना उचित होगा। और दिन रात में ८-१० बार है इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

तीसरी कुम्भक

तीसरी प्राणायाम की प्रक्रिया एवं उसके अभ्यास के परिणाम दीनों ग्रन्थों में समान हैं। इसका अभ्यास तीस- जू में अपेक्षित नहीं है।

चत्विथी कुम्भक

४० प्र० में चत्विथी कुम्भक फुमास लगाकर शरीर (शीर्षा एवं उदर) को समान रखकर चत्विथी के अभ्यास का निर्देश किया है। ४० प्र० में शरीर को समान रखने का कोई निर्देश नहीं दिया है। चत्विथी के अभ्यास में शरीर को समान रखना परमावश्यक है अन्यथा अभ्यास का पूर्ण लाभ साधक को नहीं मिलेगा। चत्विथी प्राणायाम योग वस्तु में बहुत ही विर- परिचित प्राणायाम है लेकिन इसका सहयोग कुम्भकी साधक ही कर पाते हैं। कमजोर हृदय, कान, वात, एवं चत्विथी के साधकों को इसका अभ्यास हानिकारक होगा। रक्तचाप के रोगियों को इसका अभ्यास किसी भी परिस्थिति में अनुचित नहीं होगा। अभ्यासियों के लिए पूरा, दुग्ध वादि का ध्यान करना संस्तुत है।

प्राणरी कुम्भक

४० प्र० में प्राणरी के अभ्यास के लिए कुम्भक करके

१- ४० प्र० स ५५

२- ४० प्र० स ६६

बिना पूर्ण प्रमरी के समान मन्द मन्द वातावरण करते हुए रोक की विधि से वायु को बाहर निकालें। ये ६० में कंधरात्रि के समय मन बीच बन्धु का भी किसी प्रकार का कोई तन्त्र (मार्ग) न करे तब प्राणरी कुम्भ का बन्धाव कर विविध प्रकार के नादों का जवण करे। ६० प्र० में नादों के जवण का कोई उत्तेज नहीं है तथा प्रक्रिया भी बहुत ही क्योंकि रोक कि प्रकार को रूका कोई उत्तेज नहीं किया है।

पुष्पा कुम्भ

६० प्र० में पुष्प प्राणायाम के समय में वातस्थान बन्ध करते प्राणवायु की ली: ली: रोक करने का निर्देश किया है। ये ६० में वातस्थान बन्ध लगाने का उत्तेज उपलब्ध नहीं है।

ये ६०^३ के कुम्भ में मन को विचारों से छटा कर प्रकृति में लगाने का निर्देश है। पुष्पा के बन्धाव हेतु ये ६० की प्रक्रिया अधिक उपलब्ध मान ली है।

कैवली कुम्भ

ये ६० में कैवली प्राणायाम प्रकरण में तरीर की परिभाषा किया है (६६) बहुत उच्च वर्णित प्राणों की गति का भी उत्तेज किया है। ये ६० में कैवली कुम्भ के बन्धाव से वायु को वायु बंधने का उत्तेज उपलब्ध होता है। कैवली कुम्भ का बाठ प्रकार (विन रात्रि) में बाठ बार बन्धाव कर यदि बाठ बार बन्धाव न करे तो प्रातः फन्धाव कीर कार्य का

१- कैवली ६६३ से ६६४ तक

२- ६० प्र० से ६६

३- ये ६० से ६६

तीनों कार्यों में कवचा गायत्री के साथ परिमाण से पाँच बार के पुनः से करने का निर्देश है ।

ह० प्र० में " केवली हुम्क " नाम से ती प्रथी प्राणायाम की प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है, किन्तु द्वितीय उल्लेख के अन्त में केवली हुम्क की प्रक्रिया निम्न प्रकार विवक्षित है- रोक, तीर प्ररु के बसिरिष्य हुउ-
प्रुकि वायु धारण करने की " केवली हुम्क " कही है । केवली हुम्क तब ही
पर योगी के तिर उधार में कीर्त फायें हुईन नहीं है। वह कभी कबानुसार वायु
धारण कर सकता है । (वह) राखीन की फायी प्राप्ति कर सकता है ।

" बीजकारी " तथा " सावित्री " का ध० ध० में उल्लेख प्राप्ति नहीं । " वसिष्ठ " एवं " केवली " प्रक्रिया ह० प्र० में उल्लेख नहीं है ।

कवच कवचाय के अन्तर्गत उल्लेख में ध्यान प्रकरण का उल्लेख किया था। इस कवचाय में ध्यान को परिभाषा, एवं उसकी प्र-
क्रिया , ध्यान का महत्त्व, सूक्ष्म ध्यान ज्योतिर्मय ध्यान तथा सूक्ष्म ध्यानों के
विषय में उल्लेख किया था।

१- ध० ध० १४८२ से १४९

२- ह० प्र० २१७३-७४

नमः कव्याय

वृत्तीय में ध्यान-प्रकरण

छठ्यांश में ध्यान प्रकरण

ध्यान की परिभाषा

साधना के क्षेत्र में 'ध्यान' एक व्यापक शब्द है। समस्त साधन में मग्नतासाधनात्कार के जितने प्रकार के मार्ग हैं उनमें ध्यान करने की प्रक्रिया भी भिन्न भिन्न है। साधनान्तर्गत ध्यान की प्रक्रिया सम्पूर्ण रूप से पल रही है। इस हेतु योगदर्शन में 'तत्र प्रत्येकतानताध्यानम्'। उस देश विशेष में जिसमें साधक ने धारणा की सिद्ध किया है, (तत्र) चित्त का निरन्तर सतृप्त प्रवाह ही ध्यान कहा जाता है। यहाँ निरन्तर प्रवाह का अविच्छाद है कि दूसरा ज्ञान इस बीच में न हो।

व्यास भाष्य में ध्यान के लक्षण

"उस देश में जिसमें धारणा की गई ध्येय स्वरूप बालम्बन वाले ज्ञान की एकतानता अन्य जानों से रहित ध्यान कहा जाता है।"

एकतानता है तात्पर्य है चित्त की एकाग्रता, ऐसा वाचस्पति मिश्र का मत है।

४
ध्यानावस्था कात में चित्त के सतृप्त प्रवाह की

१- योगदर्शन ३।२

२- तत्स्मिन्देहे---- ध्यानम् । व्यासभाष्यम् ३।२

३- एकतानताकाग्रता---- तत्त्वज्ञानेश्वरी पृ० २७६

४- एकतानता तैत्तिरीय ध्यानावस्था प्रवाह ।। भाष्य पृ० २३

उपमा निरन्तर प्रवाहित होने वाली तैल धारा से दी गई है।

संकराचार्य ने भी सर्वविद्वान्त-चार-संग्रह नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत ध्यान का लक्षण देते हुए लिखा है कि तैलधारा के समान जो वृत्ति का अवधिन् प्रवाह है वह ध्यान कहा जाता है।

महाराज भोज ने उस प्रसंग में जिसमें चित्त एकाग्र किया गया हो उसमें प्रत्यय क्वात् ज्ञान की जो एकतानता विपरीत परिणाम के त्याग द्वारा जो वह धारणा में बालम्बन किया है उस बालम्बनता से ही सर्व-ध्यान काल में ज्ञान उत्पत्ति वह ध्यान कहलाता है^१।

“ धारणा का परिणाम ” ध्यान ” है ।

जिसे विषय में चित्त का धृत होना स्थिर होना उस विषय में प्रत्यय वा चित्तवृत्ति की एकतानता होना बहुत प्रवाद ध्येय बालम्बन से भिन्न अन्य विषय में चित्तवृत्ति का न जाना ध्येयाकार में चित्त वृत्ति का एकतान प्रवाह ध्यान कहलाता है।

“ जो जिस वस्तु को परमावश्यक जानकर उसे प्राप्त करना चाहता है, उसके चित्त से उस वस्तु का चिन्तन स्थायीक हो बार बार होती है। उसके चित्त में अपने ध्येय प्रार्थों की धारणा बृद्ध होती जाती है, और जाने चल कर वहीं धारणा- चित्त वृत्तियों के सर्वथा ध्येयाकार बन जाने पर “ ध्यान ” के रूप में परिणत हो जाती है, जितने काल तक वृत्तियाँ

१- तैलधारावदधिन्मधुत्था तदुध्यानमिष्यते ॥

- सं० वै० सा० सं० पृ० ८१५

२- तत्रास्मिन्प्रवृत्ते --- साध्यानुसुच्यते ॥

- भोजवृत्ति- योगदर्शन सूत्र ३।२

३- योगविवेचार्थ पृ० ६६२ वर्ण्य तद्वत् १६३५

ज्योत्स्नाकार रखी है, उतने कास की स्थिति को ध्यान कहा जाता है ।^१

ध्यान की स्थापना करने की विशेष प्रक्रिया का मूल उत्पत्ति 'योगा एण्ड हेल्थ चार्टर्स' की एण्ड पैरा चार्टर्स की बीसवीं की में विस्तृत रूप में मिलता है ।

चतुर्थी उपनिषद् में ध्यान-विधान

वित्तिलोपनीपनिषद् में ध्यान प्रक्रिया

“कभी वाक्य लगाकर नासिका के छेदों पर धृष्टि लगाकर पिंडों की वात में सनाये, दांतों से जीभों को स्थिर करते हुए जीभ शरीर छोड़कर बैठे । शुद्ध हृदि से कर्तव्यों का ध्यान करते परमेश्वर वाचस्पति का ध्यान से चिन्तन की ।”

भी उपनिषद् प्रकार से ध्यान के साथ मन्त्रानुवाचन का एक याम (३ घण्टे) विधान करता है इसके बाद जम्भ के पाच नष्ट होते हैं ।^२

चतुर्थीपनिषद् में ध्यान प्रक्रिया

(अ) चतुर्थीपनिषद् में ध्यान

“कम में संसार के मय को नाश करने वाली का

१- योग विविधादि पृ० ४५४ वर्ष १९३५

२- योग एण्ड हेल्थ चार्टर्स की एण्ड पैरा चार्टर्स की बीसवीं -२ पृ० २२०

- डा० जी० टी० के०

३- वित्तिलोपनीपनिषद् पृ० १४५ से १४८ तक

सर्व सत्य जो कि संसार की व्याधि का नाश करने वाली जीव्याधि को बतलाता है, जो ऊर्ध्वरेत, विरुपाक्ष विश्वेश्वर रूप महेश्वर का "सौष्ठम" शब्द के द्वारा ध्यान करना चाहिए । "

(ब) निर्विशेष ब्रह्म ध्यान

"कदा सत्य ज्ञानस्वरूप, निर्मल, नित्य, ज्ञावि और अन्तरास्ति जो चक्षु का विषय नहीं, जो न रस है, न गन्ध है, ज्ञेय और अरुण है, सत्-चित्-आनन्द अन्त ब्रह्म जो देहातीत है, उसको ईश्वरि सत्यादि महावाक्यों के द्वारा ध्यान करना चाहिए । "

ध्यानविन्दूपनिषद् में ध्यान प्रक्रिया

"प्रणव ' ओंकार धनुः ज्ञाकर आत्मा को तीर और ब्रह्म को लक्ष्य बताते हुए सावधान होकर उस लक्ष्य का ध्यान कर और तीर के समान ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिए । उस परमब्रह्म परमेश्वर के अपार दर्शन के द्वारा सभी क्रियाएं निवृत्त हो जाती हैं। सभी देवता ओंकार से उत्पन्न हुए हैं, सभी स्वर ओंकार से निकले हैं । ये सभी घर और वर मिलोबर्ब ओंकार से उत्पन्न हुआ है । "

द्वय में दीप्ति की लौ की प्रभा के समान अशुद्ध मान लक्ष ओंकार रूप ईश्वर का ध्यान करना चाहिए । लक्ष के द्वारा वायु का लोकोर्षण कर उदर में स्थिर कर ज्वालाओं की पंक्तियों से घिरे हुए मासमान ओंकार का ध्यान करे । ² ⁴¹

१- दर्शनोपनिषद् ६।१ से ५

२- ध्यानविन्दूपनिषद् १४ से २० तक

योगतत्त्वोपनिषद् में सगुण ध्यान

“ वायु का निरोध कर हृदय में चौबीस (२४) घण्टे दृष्ट देवता का ध्यान करे । इस सगुण ध्यान के अभ्यास से वणिमा वादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है । ”

निर्गुण ध्यान के बारह दिन के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति हो जाती है। बुद्धि के द्वारा जीवन्मुक्त हो जाता है। समाधि क्वात् जीवात्मा- परमात्मा की स्वरूपा प्राप्ति हो जाती है । ”

शाण्डिल्योपनिषद्

शाण्डिल्योपनिषद् में ध्यान की प्रक्रिया सगुण और निर्गुण प्रकार से ही है ।

सैतान्यतरोपनिषद् में ध्यान का उल्लेख

“ तीन (चित्, गर्भ तथा वच्चाः स्वतः) को शरीर के साथ सीमा करके मन के द्वारा इन्द्रियों को हृदय में समावेश करके विद्वान् बौद्धिक रूपी नाँका से सभी भयानक वस्तु प्राप्ति को पार करे । ”

वीरभद्रभगवद्गीता में ध्यान

“ सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर क्वात् इन्द्रियों की विषयों से छटाकर स्व मन को हृदय में स्थिर करके और वषी

१- योगतत्त्वोपनिषद् १०४ से १०६ तक

२- शाण्डिल्योपनिषद् ६

३- सैतान्यतरोपनिषद् २८

प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारणा में स्थित हुआ जो पुरुष जोड़म्
रहे (२२) एक ज्वार रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके कर्ण स्वरूप
मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरुष परम गति
को प्राप्त होता है । ”

परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो सुदृढ़ एवं
सुप्त बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय देश में देखते हैं, अन्य ज्ञान के द्वारा और
अपर निष्काम कर्म योग के द्वारा देखते हैं ।

योगमार्तण्ड में भी निर्गुण और सगुण दो
प्रकार के ध्यानों का उत्तम उल्लेख होता है ।

कंकालमाशिनी तन्त्र में ध्यान प्रक्रिया

योगी ऐसा ध्यान करे कि जिस सङ्ग्रहण कमल
में प्रतीत अन्तरात्मा अधिष्ठित है, उसके ऊपर नाद विन्दु के मध्य में एक
उज्ज्वल सिंहारुण विमान है, उसी सिंहारुण पर अपने दृष्टदेव विराज रहे हैं,
वे वीरारुण से बैठे, उनका शरीर बाँधी के फलतः के सदृश स्थित है, वे नाना प्रकार
के जाह्नवणों से विभूजित हैं, और सुगन्ध, पुष्प, वस्त्र धारण कर रहे
हैं, उनके हाथों में वर और अन्य सुखा है, उनके बाप के पर शक्ति विराजित
हैं । गुरुदेव कुरुणा दृष्टि से चारों ओर देख रहे हैं, उनकी प्रियतमा-शक्ति
दाहिने हाथ से उनके मनीषर शरीर का स्पर्श कर रही है। शक्ति के बाप कर में
रक्तपद्म है और वे रक्त वर्ण के जाह्नवणों से विभूजित हैं, जो प्रकार उन समा-
हृत गुरु का नाम स्मरण पूर्वक ध्यान करे, उसको स्थूल ध्यान कहते हैं । ”

१- श्रीमद्भगवद्गीता ८। १२-१३

२- .. १३। २४

३- योगमार्तण्ड पृ० १५७

४- सङ्ग्रहण पद्म ----- नामपूर्णकम् ।।

- योगविशेषादि पृ० ४५९-४५२

विश्वसार तन्त्र में ध्यान प्रक्रिया

मस्तक में जो सुप्त वर्ण का कर्म है योगी प्रातः काल में उस फल में गुरु का ध्यान करे कि वह शान्त, त्रिनेत्र, त्रिभुज है और उनके हाथों में वर और कमल सुता है, इस प्रकार के ध्यान को स्थूल ध्यान कहते हैं।

सारस्वत कुण्डलिनी महायोग में ध्यान के विषय में उल्लेख किया है कि ध्यान से मन्त्रावृत्त होता है। जिस वृत्त में उसके वास्तविक स्वरूप का चिन्तन किया जाता है, उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान का कार्य है मन का निर्विषय होना। जब स्थापना जाती है तब विषयों के प्रति वास्तविकता की कमी होने लगती है। निर्मलत्व जाने लगता है और मन एवं इन्द्रियों का विषय भी निर्मल हो जाता है।

हठयोग में ध्यान के भेद

हठयोग के सभी प्रसूत उपनिषदों में ध्यान के भेदों में सगुण और निर्गुण का उल्लेख प्राप्त होता है। पै० सं० में ध्यान योग प्रकरण में तीन प्रकार के ध्यानों का उल्लेख उपलब्ध है- १- स्थूल ध्यान, ज्योति-ध्यान और सूक्ष्म ध्यान। जिसमें मूर्ति, इष्ट देवता कच्चा गुरु का चिन्तन हो उसे स्थूल और जिसमें तैत्तिरीय ब्रह्म या शक्ति की भावना हो उसे ज्योतिर्ध्यान कहते हैं जिस ध्यान द्वारा बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान हो उसे सूक्ष्म ध्यान कहते हैं।

१- प्रातः शिरसि हस्तैः कुर्वे ----- स्मरन्तान्नाममङ्गलम् ।

- योग विशेषाङ्क पृ० ४५१ से ४५२ वर्ण अक्षर १६३५

२- सारस्वत कुण्डलिनी महायोग पृ० २७-२८-६२ सायंकाल

३- पै० सं० ५११

स्थूल ध्यान

पै० सं० में स्थूल ध्यान प्रक्रिया

“ नैव वन्द करके जमी मृदय में सुधासागर का ध्यान करे। उसके मध्य में रत्नमय द्वीप का तथा वह द्वीप रत्नमयी वास्तुका से शोभा दे रहा है। उसके चारों ओर कदम्ब वृक्षों से शोभा हो रही है, पुष्पों के तिल्ले से वृक्षा शोभित हो रहे हैं। ”

“ कदम्ब वन के चारों ओर मालती, चमेली, कैतर, चम्पा, पारिजात, फूल से इस द्वीप की सार्ध बनी है तथा इस सुगन्ध से चारों दिशाएं मल्ल रही हैं। ”

योगी ऐसा चिन्तन करे कि उस वन के मध्य भाग में एक कल्पवृक्षा है, उसकी चार शाखाएँ हैं, वे चतुर्दिगम्य हैं। तत्काल उत्पन्न पुष्प व फलों से वे सब शोभित हैं। उनपर प्रभर गुंजारण कर रहे हैं। कोकिल शाखाओं पर बैठकर लुह-लुह शब्द कर मन को सुख कर लेती है। एक कल्प-वृक्षा के नीचे महाभाषिण्य जटिल एक रत्न-मण्डित मण्डप परम शोभा दे रहा है। उसी बीच में मनोहर फल विज्ञा हुआ है, उस पर हृष्टमेव विराजमान हैं। गुरु-देव कैसा उपदेश दिए हों उसी के कलुष योगी भूषण वाहन वादि का ध्यान करे- इसे स्थूल ध्यान कहते हैं।^{२३}

पेरण्ड संज्ञिता में प्रकारान्तर से स्थूल ध्यान

प्रवरन्ध्र में सद्यस्त्र संज्ञक महाफल है। इसके मध्य में बारह दल का एक कमल है। यह सुभ वर्ण तथा परम वैभ सम्पन्न है। इसके बारह दल में ज्ञानः ह स चा न स व र ह स त प्रे - ये बारह जपार लिखे हैं।

१- पै० सं० ६। २, ३

२- पै० सं० ६। ४ से ८ तक

उसकी कणिका में व क व इन तीन बत्तारों की तीन रैतारें हैं, मध्य में व त का इन त्रिकोणाकार बत्तारों के मण्डल में ऊँ बना है। पुनः नादविन्दुमय एक पीठ विराजमान है। उस पीठ पर दो हंस खड़े हैं। वहाँ पादुका भी है। इसी स्थल पर गुरुदेव विराजित हैं। उनके दो मुखा हैं। सुवस्त्र वस्त्र पहने हैं। सुचन्दन वर्णित हैं। सुवर्ण की मोलाधारण किये हैं। उनके वाम भाग में स्वतः वर्ण की शक्ति शोभा दे रही है। ऐसा ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है।^{१)}

चैरुण्ड संज्ञिता में ज्योतिर्मय ध्यान प्रक्रिया

“ है चण्ड । स्थूल ध्यान कथा गया है। अब ज्योतिर्मय ध्यान करता हूँ। इससे योग-सिद्धि तथा वात्स्य-प्रत्यक्षा होता है। मृताधार में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। इस स्थान में दीप कस्तिकाकार में जीव रखा है। वहाँ पर ज्योति रूप ब्रह्म का ध्यान ज्योतिर्ध्यान कहा जाता है।”^{२)}

भूमध्य में खीर मल के ऊर्ध्व भाग में ऊँ कार्मय खीर शिलाभासा सुवस्त्र ज्योति है। उसका ध्यान ज्योतिर्ध्यान है। इसे ज्योतिर्ध्यान कहा तेजोध्यान कही है।^{२)}

चै० सं० में सूक्ष्म ध्यान प्रक्रिया

है चण्ड । तेजोमय ध्यान स्थान के पश्चात् सूक्ष्म ध्यान करता हूँ। सुनी, बड़े जीभाग्य से साधक की कुण्डली जाग्रत होती है। वात्स्य के साथ मिलकर नैवारम्भ से निस्त कर ऊर्ध्वभागस्थ राक्षसार्ज नामक स्थल में सुप्ती है। इसी समय सूक्ष्मत्व पञ्चत्व के कारण उसे देखना कठिन होता है। योगी शान्तजी मुद्रा के अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी का ध्यान करे, उसे ही सूक्ष्म

१- चै० सं० ६।६-१४ तक

२- चै० सं० ६।१५-१७ तक

ध्यान करते हैं। यह गौणीय और वैषताओं की भी दुर्लभ है। स्थूल है ज्योति-
ध्यान से गुना वैष्ट है। ज्योतिध्यान है सूक्ष्म ध्यान साख गुना वैष्ट है। है
चण्ड। यह दुर्लभ ध्यान योग दुर्लभ गुनाया है, इससे वात्मसाक्षात्कार तथा
ध्यान सिद्धि होता है। "

हठप्रदीपिका में ध्यान प्रकरण

" शब्द की (ध्यान के अनुकूल) वैष्ट रक्षा
में स्थित होकर पुष्पुन्ना नाड़ी की ठीक ठीक मैदन विधि की जानकर वायु की
उपम प्रविष्ट कर प्रवरन्ध्र संवरित करना चाहिए। "

मन के स्थिर (निरुद्ध) होने पर प्राण
(वायु) स्थिर हो जाता है और प्राण के स्थिर (प्रवरन्ध्र में हीन) होने
पर वीर्य (बिन्दु, प्रलय) स्थिर होता है, बिन्दु के स्थिर होने पर सत्त्व
(क्त) पुष्ट होता है और शरीर की स्थिरता (वीर्यकाय तक) वदुष्ण
रक्षी है।

(नेत्रादि) इन्द्रियों का स्वामी मन है (मन की प्रेरणा है ही इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों में प्रवृत्त होती हैं) मन
का स्वामी प्राण है। (प्राण के उपयोग है ही मन की प्रवृत्ति होती है)
प्राण का स्वामी सत्य है। यह मनोस्य नाद (समाधि) के वाहित है। (प्राण के ऊर्ध्व होने पर पुष्पुन्ना में प्राण संवरित होने पर नाद की वमिव्यक्ति
होती है। इस नाद में मन का सत्य होने पर मोक्ष सिद्ध है। मन और प्राण
का सत्य होने पर (अनिर्वचनीय) वानन्द का वाविर्भाव होता है।

वीर्यियों का वर्तकृष्ट सत्य (ध्यान) यही

१- पै० सं० ६।१८ से २२

२- पै० प्र० ४।१६, २८ से ३० तक

है कि स्वास निःस्वास (प्रकृ द्वारा वायु का अन्दर जाना- स्वास और रोक द्वारा बाहर निकालना (निःस्वास) दोनों है रहित हैं, इन्द्रियों द्वारा स्पर्श रूप, रस, गन्ध और स्पर्शादि विषय ग्रहण न हो, किसी भी तरह की (शारीरिक) चेष्टा न रहे और विकार का उर्वधा जाय हो जाय। (योगी के मन में) किसी भी प्रकार का संकल्प न उदित हो- समस्त संकल्प नष्ट हो जाय जसा मन की चंचलता विनष्ट हो जाय, समस्त चेष्टाओं से निवृत्ति हो जाय, केवल मात्र अनुभवगम्य यह त्व (ध्यान) वाणी के द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता- यह वाणी है अगौचर है।

योगी को बाह्य (विषयों का) चिन्तन नहीं करना चाहिए और न उसे अन्तःचिन्तन करना चाहिए उसे बाहर अन्दर के समस्त चिन्तनों का परित्याग कर किसी का भी चिन्तन नहीं करना चाहिए, स्वरूपनिष्ठ रहना चाहिए।^१

यह समस्त विश्व प्रपञ्च मन का संकल्प (व्यापार) मात्र है और तब विचारकाकार (कल्पना रूप) मन का विलास भी मन का ही संकल्प मात्र बाह्यान्तर प्रपञ्च का परित्याग कर है राम। (योगशास्त्र में महर्षि वशिष्ठ का राम के प्रति उद्बोधन है) निर्विकल्प (ब्रह्म) का वाक्य ग्रहण कर निश्चय पूर्वक शान्ति- परमोपरति को प्राप्त करें।

जिस तरह कपूर अग्नि में विलीन (अग्नि-स्वरूप) हो जाता है और मक्ख पानी में विलीन तद्रूप हो जाता है, उसी तरह मन सत्त्व में त्व को प्राप्त कर सत्त्व रूप हो जाता है। समस्त ज्ञेय और ज्ञान के मन सहित नष्ट हो जाते पर ज्ञान और ज्ञेय का अस्तित्व ही नहीं रहता, उनके स्थित रहने का दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है^२।

१- उ० प्र० ४। ३९, ३२ एवं ५७

२- उ० प्र० ४। ५८ से ६२ तक

यह समस्त बराबर- जंगम और स्थावर जगत् मन से ही उत्पन्न है। जब मन उत्पन्न (उत्पत्ती भाव की प्राप्ति) हो जाता है, तब हित की प्रीति नहीं होती। समस्त बराबर दृश्य जगत् तैय वस्तु के परि-त्याग से मन विलय की प्राप्ति होता है- मन सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है। मन की तय की प्राप्ति होने पर केवल ही शेष रहता है।

पारस और मन के सम्बन्ध का उल्लेख

रस- पारस और मन, दोनों स्वभाव से ही संबन्ध होते हैं। पारस और मन, दोनों बढ़ हो जायें तो एक दूसरे पर क्या नहीं चिह्न हो सकता? (वायुधियों के योग से) मूर्च्छित - मस्मीभूत पारस व्याधियों का नाश कर देता है। मारण किया हुआ पारा जीवन प्रदान करता है। पारस और वायु बढ़ होने पर तेजरी- वायु में गमन और धातु की प्राणायाम है) ब्रह्म में तत्त्वसाक्षात्कार की सिद्धि प्रदान करते हैं।

मूर्च्छित पारा- रोगनाशक और वायु मार्ग में गमन करने की शक्ति देने वाला है। वह पारा ज्वरदायक है। पार की मत्स्य चरुणाता, दुष्टि, पुष्टि तथा कान्तिजनक है। वीर्यवर्धक, पुष्टिदायक, स्त्रियों की वानन्दजनक और योगवाही है। मूर्च्छित पारा- कंगूर नाशक और सुखिदायक है। मरा हुआ पारस ज्वर फट को देने वाला है। फिर कठोर अधिक कौन दूधरा हुआ करने वाला है।

वपिव- पारा- दैह शुद्धिकारक, नाना प्रकार के रोग विनाशक, पुष्टिकारक और पुष्टिदायक है तथा चिरंजीव करने वाला है। पारा सर्व रोगों को दूर करने वाला, राखवत्पा रोग को हरने वाला और पान

१- पृ० ४१ २६-२७

२- शास्त्रिणमनिषण्ड धातु वर्ग पृ० ५४५-५४६

के रस के साथ मचाना करने से समस्त प्रकार के रोगों को तत्काल दूर करने वाला है ।

वर्षित पारु प्रीति

मिट्टी के गुणों से अधिक करीब गुण सुवर्ण के वर्तन करने में है। सुवर्ण के गुणों से अधिक करीब गुण मणि के वर्तन करने में है। मणि के गुणों से अधिक करीब गुण वाण के वर्तन करने में है और वाण के गुणों से करीब गुण अधिक पार के वर्तन करने में है, पार से अधिक गुण वाला फार्प न हुआ और न होगा ।

हठ प्रीति में ध्यान का फल

जब तक प्राण जीवित है, तब तक मन भी नहीं मरता (वात्मा में विलीन नहीं होता) इसलिए अन्तःकरण में ज्ञान का उदय नहीं हो सकता है, जो वाक्य प्राण और मन, दोनों का लय कर देता है, वही मोक्ष की प्राप्ति होता है, अन्य पुरुष मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता है ।

ज्योत्स्ना टीकाकार ब्रह्मानन्द का मत है कि हठयोग के अभ्यास के बिना ज्ञान और मोक्ष की सिद्धि सम्भव नहीं है । प्राण और वयान की एकता की सुशुद्धा में प्रतिष्ठित करना ही हठयोग का अभ्यास है। जब तक इस तरह प्राण का लय नहीं स्थापित हो जाता है, तब तक मन का भी ज्योत्स्ना टीकाकार- वात्मा के लय में लय नहीं होता । मन से विषयों की उत्पत्ति होती है, विषयों से ही इन्द्रियाँ कार्यरत होती हैं, इस तरह प्राण के साथ इन्द्रियाँ भी जीवित- कार्यशील रहती हैं । जब तक प्राण हटा-फिरता में प्रा-

१- शास्त्रिण निबन्ध धातुवर्ग पृ० ५७३

२- पृ० प्र० ३११५

क्षिप्त रहता है, तब तक वह जीवित रहता है और पुष्पुष्पा मेंतीन होते ही उसकी वाह्य क्रिया समाप्त हो जाती है। जब तक प्राण, इन्द्रिय और मन जीवित है, जब तक वात्म साक्षात्कार रूप अनुभव नहीं प्राप्त हो सकता, स्वरूपावस्थान की प्राप्ति दुर्लभ होती है। जो योगी प्राण और मन का विलय कर देता है, वह वात्यन्तिक स्वरूपस्थिति- मुक्ति का भाजन होता है। अंतरन्ध्र में पुष्पुष्पा मार्ग में प्राप्ति कर प्राण को निर्व्यापारस्थिति में कर देना ही प्राण का लय है। व्यैयाकार वात्मवृत्ति में मन का सम्पूर्ण विलय- तदाकार ही उन्मा ही मन का लय है। जिसके मन, प्राण का विलय नहीं होता, उसको ऐक्योपाय करने पर भी मोक्षा की प्राप्ति - वात्म ज्ञान की सिद्धि नहीं होती। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है-

“ युष्मन्नेवं ज्ञात्मानं योगी न्यक्तमानसः ।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थायमधिगच्छति ॥ २

(मन को वश में करने वाला योगी वात्मा को निरन्तर मुक्त परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुक्त में संस्थित निर्वाण-स्वरूपिणी परम शान्ति की प्राप्ति होता है ।)

यदि योगी द्वारा मन- प्राणवायु को निरुद्ध कर लिया जाता है, उसी के द्वारा मन भी वश में कर लिया जाता है। ऐसा योगी ही मन और मन दोनों को एक साथ वही वश में कर लेता है ।

चित्त की प्रवृत्ति के दो हेतु हैं- वासना और प्राण की संयुक्तता । वासना और प्राण, इन दोनों में है एक के विनष्ट (निरुद्ध) हो जाने पर दोनों का ही (स्वतः) लय- निरोध हो जाता है ।

१- योगवाणी- दृष्ट्यांशक पृ० १२३

२- श्रीमद्भगवद्गीता ६।१५

३- उ० प्र० ४।२२ से २३ तक

जहाँ मन का लय होता है, वही प्राण का भी लय होता है और जहाँ प्राण का लय होता है, वही मन भी विहीन हो जाता है।

एक दूसरे से मिले हुए (संयुक्त) दूध और फल के समान हो मन और प्राण की क्रियाओं- प्रवृत्तियों का सम्बन्ध है। जहाँ प्राणवायु है, वही मन की प्रवृत्ति है और जहाँ मन है, वही प्राण की प्रवृत्ति है। एक का लय होने पर दूसरे का लय हो जाता है। एक की प्रवृत्ति से दूसरे की प्रवृत्ति होती है, जब तक सभी शक्तियों की प्रवृत्ति वही वही विचारों में निरुद्ध नहीं होती, तब तक मोक्ष फल की भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

तपस्वि (कुण्डलिनी) में मन की सम्पन्न कर देना तपस्वि की मन में विहीन कर (योगी की) मन से मन की विलोप- बुद्धि की मन में स्थिर कर परम फल की धारणा करनी चाहिए।

(बाकायल के समान सर्वव्यापक) ब्रह्म में वात्मा की और वात्मा में ब्रह्म की विलीन कर सब कुछ सम्पन्न है- ऐसा विचार करती हुए (साधक की) तन्मय स्थिति की पराजय का चिन्तन (ध्यान) नहीं करना चाहिए।

धरुण्ड संविता के बड़े उपदेश में " ध्यानयोग " के सम्बन्ध में धरुण्ड ने सभी सिद्ध जन्म की सम्पीडित करती हुए ध्यान के तीन भेद - स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्म ध्यानों के प्रकार एवं उनकी प्रशिक्षा का उल्लेख किया है।

स्थूल ध्यान में शब्दोंद जपना गुरु एवं उनकी

१- पृ० प्र० ४। २२ व २५

२- पृ० प्र० ४। ५४, ५५

३- पृ० प्र० ६। २२

४- .. ६। १ से ३ तक

वामांग स्थित शक्ति के साथ सुशोभित चित्र का ध्यान कर्मा सहस्रार में बीजा-
चारों शक्ति महाकर्म की कल्पना के साथ स्थूल ध्यान की नौ विधि है वह सगुण
ध्यान की ही प्रक्रिया है। षेरण्ड संहिता में स्थूल ध्यान की प्रक्रिया का उत्तम
वर्धक विस्तृत है। ध्यान जैसे सूक्ष्म विधाय के व्यास के लिए ध्येय वस्तु भी सूक्ष्म
ही रहे तो उसके व्यास में वस्त्रावधि में ही सफलता उपलब्ध होती है।

साधना के क्षेत्र में सगुण और निर्गुण दो ही
प्रकार की ध्यान विधियों के उत्तम ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं। षेरण्ड संहिता में
एक तीसरे ज्योतिर्मय ध्यान का उत्तम किया है जो कुछ तार्किक प्रक्रिया है।

तार्किक प्रणाली में मुखाधार में दो कुण्डलिनी
शक्ति हैं, वहीं बीजकल्पना की जाकृतिवासा बीजात्मक विद्यमान रहता है।
वहीं ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान करना ही ज्योतिर्मय ध्यान है।

षेरण्ड के अनुसार शम्भवी मुद्रा के द्वारा कुण्ड-
लिनी शक्ति का ध्यान करना सूक्ष्म ध्यान है। षेरण्ड ने सूक्ष्म ध्यान के महत्त्व
में दर्शाया है कि सूक्ष्म ध्यान अत्यन्त गोपनीय है तथा देवताओं को भी दुर्लभ है।
स्थूल ध्यान है ज्योतिर्मय ध्यान ही गुण शैष्ठ्य है तथा ज्योतिर्मय ध्यान है सूक्ष्म
ध्यान सात गुण शैष्ठ्य दर्शाया है।

षेरण्ड का उपर्युक्त कथन जो ध्यान की शैष्ठ्यता
है, उसी दशा में उपर्युक्त होगा जबकि साधना की गहन स्थिति में उतरा जाय
वन्ध्या एक कल्पना ही मातृम पड़ती है।

यह सभी ग्रन्थकार स्वीकार करते हैं कि व्याता
विना ध्येय के ध्यान करने में सर्वथा व्यर्थ रहता है। इसलिए उसे समाधि तक पहुँचने

१- पै० सं० ६।१६

२- ,, ६।२०

३- ,, ६।२१ से २५ तक

के लिए व ध्यान की सफलता के लिए बहुत कम समय ध्येय बनाना परमावश्यक है । जब शरीर, प्राण और मन पर संयम करने पर क्षिप्तवृत्तियों का सम्यक् प्रकार निरोध होने लगता है तब यह प्रकार कुछ काल ध्येय पर लगातार रूप से ध्यान करने पर वही ध्यान समाधि में परिवर्तित हो जाता है, जो ध्यान की वरम उपलब्धि है ।

सं० प्र० में ' ध्यान ' पर पूछा है कि उपाय उपलब्ध नहीं है। सूर्य उपलब्ध किसी कर्मगत समाधि (नाम ध्याना) का उल्लेख है, ध्यान योग पर लब्ध उपलब्ध के कर्मगत कुछ स्तीक उपलब्ध होती हैं । इन स्तीकों में मन, प्राण पर संयम करने व प्राण वायु की शुष्कता में संवर्धन करने के लिए भी उल्लेख उपलब्ध होता है।

सं० प्र० में किन्तु सम्यक् (ध्यानाधार वृत्ति में लक्ष्मीकता) की प्राप्ति की जाती है तब प्राणवायु शुष्कता नाड़ी में गमन करती है । जब तक प्राण जीवित है, तब तक मन भी नहीं मरता- वात्मा में विहीन नहीं होता , अतः कर्म-करण में जान का उदय नहीं हो सकता है , जो (वात्मा) प्राण और मन, दोनों का रूप कर लेता है, वही जीवा की प्राप्ति होता है, अन्य पुरुष नोवा प्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता । यह प्रकार मन और प्राण की विहीन करने के लिए ही लब्ध उपलब्ध में स्तीक सं० ११, १२ , १३, १४, १५ से २३ तक , २४ से ३० तक तथा ५० से ५५ तक में मन प्राण तथा शुष्कता का दो प्रकारण उपलब्ध होता है जो एक पुरावृत्ति मात्र है । और प्रत्येक का विस्तार मात्र है ।

सं० प्र० के सूर्य उपलब्ध में ही स्वात्मधाराम ने मन और पारम की संज्ञा का वर्णन करते हुए पारम के गुणों का उल्लेख किया

१- सं० प्र० ४११४ से १६ तक

२- .. ४

३- .. ४१२६, २७

है ही ध्यान के प्रणि से धातु की पारि के गुणों की वीर वाक्यनित करता है
तथा वित्त की स्थापना में भी व्यवधान ही करता है।

ह० प्र० के कन्दर ध० ध० जैसे स्मृत ज्योतिर्मय
तथा द्रुत ध्यानी की प्रक्रिया का पुनः पुनः उल्लेख नहीं है, बल्कि सर्व व्यापक
परमेश्वर के ही ध्यान की मस्तक दिया है वीर कस्त में योगी ध्यान से समाधि
में बाहर प्रथ है विन्म वृत्ति के क्वाप में प्रथ स्वरूप ही ही जाता है।

ध० ध० के अनुसार ध्यानयोग, नाद योग, रसा-
नन्दयोग, त्रय विधि योग, भक्ति योग, राजयोग, समाधि तथा समाधि योग
माहात्म्य ।

ह० प्र० के अनुसार- समाधि वर्णन, राजयोग
प्रतिष्ठा, जीवन्मुक्ति के सत्पण, नाद की वारम्भावस्था, षट्पस्था, परिक्या-
वस्था, निष्पत्तिवस्था तथा नाना नाद वर्णन, मन का चापत्य नाश, व्यापक
वात्मा का परम फल वर्णन, उन्मत्तो कस्या में वेष्टा रहितता, योगी की सर्वथा
कम-वस्था का वर्णन जिसके बहुत कथाय में किया जायेगा ।

दशम अध्याय

अनाधि स्व वाद-प्रकरण

समाधि एवं वाद प्रकरण

समाधि की परिभाषा एवं लक्षण

भारतवर्ष के प्रख्यात ज्ञानियों ने ध्यान क्रम से अपने अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा उस बात को ज्ञात किया कि बाहरी समस्त वस्तुओं के एक मात्र कारण अन्तः कौन क्रम के दो रूप हैं— एक व्यक्त रूप और दूसरी वह वाच्यन्तर जैसा जो वाच्य, व्यक्त पदों को अनुप्राणित करती है, अर्थात् स्फूर्ति देती है। पहला रूप अतीन्द्रियोपर है और वाच्य प्रपञ्च कल्पता है तथा दूसरा अतीन्द्रिय है जो प्रत्यक्ष चैतन्य कल्पता है। वाच्य भ्रम परिणामी है एवं प्रत्यक्ष चैतन्य अपरिणामी।

“ ये सब दृश्य कार्य विनाशी हैं, अन्तरात्मा विनाशी कल्पता है। निर्विकल्प निर्मल परब्रह्म अपार है। ”

जहाँ वाच्य प्रपञ्च है वहाँ प्रत्यक्ष चैतन्य भी है। दृष्ट में मयल की भाँति वह चैतन्य क्रम प्रपञ्च में उर्वर उर्वरा व्यापक है, किन्तु चैतन्य क्रम के स्वरूप में उर्वरा वाच्य प्रपञ्च नहीं है। दृष्ट के अणु अणु में मयल है किन्तु जब तक दृष्ट तथा नहीं जागता तब तक उसमें मयल दृष्टिगोचर नहीं होता। वही प्रकार समाधि का वाच्य विषय विना प्रत्यक्ष चैतन्य का वाच्यताकार नहीं होता है। इसलिए उस चैतन्य क्रम के वाच्यताकार हेतु समाधि की आवश्यकता ज्ञानियों ने अनुभव की। प्रत्यक्ष चैतन्य का वाच्यताकार अतीन्द्रियों के विरोध के कारण निरुद्ध मन के द्वारा समाधि कल्पना में अनुपस्थान रूप में होता है,

उस समय हस्तिया निरव्यक्त हो जाती हैं और बाह्य प्रपञ्च तिरोहित हो जाता है ।

गुरुर्नि कर्माणि^१ ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार स्वीकार है- " (तस्य) बहु ज्ञान ही (अर्थात् मात्र निर्मादं) कर्म मात्र भावित हो जिसमें कर्मात् अर्थ का स्वरूप ही भावित हो (स्मितं । स्वस्त्वन्मय-
मिदं) योगी अपने स्वरूप से हृन्मय हो हुआ कर्मात् अपना स्मरण योगी को न रहे , जिसमें वह समान गति को (समाधिः) समाधि कहती है ।

महाराज भीम^२ ने समाधि के कही हुए पर समाधि को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है- " बहु ज्ञान जिसमें अर्थात् मात्र का भाव ही कर्म के स्वीकार का अपने ज्ञान में प्रतीत होने से अपना ज्ञान स्वरूप वन जाने से कर्म का स्वरूप उद्भूत होने के कारण स्वरूप हृन्मय को समानता की प्राप्ति होती है वह समाधि है ऐसा कहा जाता है। विचारों को हटाकर मन जिसमें स्फाट किया जाता है वह " समाधि " है ।

वायस्य दर्शनीयनिर्णय^३ में " जब मनुष्य परमात्मा की परमावस्था में होता है तब अतिशय दृश्य वस्तु विद्यमान हो जाता है। समाधि का स्वरूप कहा जाता है ।

योगशिखीपनिर्णय^४ में समाधि- चित्त के (बाह्य विचारों का अनुसन्धान करते समय) विलीन होने पर संसार का भाव होता है । मन का निरव्यक्त होना ही मुक्ति है। अतः है चित्त के नियन्त्रण । परमात्मत्व के

१- योगसूत्र विभूति पाद ३

२- योगसूत्र योगसूत्र ३ । २००-२०१

३- वायस्यदर्शनीयनिर्णय १०।१२

४- योगशिखीपनिर्णय ५।५

ज्ञान से ही मन को स्थिर करना चाहिए । ”

“ जीवात्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान के उदय की ही ” समाधि ” कहते हैं । ”

“ जीवात्मा परमात्मा के साथ एकता ही जिसमें संकल्प की सारी क्रिया नष्ट हो जाती है ” समाधि ” कहलाती है । ”

“ सुनियों के द्वारा साधित समाधि उस संकल्प शुन्य अवस्था का नाम है जिसमें न तो मन की क्रिया है और न बुद्धि का व्यापार है, जो वास्तव ज्ञान की अवस्था है और जिसमें उस (ब्रह्म) के अतिरिक्त कुछ का बोध है । ”

“ ब्रह्माकारवृत्ति के द्वारा कथ्य सर्व संकल्प निवृत्ति के द्वारा चित्त की वृत्तियों को सर्वथा मूल जाने का नाम ही ” समाधि ” है । ”

“ है प्रत्येकता प्राप्ति ” समाधि ” एक उस संशय रहित मानसिक पूर्णता का वाक्य है जिसमें वाच्यता का सर्वथा आवरण है और जिसमें सन्देहविवेक भी नहीं है । ”

“ जो चित्त वात्मा (परमात्मा) में निवेशित हीनमा और जिसके समस्त मल समाधि द्वारा धुल गये हैं उसके आनन्द

१- भाष्यवर्णनोपनिषद् १०।१ और तन्मपूजापनिषद् ५।७५

२- तामिष्यतपस्यपनिषद् १६

३- सुचित्तोपनिषद् २।५५

४- तैजोविन्दूपनिषद् १।३७

५- तन्मपूजापनिषद् १।५०

की वाणी द्वारा वर्णन नहीं हो सका केवल वस्तु:करण द्वारा अनुभव ही
सकता है ।^१”

“ जीवात्मा और परमात्मा की स्वभा की
अवस्था जिसमें ज्ञाता , ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी का अभाव है जो परमानन्द
रूपा है और वह कैवल्यारम्भिका है, वही ‘ समाधि ’ है ।^२”

“ चित्तवृत्ति का वर्तमान रूप हीकर अज्ञानकार
का जाना ही सम्प्रज्ञात समाधि का स्वरूप है। यह स्थिति ज्ञान के परिपक्व
अवस्था है सिद्ध होती है ।^३”

“ चित्त की प्रज्ञान वृत्ति जो ब्रह्मानन्द की
धैर्य वाली है सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। यह अवस्था योगियों की अविनाश
प्रिय है ।^४”

“ मैं केवल सत्तात्त्व्य हूँ, मैं कुछ कहें हुए है
सुख परम अनुभूति हूँ । मेरा स्वयं वाक्य प्रपञ्च है विरहित है, मैं विनाशकाल
हूँ ।^५”

“ यह गुणधर्माहार (वाक्य प्रपञ्च) की वात्मा
है निम्न ऐसी वाक् सत्त्वबुद्धी पुरुष की आन्तरिक शान्ति है उत्कृष्ट स्थिति
का नाम ‘ समाधि ’ है ।

१- मैत्रेयपनिषद् ६। ३४

२- साण्डिल्योपनिषद् १। ११

३- मुक्तिकोपनिषद् २। ५२

४- “ “ “ २। ५२

५- टीषीयिन्युपनिषद् २। ३

६- ब्रह्मसूत्रोपनिषद् १। २६

“ यह अवस्था में साध्य होने की में इस
 में अनुभव करने लगता है। उसे ‘समाधि’ कहते हैं।”

“ यह प्रकार ही समस्त बन्धनों को काटकर
 वाकाश में उड़ जाता है उसी प्रकार ही बीच संसार के बन्धनों को काटकर मुक्त
 हो जाता है। जैसे बीच हुकूम के बाद सब ही जाता है, उसी प्रकार योगी
 सभी कर्मों को बन्ध कर सब को प्राप्त करता है (वात्मा में विद्यमान हो जाता
 है।^१)

“ योग के विद्वानों ने बारह (१२) प्रकार की
 धारणा व बारह प्रकार (१२) के व्यास की ही समाधि कहा है। समाधि अवस्था
 में उस अवस्था परम विद्वान्मूर्ति ज्योति को देखने पर कोई क्रिया कर्म (संसार में
 भागगमन) नहीं रहता है।”

“ जैसे पानी में लवण मिल जाने से एक रूप
 हो जाता है उसी प्रकार योग से वात्मा और मन की रूपा को ‘समाधि’
 कहते हैं।”

“ योग मार्तण्ड में समाधि के सप्तान योग
 ब्रह्मसूत्रोपनिषद् के मुख्य ही उपलब्ध हैं।”

गीताफलति में समाधि प्रकरण

“ समस्त संसार-विकल्पों का दूर होना ही

१- ब्रह्मसूत्रोपनिषद् १६

२- तैत्तिरीयोपनिषद् २२ व २३

३- योगब्रह्मसूत्रोपनिषद् ११२, ११३

४- पराशीपनिषद् १।७५

५- योगमार्तण्ड १०४ से १०५ तक

समाधि है। मन एवं प्राण को एकत्र करके स्थिर होकर वात्मा की भावना करने वाली योगी की जब प्राणवायु वात्मा ही में लीन होती है, तब वृत्तःकरण भी लीन होता है। वैश्व के समान जीवात्मा-परमात्मा की ऐक्यता (वभिन्न स्वरूप) होती है। इसी को 'समाधि' कहते हैं^१।

योगी की समाधि कवस्था

जो योगी समाधि में एकत्व को प्राप्त हो जाता है तब समस्त इन्द्रियों को मन में लय कर गंध, रस, रूप, स्पर्श, उष्मादि पांच विषयों को नहीं जानता। क्योंकि इनका भान नहीं होता है। समस्त शास्त्रों के केष एवं सिद्धि योगों के भी अन्ध तथा मंत्र मन्त्रादि भी निष्क्रम हो जाती हैं। बरा-परणावस्था^२ पीड़ित नहीं करती तथा शुभाशुभ कर्म बन्धन भी सिद्ध नहीं कर पाते।^३

उठरत्नावली में भी समाधि के लक्षण गौरवा फटति के तुल्य ही उक्तवृत्त होती है।

उठ जीव चन्द्रिका में 'योगतत्त्वप्रकाश' एवं 'स्कन्द पुराण' का उद्धरण देते हुए समाधि को निश्चय ही जीवन्मुक्ति देने वाली बताया है। तथा जिस अवस्था में जीवात्मा परमात्मा का समत्व भाव प्राप्त हो जाता है व सर्व संकल्पों का अभाव हो जाता है उसे 'समाधि' बताया है।

सिद्ध-सिद्धान्त-फटति में सबको वात्सरूप के देहता और अन्य व्यापार वादि का अभाव ही 'समाधि' है।

१- गौरवाफटति ८५ से ९० तक पृ० ६१, ६२

२- उठरत्नावली ४।१-३

३- उ० सं० च० २०६ त

४- सिद्धसिद्धान्त फटति २।२६

‘गौरक्षा शतकम्’ में समाधि का विवेचन गौरक्षा पद्धति के मुख्य उपपन्न है।

योगिक समाधि

‘छाया नाड़ी’ को बहुत विग्रही और फिंला नाड़ी को रौद्रात्मिका कहते हैं। ये दोनों नाड़ियाँ काल स्वरूप दिताती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ जब सम गति से चलती हैं, तब हुचुम्मा नाड़ी में कुण्डलिनी प्रवेश करती है। योगी लोग हुचुम्मा नाड़ी में प्रवेश करके महाप्रयाण का समय कहल देते हैं। इसलिए कहते हैं कि हुचुम्मा नाड़ी काल भदाक या कालरौद्र है। कुण्डलिनी हुचुम्मा नाड़ी में प्रवेश करके सहस्रार में पहुँच कर वहाँ जब शान्त होती है तब उस अवस्था को ‘समाधि’ कहते हैं।

योगी जब इस समाधि स्थिति में होते हैं तब उनके शरीर विकार रहित ब्रह्मत्व ब्रह्म, विपरिणाम, नश्यतीति विकारों से रहित होते हैं। उनके नल केलादि नहीं ब्रह्म, प्राण क्रिया बन्द होने से नाड़ी का चलना और हृदय का बाहुल्य प्रसरण बन्द हो जाता है। इसलिए ऐसे योगी को कालभदाक, ब्रह्म कालान्तक योगी कहते हैं।

समस्त प्रवृत्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सब प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शुद्ध हो जाने का नाम ही ‘समाधि’ है। जिस समाधि में मन सर्वथा निश्चल हो जाता है, जीवात्मा और परमात्मा का भेद समाप्त हो जाता है। वस्तुतः जीवात्मा का कर्तृन्द्रिय रूप में सर्वव्यापी परमात्मा में विलीन (स्थित) होना ही समाधि है। ‘समाधि’ अवस्था में हृदय की नाँठ लुप्त जाती है और चित्त का विस्तार होकर जीव की पूर्णता

१- गौरक्षा शतकम् पृ० ६७ से १०० तक

२- कल्याण- योगिक पृ० ३६६ अगस्त वर्ष १९३५

की प्राप्ति प्राप्ति होती है।"

उत्तरीयिका में समाधि-विवेक

"कर्म में समाधि के उत्तम (वैश्व) रूप का विवेक कहता हूँ, जो भूत (भय) का विचारण, भूत प्रज्ञा तथा (भुक्ति प्रदान करने वाला) ब्रह्म (स्वयम्) के आनन्द में (जीवात्मा की) प्रतिष्ठित कर देने वाला है।"

योगी स्वात्माराम के उत्तम समाधि रूप निरूपण का तात्पर्य राजयोग समाधि है, जिससे द्वारा कैवल्य फल की प्राप्ति होती है। भूतभूत का वाक्य यह है कि इस उत्तम समाधि-रूप से बाधक कर्म बाधता है तब शरीर का त्याग करता है, वह ब्रह्म में प्राण को रोक लेता है। तत्त्वज्ञान का उभय धीरे वाक्ता के साथ वे जीवभुक्ति रूप भूत को प्राप्ति हो जाती है। "ब्रह्मण्यर्क परम्" का वाक्य यह है कि प्रारब्ध कर्म का नाश होती ही योग और ब्रह्म में एकात्मता स्थापित हो जाती है तथा विवेक-भुक्ति की विधि होती है। यही स्वस्वावस्थान है, जो ब्रह्मण्यर्क प्रमाण है।

ह० प्र० में समाधि के फल

"राजयोग समाधि, उन्मनी, फीमनी, अमरत्व, तय, तत्त्व, भूतभूत, परमफल, कर्मल, अज्ञ, निरात्मक, निर्जन, जीवभुक्ति

१- भिषीदुदयान्धिरिहवन्ती अर्चिताः ।

योगीन्दी वास्य कर्माणि तस्मिन् भूते परावरी ॥

- योगशिलीपनिषद् ७४५

२- ह० प्रदीपिका

३- योगशास्त्री उद्योग विवेकानंद ५० ११७

सत्ता, तुर्या (अवस्था) समाधि के फल है^१ ।

उ० प्र० में समाधि लक्षण

जिस तरह पानी में पैदा नामक स्थिति पर विहीन (नाकार) हो जाता है, उसी तरह वात्मा और मन की सत्ता होने पर मन वात्माकार हो जाता है, यह ऐक्य ' समाधि ' है । यह प्राण जीण (हृत्क सिद्ध) होने पर प्राण और मन की यह समरत्ता-तल्लीनता ही समाधि कही जाती है। इस बीवात्मा और परमात्मा का समरस्य होने पर समस्त स्वरूप नष्ट हो जाते हैं, यही समाधि है ।

जहाँ दृष्टि का लय होता है, वहाँ (प्रेमी वादि) भूत और प्राणियों की एकात्म - शाश्वत सक्ति-वविषा और विषा दोनों अवस्था (प्रस) में लीन हो जाती है , यही लय (समाधि) कहा जाता है , पर इस लय का लक्षण क्या है ? विषयों (शब्दादि) की विस्मृति और वासनाओं का पुनः न उठना- जैसे जन्मों के वित्तगत विषयों के संस्कारों के जीण होने की अवस्था (विषय विस्मृति) ही लय (समाधि) है ।^२

उ० प्र० में समाधि प्रवास का उद्देश

स्वात्पाराय का कर्म है कि राजयोग का महात्म्य तत्त्वतः पुरा पुरा कोई भी नहीं जानता है। राजयोग का प्रभाव है ज्ञान (स्वस्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञाना साक्षात्कार) सुखित (विषय सुखित) स्थिति (निर्विकार स्वरूप में स्थितिरपिणी जीवन्मुक्ति) और सिद्धि (वणि-मादि समस्त योगिक सिद्धियों की प्राप्ति) । इनकी प्राप्ति गुरु के वचन (जु-

१- उ० प्र० ४। ३, ४

२- , ४। ५-७

३- , ४। ३३, ३४

की) से ही होती है।

“ विषयों का त्याग बढ़ा ही रहित है, तत्त्व-
दर्शन- वास्तव ज्ञान दुर्लभ है तथा संन्यास-वास्था की प्राप्ति दुर्लभ है। जब तक समुद्र-
की कृपा नहीं होती, सब एक ही एक ही दुर्लभ है।

ब्रह्म में वात्मा और वात्मा ब्रह्म सब है- क्योंकि
यह सब ब्रह्म है- ऐसा विचार करते हुए (साधकों) अन्य किसी भी पदार्थ
का चिन्तन नहीं करना चाहिए- बस ब्रह्मात्मि की साधना करना चाहिए ।

“ जीव (छिद्र, स्वस्तिक) वातनी (के अन्तर्गत)
है , मुख्य प्राणायाम है तथा जीव प्रकार के मुद्रादि बन्धनों से मुक्तिलिनी पदा-
रहित के वातनी पर प्राण (वायु) मुख्य (ब्रह्म) में जीव ही जाता है ।

शक्ति-बीज (मुक्तिलिनी-वातनी) होने पर
तथा समस्त ऊर्जा से मुक्ति होने पर योगी की संन्यास-वास्था की प्राप्ति स्वयं ही
जाती है। जब प्राण मुक्तिलिनी में प्रवेशित होता है और मन मुख्य ब्रह्म में वि-
हीन हो जाता है, यह योग का ज्ञान अभी समस्त ऊर्जा को निर्मुक्त कर देता है।

अन्दर भी मुख्य ही, बाहर भी मुख्य ही,
यदि तरह वातनी में स्थित वह बाहर- भीतर से मुख्य होता है पर एक ही
मुख्य - पदार्थ यदि तरह अन्दर बाहर सब से परिपूर्ण रहता है, उसी तरह समाधि
में स्थित योगी बाहर-अन्दर सब से जीव प्रीति रहता है।^{२५)}

(समाधि द्वारा वास्तविक- सच्चिदानन्द
स्वरूप की प्राप्ति के उपायों में प्रसूत साधन) मुक्तिलिनी विना मद- सु-वेदन
में प्रसूत स्थान है, क्योंकि मुक्तिलिनी अपना प्राण उसी में प्रविष्ट होकर ब्रह्म

को प्राप्त होती है) कुण्डलिनी , चन्द्रमा से उत्पन्न होने वाली धुआ, मनो-
न्मनी अवस्था , चिच्छक्ति को (योगीन्द्र स्वात्मराम द्वारा) नमस्कार
समर्पित है ।^१

छ० प्र० में समाधिस्थ योगी का उत्प्रेत

(नाम के द्वारा उन्मनी) समाधि में अवस्थित
योगी को काल (मृत्यु) के द्वारा मरित होने का भय नहीं रहता, किसी भी
प्रकार के दुर्भाग्य कर्म के फल से वह बाधित नहीं होता । न उसे (तन्त्र मन्त्रादि
से) बलीभूत हो किया जा सकता है।

समाधि से मुक्त योगी को इन्द्रिय विषय गन्ध
(सुगन्ध- दुर्गन्ध), रस (मधुर, वन्त, कटु, तिक्त, कषाय और लवण) रूप
(शुक्ल, पीत, नील, हरित, लोहित, कफित, स्पर्श (शीतोष्ण) , शब्द (वाक्प
वोर वाचर) तथा ब्रह्म पराये का ज्ञान नहीं रहता है ।^२

छठयोग से राजयोग की सिद्धि का उत्प्रेत

(बाधन, दुष्मक, प्राणायाम, मुद्राबन्धादि)
छठ और (नादानुसन्धान आत्मवी मुद्रादि रूप) तन्त्र के सभी उपाय मन के समस्त
चित्तवृत्तिनिरोधक सत्य राजयोग की सिद्धि के लिए ही प्रवृत्त हैं। राजयोग में
योगी मृत्यु- वंश करता है- मृत्यु को अपनी इच्छा के अधीन कर दीर्घ जीवन
प्राप्त करता है।

तत्त्व (चित्त) ही बीज है, छठ (प्राण-
वपन की लक्ष्मी) ही बीज (से की मिट्टी) है और उदासीनता (परम-

१- छ० प्र० ४। ६४

२- , , ४। १०८ से १०९ तक

वैराग्य) ही फल है, इन्हीं तीनों से उन्मी (कस्या) सभी कल्याण (समस्त सिद्धियों को प्राप्त कराने वाली तथा इच्छाओं की पूर्ति कराने वाली) उत्पन्न जाकास्ति होती है ।

उन्मी कस्या से योगी संत, हुन्दुभी बादि का नाद नहीं हुनता है और उसका शरीर निश्चय काष्ठजत् (रंता हुन्य) ही जाता है। सभी कस्या में योगी पात्र, स्वप्न, सुषुप्ति मूर्च्छा और मरण) सभी कस्याओं से रहित होता है। समस्त चिन्ताओं से विवर्जित होकर (प्राण ब्रह्म में लीन कर) मुक्त के समान ही जाता है। निःसन्देह ऐसा योगी मुक्त होता है। (ऐसा स्वात्मनाराम का फल है ।)

जिस योगी का स्मृति-विस्मृति से रहित चित्त न (तामस- राजस गुण से बाध्य होने से) मुक्त रहता है और (सात्त्विक गुण से सम्पन्न रहने से, इन्द्रिय विषय में बाधित के कारण में) न बाधता है, तथा न निष्क्रिय रहता है न सक्रिय रहता है, वह (समाधित्य योगी) मुक्त होता है ।

आत्मज्ञान पर स्वात्मनाराम का फल

जब तक सुषुप्ता नाड़ी (मध्यमार्ग) से प्राप्ति प्राण ब्रह्म में प्रविष्ट नहीं हो जाता, स्थिर नहीं हो जाता, जब तक वह तरह प्राण के स्थिर हो जाने पर विन्दु वृद्ध नहीं हो जाता है, जब तक ध्यान में स्वाभाविक (परमात्मा) अव्यक्त वृत्ति से तत्त्व की प्राप्ति- परमेश्वर वाचात्कार नहीं हो जाता , जब तक आत्म ज्ञान का फल केवल दम्भापूर्ण , निम्न प्राप्ति है- कौरा फल है ।

१- पृ० ४११०३ से १०४

२- .. ४१११०, ११४

पैरुण्ड संक्षिप्ता में समाधि उल्लेख

पै० सं० के अनुसार समाधि की वर्णनायता

(पैरुण्ड करते हैं) " हे चण्ड , समाधि सबसे बड़ा योग है। कई भाग्योदय होने पर वह गुरु भक्ति एवं उनकी कृपा से ही प्राप्य है। विद्या की प्रीति, स्वगुरु की प्रीति और वात्मा की प्रीति एवं मन का प्रबोध जिसको दिन-दिन बढ़ता है, वही योगी समाधि योग साधन के बन्धन का अधिकारी होता है। "

पै० सं० में समाधि प्रयास

" मन को घट (शरीर) से पृथक् करते हुए- यह विचारधारा बनाकर कि इस नाखवान् शरीर से मन पृथक् तत्त्व है, ऐसा मानकर परमात्मा में नियोजित कर ऐसा करके योगी मुक्त हो जाता है। मैं ब्रह्म है भिन्न नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, शोक मुक्त नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त स्वभाव वाचा हूँ। "

पै० सं० में दृष्टयोग समाधि भेदों का वर्णन एवं सिद्धियों के उपाय

" पैरुण्ड सं० के अनुसार समाधि दः प्रकार की है- ध्यानयोग, नादयोग, रसानन्द योग, सत्यसिद्ध योग, भक्ति योग एवं राज-योग समाधियाँ हैं। शान्मयी मुद्रा है ध्यान योग की, तैवरी है नादयोग की, प्राप्तरि है रसानन्द की, योनिमुद्रा है सत्य योग की, फलोपवर्ण है भक्ति योग

१- पै० सं० अ० १, २

२- , , अ० ३, ४

की एवं कुम्भक है राजयोग समाधि सिद्ध होती है।^१

ध्यानयोग समाधि

‘साम्बरी मुद्रा (ध्यान) के द्वारा प्रथम वात्म-प्रत्यक्षा करे, फिर विन्दुमय ब्रह्म का प्रत्यक्षा करता हुआ, विन्दु में मन को नियोजित करे। तत्पश्चात् गस्तक (सङ्घार) में विद्यमान ब्रह्मलोकमय वाकाश के मध्य में वात्मा को लावे, फिर उस वाकाश को जीव में लय करे, जीव को परमात्मा में लय करे, इसी नित्यानन्द मुक्त हो जाए। इसे ही ध्यान योग समाधि कहते हैं।^२

नाद योग समाधि

‘सैवरी मुद्रा का ध्यान करते हुए बिम्बा को ऊपर की ओर उलटकर व्योमकुल में लगावे। इसी साधारण क्रिया से उलटकर जो समाधि सिद्ध होती है वह नाद योग समाधि है।^३

रसानन्द योग समाधि

‘प्राणरी (प्राणायाम) करके शनैः शनैः स्वास का रसन करे, इस क्रिया को करते समय शरीर के अन्दर प्रसर समान गुंजार न होता है। जहाँ यह नाद हो वहीं पर मन लगावे, इसे रसानन्द योग समाधि कहते हैं। इसके द्वारा ‘सौख्य’ ज्ञान होकर योगी खदेव वानन्द में रहता है।^४

लय सिद्धि योग समाधि

योनि-मुद्रा करता हुआ योगी अपने में शक्ति-

१- पै० सं० अ ५-६

२- .. अ ७, ८

३- .. अ ६

४- .. अ १०, ११

भावना, परमात्मा में पुनर्जन की भावना करे। फिर यह भावना करे कि परमात्मा की शक्ति और पुनर्जन रूप में विहार हो रहा है। आनन्दमय स्वरूप प्राप्त कर ब्रह्म में "मैं वही ब्रह्म हूँ" ऐसा चिन्तन करे, इसे समाधि सिद्धि कहते हैं। इसे तत्त्वसिद्धि योग समाधि कहते हैं।^१

भक्तियोग समाधि

"जमी हृदय में परम वास्तवपूर्ण भक्ति योग से दृष्ट देव के स्वरूप का चिन्तन करे, इससे आनन्द के लहरे बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान होता है। इससे मन वहीत और एकाग्र हो जाता है। ब्रह्मा-न्नात्कार होता है। इसे भक्तियोग समाधि कहते हैं।"^२

राजयोग समाधि

मनोमुक्तों के द्वारा के ब्रह्मावस्था से मन को एकाग्र करके ब्रह्म में एकाग्र करे। इस प्रकार परमात्मा के योग से राजयोग समाधि होती है।^३

पेरण्ड संज्ञिता में पेरण्ड समाधि योग माहात्म्य

"(पेरण्ड कहते हैं) है पण्ड। इस प्रकार की सुखिता देने वाली समाधि का उल्लेख किया है। वह राजयोग समाधि है। उन्मत्ती अवस्था होने पर जो उपलब्धियाँ हों, वे सब समाधि ही की कारण हैं।

जल में विष्णु, स्थल में विष्णु, पर्वत-शिखर में विष्णु और ज्वालामाला में विष्णु-यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है। सुपर,

१- पै० सं० अ० १२-१३

२- " अ० १४-१५

३- " अ० १६

तेज वादि बीज, जन्तु, वृक्ष, पक्ष, उता, वृण, फल ये सब ब्रह्म रूप हैं। योगी सबको वात्मा में तथा सबमें वात्मा को देखता है। शरीर में केवल्य सनातन वात्मा है। शरीर है भिन्न वात्मा को जानकर वीतराग वासना रहित होता है।

जपों देह में, पुत्र बान्धवादि धनादि में निर्मम-
त्व होकर समाधि को प्राप्त करे। इस प्रकार सब संकल्पों से रहित समाधि होती
है। समाप्ता- यह तत्त्व हिम से कहा हुआ संन्योप में मुक्ति का लक्षण कहा गया।
हे चण्ड। यह दुर्लभ समाधि भी तुम्हें बताया है जिसे जानकर फिर पुनर्वन्ध नहीं
होता है।^१

नाद की उत्पत्ति

‘विदाकाश में “स्कोऽहं बहुस्याम्” रूप
स्फन्द हुआ। स्फन्द से नाद उत्पन्न हुआ। नाद उत्पन्न होने के लिए गति की
उत्पन्न होना पड़ता है। विद्युत्प्रकाश उत्पन्न होने के समय विद्युत्कण विसर्पण
वेग से घूमा करते हैं। उनकी गति का वेग यदि नियन्त्रित हो तो वे अणुत्त्व को
प्राप्त होती हैं। पञ्च गति से और अरुण गति से घूमने वाले विद्युत्कण ही शब्द
रूप गति हैं। यह शब्द सामान्य मनुष्य के अवयवोंन्द्रिय को गीचर नहीं होता।
तथापि जिसकी दिव्य अवयव शक्ति वाग्रत हो चुकी है वे उस शब्द को सुनते हैं।
यही क्यों हमारी यह ब्रह्म माता जिस विशिष्ट गति से जपों चारों ओर तथा
सूर्य के चारों ओर घूमती है उस गति से उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म ध्वनियाँ भी
उस पुरुष को अनुभूत होती हैं, जिसकी दिव्य अवयव शक्ति जाग चुकी है।^२

ऐसी ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं। एक वाक्ता
ध्वनि और दूसरी वाक्ता ध्वनि। यों ही उत्पन्न होने वाली वाक्ता ध्वनि है

१- पै० सं० अ० १७ से २३ तक

२- कल्याण योग विशेषांक पृ० ३६१, ३६२ वर्ण वाक्ता, १६३५

कौहें व्योत्पत्ति नहीं होती। काष्ठ ध्वनि का व्यं है 'हौं' ध्वनि। यह ध्वनि फलते व्यक्त रूप से वातावरण में फौटुगुत हुए, अन्तर काष्ठ चू में जाकर वषणोन्मिय का पीतक हुए, परन्तु मात्रोत्पत्ति काष्ठ चू पर व्यक्त नहीं है।"

"भगवान् संकराचार्य ने मन के लय का सर्वोत्तम साधन नादानुसन्धान, वषो 'योगसारावली' ग्रन्थ में बताया है- 'योग-शास्त्र के अत्यन्त भगवान् शिवजी ने मन के लय होने के लय लय साधन बताया है, उन सबमें नादानुसन्धान सुलभ और श्रेष्ठ है। है नादानुसन्धान। बाफो नमस्कार है, बाप परमपद में स्थित कराते हैं, बाफो ही प्रसाद से मेरा प्राण-वायु और मन ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जायेंगे। योग साम्राज्य में स्थित होने की लय ही ही सब विन्ताओं की त्याग साधन ही एकग्र मन से काष्ठ नादों की सुनी।"

नाद के प्रकट करने का सुलभ साधन

हर मनुष्य की देह में लगभग साढ़े तीन कोटि (3,40,000,00) रीम हैं। जब साधक साढ़े तीन कोटि परमात्मा के नाम का वष जगुरु मार्ग से कर लेता है तब नाद प्रकट हो जाता है। यह ही जिनकी वायु प्रकृति है उनके लिए है और जिनकी पित्त प्रकृति होती है, उनकी तो नादियां बली हुई होने से सा कोटि (1,24,000,00) वष जगुरु मार्ग से करने से ही नाद प्रकट हो जाता है। नाद दस प्रकार का है, बध्यास करते 2 जब दखी नाद जो बादल की गर्जना के तुल्य है, प्रकट हो जब नी नादों की होकर दखी नाद ही सुनी रहना चाहिए, दखी नाद की पक्ष कस्था में प्राणवायु और मन ये दोनों ही लय हो जायेंगे। मन पक्ष का लय होने पर शेष में ब्रह्म पक्ष ही है। ब्रह्म नादी जो सुष्ण्ण है, उसके भीतर प्राण वायु का

प्रसन्न होने पर नाद का श्रवण होना वारम्भ होता है, ओं: ओं: नाद की श्रुति के बस से दक्षिण कान से सुनी जाना चाहिये । ब्रह्मास की पञ्चावस्था में फल यह होगा कि कृष्णस्ति-शक्ति बाग्रत होकर ब्रह्मज्ञान-मो कर देगी । अन्त में कृष्णस्ति शक्ति भी ब्रह्म में लय हो जायेगी । जीव-वशा नष्ट होकर ब्रह्म फल प्राप्ति होगा । कृष्णस्ति जागकर ब्रह्म श्रुति, विष्णु श्रुति और रुद्र श्रुति को भेद करके तीन प्रकार के चमत्कार दिखाती है। जब तक कृष्णस्ति शक्ति बाग्रत नहीं होती, तब तक मनुष्यों का ज्ञान प्रमात्मक और संशय युक्त ही रहता है ।^१

नाद का कर्म है शब्द, वाचा, ध्वनि, मूल । प्रकृति से वाकाशपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड में शब्द भरा है। कल्प के वारम्भ में प्राण और वाकाश के संघर्षसे वात प्रत्याघात से जो शब्द प्रादुर्भूत हुआ, उसी को नाद कहते हैं । इस नाद की प्रतिध्वनि से परमाणु उत्पन्न हुए और इन परमाणुओं से दृश्यमान जगत् बना है। कल्प के अन्त में इसी क्रम के विपरीत घटन से उल्टी गति से प्रलय हो जायेगा । संसार में नाद विन्दु का विवाद बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है ।

प्रथम नाद उत्पन्न हुआ, इसके पश्चात् समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए । विन्दु ब्रह्माकाश को कहते हैं । फिर कहीं तो वाकाश का नाम विन्दु है । कुछ ऐसे लोग भी हैं जो विन्दु का कर्म वीर्य लगाकर सिद्ध करना चाहते हैं कि संसार का कारण विन्दु है। शिवर लोक से प्रवित होने वाले ब्रह्मा को भी विन्दु कहते हैं । इन दोनों मतों के लोग भूल में हैं । ब्रह्मा और वीर्य के दो रूप हैं- सूक्ष्म और घृक्ष्म । और इन दोनों के घृक्ष्म रूप की ही वास्तव में विन्दु कहा है । यह घृक्ष्म तत्त्व नाद से उत्पन्न हुआ है। नाद दो प्रकार का है, सूक्ष्म और घृक्ष्म । मैत्री सम्प्रति में नाद प्रधान है, क्योंकि इसके बिना विन्दु

का अस्तित्व ही नहीं है। नाद की प्राण कहे हैं। इसका नाम भी है।
 शरीर का संवाहक का कारण प्राण है।

कुण्डलिनी और नाद का स्वभाव

कामण्ड - सुष्टि की कुण्डलिनी की महाकुण्ड-
 लिनी कहे हैं। सम्पूर्ण कर्मा को भी चलाती है वह व्यक्त कुण्डलिनी है और
 व्यष्टि रूप में जीव की चलाने वाली व्यक्त कुण्डलिनी है। जो ब्रह्माण्ड में है जो
 पिण्ड में है, यह बात प्रसिद्ध ही है। 'कुण्डले वस्या स्त' इति कुण्डलिनी ।
 'कुण्डले' कर्मा की कुण्डल- स्था और फिला। बायीं ओर से बहने वाली
 नाड़ी है वह स्था और दायीं ओर बहने वाली फिला। इन दो नाड़ियों के
 बीच में बिछा प्रसार है वह है सुषुम्ना नाड़ी। यह सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत
 और भी नाड़ियाँ हैं, जिनमें एक विविजनी नाम की नाड़ी है। उही विविजनी
 नाड़ी से होकर कुण्डलिनी शक्ति का रास्ता है। इसलिए यह सुषुम्ना नाड़ी
 के अन्तर्गत और भी नाड़ियाँ हैं, जो दोनों ओर से बहने वाली उपर्युक्त दो नाड़ियाँ
 ही कहते हैं।

नाद के भेद

कुण्डलिनी शक्ति के व्यक्त होने के साथ वेग
 उत्पन्न होता है। उसी को फला स्कोट होता है, उसकी नाद कहे हैं।
 नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप महा बिन्दु। नाद के भी
 तीन भेद हैं- महानाद, नादान्त और निरोधिनी। बिन्दु के भी तीन भेद
 हैं- इन्द्रा ज्ञान और क्रिया, सूर्य, चन्द्र और अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और शिव।
 जीव- सुष्टि में उत्पन्न होने वाला जो नाद है वही जंकार है, उसी को शब्द

१- योगवाणी- योग विवेकानंद ५० १६ जनवरी १९८१

२-

प्रसूत होती हैं। जंकार से वायन (५२) मातृकार उत्पन्न हुई। उनमें पचास (५०) वतारमय हैं, ज्ञयावन्ती प्रकाश रूप और वायन्ती प्रकाश का प्रकाश है। यह वायन्ती माना नहीं है जिसे साराणी जीवन कता करती हैं। उत्पन्न पचास मातृकार तीस- विलीन रूप से एक ही (१००) होती हैं। ये ही ही कुण्डल हैं। इन कुण्डलों की धारणा फिर हुई मातृकावती कुण्डलिनी है। इस कुण्डलिनी शक्ति से वैश्वव्यापी जीव देहन्द्रियादि सुक्ष्म जीव रूप धारण करती हुए प्राण शक्ति की धारा फिर स्थूल शरीर कायु बन्धन कोश का स्वामी होता है।

इस जीव की जीवत्न की जैना सत्कार क-
से ज्ञात में कायु कुण्ड-क में जाने पर होती है। सत्कार क में व्यक्त नाद
है, वही वाता क में जाकर जंकार रूप से व्यक्त होता है। इस जंकार से
उत्पन्न होने वाली पचास मातृकावती को व्यक्त स्थिति का स्थान सत्कार
क है। इस स्थान को बहुत स्थान करती हैं। यही शिव शक्ति का स्थान है।
जी शिव शक्ति कर्नारीस्वर महेश्वर है- शक्ति व्यक्त और शिव और व्यक्त
है। इस बहुत स्थान से उत्पन्न होने वाली जी जी मातृकार जिस जिस स्थान
में व्यक्त हुई उन उन मातृकावती और उनके उन उन स्थानों की तीस-विलीन रूप
से जीव दर्शाती हैं -

उन मातृकावती के तीस-विलीन स्तीक निम्न

हैं - तीस-स्तीक

वाधार नाद सूत्रेण व्यापिद् मणियणीन इमात् ।

कुसुं व क्ताविन्दुः उन्मना समता तपा ॥

व्यापिता शक्ति नादान्तनादरीधार्थवन्त्रिका ।

विन्दुराजा तत्त्वैर्क तन्त्रिकापविशुद्धिका ॥

एवं कर्ता ज्ञातं है मणिपूर तपे न ।

स्वाधिष्ठानाधारके व विपुलीकुलीपा ॥

कुलाय वेति स्थानानां पंचविंशति संख्या ॥

विहीन सहीन

कुशाग्र कुसुम व विन्दुवाधार संकम् ।
 स्वाधिष्ठानं पणिप्रमन्तराक्षरं तथा ॥
 क्वाकृतं वान्तरालं विन्दुद्विषाय सन्धिका ।
 क्वाकृतालाता व विन्दुर्ध्वम्बरा व रौहिनी ॥
 नादी नादान्तराक्षरं व्याफिका समता तथा ।
 उन्मत्ता व मन्ताविन्दुरक्षरं व विहीनः ॥

उपलब्ध वाक्या मं प्रमन्त्र मं " ह " " क "

(सं) " वी० " मन्त्र के दो बीज दिये हैं । इनके अन्तर्गत जंकार बीज हैं कहे स्वरोत्पत्ति बीज व्यंजनीत्पत्ति हुए ।

क्षं

क्षं	कुसुम	सं
क्षं	मन्ताविन्दु	हं
क्षं	उन्मत्ता	सं
क्षं	समता	क्षं
क्षं	व्याफिका	सं
क्षं	सन्धिका	क्षं
क्षं	नादान्तरा	सं
क्षं	नाद	हं
क्षं	रौहिनी	क्षं
क्षं	ध्वम्बरा	मं
क्षं	विन्दु	मं
क्षं	वाक्ता	क्षं
क्षं	क्वाकृत	क्षं
क्षं	सन्धिका	क्षं

व	विहृदि	न
वः	वीरार	ध
वं	वास्त	द
वं	वन्तारार	ध
वं	वन्तारार	त
वं	मणिपुर	ण
वं	स्वाधिष्ठान	द
वं	बाधार	ह
वं	विष्णु	ठ
वं	बृहत् फम्	ट
क	कुला	आ १

उपनिषदों में नाद का स्वरूप

नादविन्दूपनिषद् में नाद विवेक

सिद्धासन पर स्थित होकर वेंज्यापी छुटा ला कर दक्षिण कान के अन्तर्गत नाद का श्रवण करे। इसका अन्यास करने पर नाना प्रकार के नादों का श्रवण करती हुई सूक्ष्म से सूक्ष्म नाद की सुने।

वारम्भ में नाद में समुद्र, भरी, फरने की आवाज होती है, मध्य में मर्दल एवं घण्टा और अन्त में तुरपुर, बंशी, वीणा एवं प्रभर की गुंजार के समान नाना प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म नादों की सुनें। समस्त

१- कल्याण- बीनाके पु० ३८८, ३८९ वर्ष अगस्त, १९३५

चिन्ताओं को त्याग कर तथा समस्त चेष्टाओं से रहित होकर चित्त को विहीन कर नाद का अनुसन्धान करे ।^१

ध्यानविन्दुपनिषद् में नाद

“वीणा के समान ध्वनि करने वाला नाद कूर्त नाद है। तंत्र के समान ध्वनि करने वाला मध्यम नाद है। प्रसरन्त्र में ध्वनि करने वाले नाद को माधुर नाद की संज्ञा दी है, और सहरार के मध्य में जब नाद (ध्वनि करता है) क्षुब्ध द्वार पर स्थित होता है।^२

योगब्रह्मसूत्र उपनिषद् में नाद

“सहरार में प्राण के मिलन से ध्वनि उत्पन्न होती है । यह घण्टादि की ध्वनि जैसी है । इससे योगी नादाखण्ड हो जाता है ।^३

योगशिलोपनिषद् में नाद

“नाद की महत्ता को स्वीकार करते हुए उल्लेख किया है कि नाद से महत्तर न कोई मंत्र, देव और वात्मा ही है। नादानुसन्धान से बढ़कर कोई पूजा नहीं है । उसकी वृत्ति से परमानन्द प्राप्त होता है। वस्तु सिद्धियों की लक्षा बातों की सर्वत्र इसे गोपनीय रहना चाहिए ।^४

नादानुसन्धान का उल्लेख वराहीपनिषद् में भी उपलब्ध होता है ।^५

१- नादविन्दुपनिषद् ३१ से ३६ एवं ४१

२- ध्यानविन्दुपनिषद् १०२ व १०३

३- योगब्रह्मसूत्रपनिषद् ११५

४- योगशिलोपनिषद् २। २०-२१

५- वराहीपनिषद् ५० ८३

उठरनावली में नाद

योग छाट होने की इच्छावालों को समस्त चिन्ताओं का परित्याग करके साधन मन से नाद का अनुसन्धान करना चाहिए। लक्ष्मी बग्नि की फलस्वी है और बग्नि के साथ बल्कर समावर्जित हो जाती है। इसी प्रकार चित्त को नाद पर लगाव करते हुए (ब्रह्म) में समावर्जित करना चाहिए। श्रीनिवास भट्ट ने श्री स्वात्माराम के अनुसार नाद की वारम्भ, घट परिवर्ध तथा निष्पत्ति अवस्थाओं का उल्लेख उठ रत्नावली में किया।

ह० सं० चं० में श्री सुन्दर देव ने नाद का कथन विस्तृत विवेक नाद की वारम्भावस्था, घटावस्था, परिवर्धनावस्था तथा निष्पत्ति अवस्थाओं पर ' ब्रह्म संज्ञिता ', ' स्वरोदय ' एवं ' ह० प्र० ' का उद्घरण करते हुए किया है कि अन्य ग्रन्थों में इतना विस्तृत रूप उपलब्ध नहीं है।

ह० प्र० में नाद विवेक

' स्वात्माराम ने उल्लेख किया है कि नाद उपासना का मार्ग गौरक्षनाथ द्वारा सर्व साधारण (जो ज्ञान सम्पन्न नहीं है) के लिए निरूपण किया है (जिसका लाभ उसी वर्ग के लोगों को मिले) ।

स्वात्माराम ने उल्लेख किया है कि श्री वादिनाथ (शिव जी) ने सदा शास्त्र (चित्त के) तन्त्र के सौष्ठव साधनों का उपास किया है उनमें (श्री गौरक्षनाथ द्वारा उपदिष्ट) त्यों (की साधना) का सुत्तम साधन नादानुसन्धान ही स्वीकार करते हैं ।

नादानुसन्धान की प्रक्रिया

' सुभासन से स्थित होकर योगी को शाम्भवी

१- ह० प्र० ४। १४-१७

२- ह० सं० चं० २०८ क, २०८ घ

३- ह० प्र० ४। ६५, ६६

हृत्ता के द्वारा कर्ण स्थित है बाहिरी कान है नाद का वर्णन करना चाहिए ।

वीणा का, नेत्र, नासाग्रों और मुख का (केशिकाएँ हैं) निरीप करना चाहिए । उल्टे (प्राणायाम के द्वारा) पद स्थित हुए निर्दोष सुष्टुता मार्ग में नाद (अविव्यक्त) सुनाई देता है ।^१

ह० प्र० में नाद की चार अवस्थाएँ

समस्त योगी में नाद की चार अवस्थाएँ- वारम्भ, षट्, परिक्रम और निष्पत्ति हैं^२ ।

नाद की वारम्भावस्था के लक्षण

(नाद- वायुना की वारम्भावस्था में सुष्टुता में प्राण के लय से) ब्रह्म ब्रम्बि का भेदन होता है, विभिन्न प्रकार की ध्वनि क्लृप्त ध्वनिक (घुंघणाएँ के फाँकार के समान) देह में सुनाई देती है, जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है ।

वारम्भ (अवस्था) में योगी का शरीर दिव्य, रूप-सामान्य और ऐश्वर्यपूर्ण हो जाता है, दिव्य गन्ध है परिपूर्ण और निरीप हो जाता है, उल्टे सुषुप्ताकार में प्राणवायु अच्छी तरह पर उठती है- मुख्य आनन्द से पूर्ण हो जाता है ।^३

नाद की षट्त्वस्था के लक्षण

द्वितीय षट्- अवस्था में प्राण वायु (अपान,

१- ह० प्र० ४। ६७

२- ह० प्र० ४। ६६

३- .. ४। ७०-७१

नाद और विन्दु से संयुक्त होकर) मध्य (विशुद्ध-क, कण्ठ स्थान) में प्रविष्ट होती है। (इधरे) योगी वायुन में वृद्ध होता है और (हम तावण्यमय होकर) वैव-तुल्य हो जाता है। (ब्रह्म-ग्रन्थि का हृदय स्थान में भेदन होने के बाद कण्ठ स्थान विशुद्ध क में) विष्णु ग्रन्थि का भेदन होने पर अति सूक्ष्म (वाकार) में कण्ठ प्रवेश परमानन्द- ब्रह्मानन्द सूक्ष्म विमर्द (वायु विरिज) और मेरी का शब्द सुनायी पड़ता है।

नाद की परिव्यावस्था

तीसरी परिचय- अवस्था में (महाशून्य वाकार वाताच्छ में) मर्त की ध्वनि सुनायी पड़ती है, तब प्राण समस्त सिद्धियों के वायव्य स्थान महाशून्य (भीलों के मध्य के स्थान) में प्रविष्ट होता है। योगी विद्वानन्द मोक्षानन्द से परे होकर- नाद विजयान्तःकरण वृत्ति जन्य सुप्त से ऊपर उठकर अपने स्वयानन्दजन्य स्वरूप में स्थित हो जाता है, वह दीप्त, दुःख, बरा, व्याधि, लुब्धा, निद्रा से रहित हो जाता है।^२

नाद की निष्पत्ति अवस्था

(महाशून्य- वाताच्छ में स्थित) रुद्रग्रन्थि का भेदन कर प्राण जब खंपीठ (भीलों के मध्य के स्थान) में स्थित होता है, तब वही निष्पत्ति अवस्था है, जिसमें वैष्णु शब्द और वीणा का अव्यक्त शब्द-नाद होता है। तब चित्त के स्फाट होने पर राजयोग होता है, तब योगी मुष्टि और पंखार करने की सामर्थ्य से युक्त होकर ईश्वर के तुल्य हो जाता है।

नाद के अनुसन्धान से समाधि में तीन योगियों के हृदय में (वायु-वायु में) वानन्द बढ़ता रहता है, वह वानन्द का वर्णन

१- पृ० प्र० ४१७२, ७३

२- .. ४१७२, ७४

काम्यो है नहीं ही उक्ता, जो एक नाम भी गुरुनाथ ही जानी है- यह नादा-
गुरुनाथ का वाच्य गुरु है जाना जाता है।

ह० प्र० में नाना नाद वर्णन

नादानुबन्धान की बारम्बार कथा में नाना प्रकार
(उलूह गर्जन, फल गर्जन, मेरी, लख बादि) की मरानु नाद सुनाओ पड़ी है,
ज्यों ज्यों ब्रह्माक्ष कृता जाता है, त्यों त्यों भुल्लभ है भुल्लभ लक्ष्मि सुनायी
पड़ी है।

(नाद के ब्रह्माक्ष काल में) फल उलूह, मेरु,
मेरी, कर्णर लक्ष्म, मय में फल, लल, लला और काल है उत्पन्न नाद (लक्ष्म)
और लक्ष्म में विविधता, पक्षी, कीणा और प्रपरी के सुभार के समान व्यवस्था
शरीर के लक्ष्म सुनायी पड़ी है।

मेरु, मेरी बादि लक्ष्मों के सुनि पर भी भुल्लभ
है भुल्लभ नाद का विस्तार करता बादि। मरानु नाद की छोड़कर भुल्लभ नाद में
और भुल्लभ नाद की त्याग कर मरानु नाद में लक्षण करने बादि फल की अन्य वि-
षयों में नहीं प्रवृत्ति करना बादि- फल की नाद में ही समाधिस्थ रहता बादि।

(फल) जिस किसी भी मरानु लक्ष्म भुल्लभ नाद
में स्थिर होता है, उही के साथ वह लक्ष्म की भाव्य ही जाता है। जिस तरह
(भुल्लभ के) मरानु (लक्ष्म) का पान करता हुआ प्रवर लक्ष्म की लक्ष्म नहीं
रहता, उही तरह नाद (भवण) में वाच्यता किता विषयों में लक्ष्म नहीं
रहता।

जिस तरह उत्पन्न लक्ष्मों की वन में विपरण

कही कल्प लोह है वह में लिया जाता है उसी प्रकार मन की संयमित करने में नाद ही उपाय है। नाद से मन स्थिर हो जाता है।

बाहरी बीर कन्दर की (इन्द्रियवन्ति विषया की) चिन्ता का परित्याग कर संयमित मन से राजयोग की प्राप्ति के लिए नाद का ही अनुत्थान करना चाहिए। ऐसा स्वात्माराम का मत है।

४० प्र० के अनुसार नाद का प्रभाव

‘मनसो जन्तरेण पुनः कीर्तयन्ति के लिए नाद प्राप्त है समान है- मन की चंचलता का नाद में लय होने से नाद ही जाता है। जिस तरह बालक पुनः का वध कर देता है, उसी तरह नाद से जन्तरेण पुनः स्वी मन का अस्तित्व उपाय कर देता है।

जिसे अक्षताला के दावापि की परिधि पीछे की बाहर जाना रोक्ता है, ठीक उसी तरह चंचल मन की नाद करुण- स्थिर कर देता है, इसलिए योगी को निरन्तर नाद का अनुत्थान करना चाहिए।

(स्वात्माराम मन की पारद के समान कालि हुए उल्लिख करते हैं) जिस तरह मधु- बाण से पारद की चंचलता स्थिर हो जाती है और उसे (पारद गुटिका का) तुल में रक्कर बाकाल में उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, ठीक उसी तरह नादानुत्थान से चंचल मन चंचलता को त्याग कर निरालस्य (शुन्य) अवस्था में लय की प्राप्ति कर लेता है।

नाद-जवण से जन्तरेण पुनः स्वी मन लय हुए हुकर स्फाट होकर स्थिर हो जाता है, और किसी हुपरी बीर नहीं दीक्षता

१- ४० प्र० ४।८४ से ६२ तक

२- ४० प्र० ४।६३

(क्योंकि उसकी वृत्ति नादाकारित हो जाती है) । ऐसा स्वात्माराम का मत है ।^१

काठ में बसायी बाग जिस तरह काठ के डुक (बस जाने) पर उधी में लीन हो जाती है, उसी तरह नाद में लय को प्राप्त चित्त (ब्रह्मरन्ध्र में) नाद के लीन होने पर उधी में घिलीन हो जाता है ।

षण्टा (शंख, मंज, फर्फर, दुन्दुभि) बाधि नाद में वाद्यत जीर स्थिर वन्तःकरण रुपी पुन का बध करना समी दुगम है, जब शरन्धान में (साधक की) प्रीणिता हो ।

ज्वाला शब्द की जो ध्वनि सुनायी पड़ती है, उधी (ध्वनि) के वन्तर्गत लय (स्वप्रकाश केान्य) विषयमान रहता है और उधी लय में मन लय को प्राप्त हो जाता है, संकल्पों ज्वाला वृत्तियों के शुन्य होकर समाकार हो जाता है।

जब तक शब्द- ज्वाला ध्वनि सुनायी पड़ती है, समी तक वाकाश की कल्पना होती है। (मन के साथ शब्द- नाद का लय होने पर) निःशब्दता ही परब्रह्म है, परमात्मा है । (यही स्वरूपावस्थान है) समस्त वृत्तियों का लय परमात्मा में हो जाता है।

जो कुछ नाद (ज्वाला ध्वनि) के रूप में सुना जाता है, वह सब कुछ शक्ति ही है, जिसमें तत्त्वों का वन्त हो जाता है, वही निराकार परमेश्वर है ।^२

निष्कर्ष

ह० प्र० में समाधि एवं नाद का उत्तम वर्णन

१- ह० प्र० ४।६४ से ६७

२- " ४।६८ से १०२

तथा धे० धं० में समाधि का उत्तेज समाप्त उपैत में उपलब्ध है ।

धे० प्र० में चौथे उपैत के प्रारम्भ करने से पूर्व नमस्कारात्मक श्लोक का उत्तेज किया है जबकि धे० धं० में समाधि को 'गुरु प्रसाद' उत्तेज किया है । धे० प्र० में मुद्रा, समाधि एवं नादों का उत्तेज इस उपैत में करते हुए स्वात्मनारायण ने उनका कोई क्रम नहीं रखा है। प्रारम्भ के श्लोकों में समाधि के पर्यायों का उत्तेज करते हुए मं० और वात्मा की स्वता (समाधि) का वर्णन किया है जबकि ध्यान, साम्नी, मुद्रा, उन्मनी मुद्रा तथा सेवरी का उत्तेज समाधि में किया है। यही नहीं नाद की प्रक्रिया, प्रारम्भ, षट्, परिचय, तथा निष्पत्ति अवस्थाओं का पितृणा देने के पश्चात् भी उपैत के अन्त में पुनः समाधि का उत्तेज है जो उपलब्ध नहीं है । स्वात्मनारायण ने समाधि प्रकरण में एक ही विषय वस्तु (मं०, वात्मा और परमात्मा) के लय करने के सम्बन्ध में) समाधि प्रकरण को भिन्न भिन्न श्लोकों के द्वारा उत्तेज कर ग्रन्थ का विस्तार मात्र किया है तथा किसी नये तथ्य को प्रकाशित करने में अवसर्य रहे हैं ।

धैर्य संलिता में एक ही विषय को इस प्रकार उत्तेज नहीं किया है तथा समाधियों के भिन्न भिन्न ४: प्रकारों का उत्तेज किया है ।

धे० प्र० में नाद की चार अवस्थाएं तथा नाना नाद उनके वर्णन की प्रक्रिया का उत्तेज विस्तारपूर्वक किया है जिससे योग साधक को इन अवस्थाओं से साधनान्तर्गत सहयोग मिल सकता है तथा अपनी साधना के

१- धे० प्र० ४।१

२- .. ४।३,४

३- .. ४।५ से ७

४- .. ४।१४, २५, ३५ से ४६ तक

५- धे० धं० अ ५, ६

स्तर की उच्च क्रम में ले जा सकता है। धेरण्ड संज्ञिता में नादों का विवेचन उपलब्ध नहीं है मात्र समाधि प्रकरण में लेवरी मुद्रा के बन्धन के द्वारा 'नाद योग - समाधि' का उल्लेख किया है जो नाद साधना के लिए पर्याप्त नहीं है, और नहीं नाना प्रकार के नादों का विस्तार से उल्लेख किया है, जबकि हठयोग - साधना का प्रमुख लक्ष्य नाना प्रकारों के नादों का भवण करने तथा निम्न स्तर से लेकर साधना की उच्च भूमि तक के नादों का उल्लेख हठयोग के अधिकांश ग्रन्थों में किया है। ये० सं० हठयोग की श्रियाओं का विस्तृत ग्रन्थ होते हुए भी नाद पर कम से कम प्रकाश डाला है।

धेरण्ड संज्ञिता में नादों का विवेचन उपलब्ध नहीं है मात्र समाधि प्रकरण में लेवरी मुद्रा के बन्धन के द्वारा 'नाद योग समाधि' का उल्लेख किया है जो नाद साधना के लिए पर्याप्त नहीं है और नहीं नाना प्रकार के नादों का विस्तार से उल्लेख किया है, जबकि हठयोग साधना का प्रमुख लक्ष्य नाना प्रकारों के नादों का भवण करने तथा निम्न स्तर से लेकर साधना की उच्च भूमि तक के नादों का उल्लेख हठयोग के अधिकांश ग्रन्थों में किया है।

ह० प्र० व ये० सं० दोनों ग्रन्थों के अन्तिम वर्ण में जीवात्मा का परमात्मा के साथ विलीनीकरण के विषय (समाधि) पर एक स्वर से सन्देश है, दोनों ग्रन्थकार एक सम्पूर्ण जगत् की ब्रह्मत्व स्वीकार करते हैं। ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। योगी पुरुष सबको वात्मा में तथा वात्मा में सबको देखता है।

१- ह० प्र० ४।८९ व ८४ से ८९ तक

२- ये० सं० अ१९

३- अन्तःशून्यो----- पूर्णाहुतम ज्ञाणवि ॥ ह० प्र० ४।५६

४- अति विष्णु----- विष्णुमय जगत् ॥ ये० सं० अ१८

ह० प्र० के चतुर्थ उपोक्त के अन्तिम श्लोक में योग साधक के लिए स्वीकृत कथन उपलब्ध है जो उनके लिए एक निष्कर्ष का कार्य करती है। इस कथन के आधार पर कौन साधक भ्रम में नहीं रह सकता । स्वात्माराम का कथन है कि जब तक प्राण वायु पुष्पुन्मा मार्ग से बहकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर नहीं होता तथा प्राणवायु के बृद्ध बन्धन से विन्दु स्थिर नहीं होता जब तक ध्यान में स्वाभाविक (परमात्मा) ध्याताकार वृत्ति से तत्त्व की प्राप्ति - परमेश्वर साक्षात्कार नहीं हो जाता, तब तक वात्म ज्ञान का कथन दम्भपूर्ण मिथ्या तथा प्रलापनात्र- शीरा कथन है। स्वात्माराम की उपर्युक्त परिभाषा योग साधक के मार्ग दर्शन में अत्यन्त सहायक सिद्ध है तथा किसी भी अवस्था में साधक प्रश्रित न होकर ठीक ठीक योगावद्ध होगा ।



१- वाचस्पेय प्रविवृति ----- दम्भमिथ्या प्रलापः ।।

- ह० प्र० ४।११४

स्वाध्याय

उपनिषद्

उपसंहार

बहुसन्धान के निष्कर्ष

हठयोग परम्परा का प्रायोगिक स्वरूप

प्रस्तुत करने के लिए हमने प्रधान रूप से स्वात्मपारान की हठप्रतीफिका तथा पैरुण्ड मुनि की मानी हुई प० सं० इन दो ग्रन्थों को चुन लिया था । इनके साथ साथ उपलब्ध प्रकाशित तथा अकाशित हठग्रन्थों का भी परामर्श अध्ययन में लिया गया है। ह० प्र० तथा पै० सं० इन दो ग्रन्थों की विशिष्ट रूप से होने का कारण इनमें दो पुम् पुम् २ परम्पराएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं । इन परम्पराओं में हठयोग की चार तथा सात कों में विभक्त किया गया है । इनके वतिरिक्त गौरवा एक ही ग्रन्थों में प्रायः के पक्षे दो कों की होकर अर्द्ध योग भी पाया जाता है। लेकिन उसको स्पष्ट रूप में हठयोग कहा नहीं गया है । प्रायः परम्परा में ही हठयोग को प्रस्तुत करने का किया गया यह प्रयास कहा जा सकता है। कुछ उपनिषदों में अर्द्ध योग में तर्क का समावेश भी पाया जाता है। किन्तु यह भी हठयोग की साथ बात कही नहीं जा सकती । इसलिए कर्तुर्ग तथा समाधि यही दो हठ परम्परा की प्रमुख धाराएँ माननी चाहिए । हठप्रतीफिका के अन्त्याध्याय में वासन, प्राणायाम, मुद्रा तथा नादानुसन्धान के चार कों बातें हैं । पैरुण्ड संज्ञिता में अट्कर्म वासन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान तथा समाधि इन सात कों का समावेश है। फिर भी दो परम्पराओं में एक ही तत्त्व तथा एक ही प्रकार की

साधन पद्धति होने के कारण किसी को भी न्यूनाधिक प्राधान्य देने की बात ही रह जाती है ।

कुछ मुनिवर्गों की दृष्टि से प्राणायाम से ही सभी मलों की शुद्धि हो जाती है, इसलिए बला शुद्धि कर्मों की आवश्यकता नहीं है । यह दृष्टिकोण में निर्दिष्ट करने के बाद भी ऋद्ध कर्मों की सर्वा स्वात्माराम ने भी की है। स्वात्माराम के नादानुबन्धान में प्रत्याहार ध्यान तथा समाधि इन तीनों कर्मों का समावेश हो जाता है । इस प्रकार चतुर्ग और सप्तांग छठ परम्पराओं में मुख्यतः भेद नहीं रहता है। फिर भी इन दो ग्रन्थों में अधिक प्राचीन कौन सा है यह प्रश्न भावलिष्ट रह जाता है। छठ प्रीफिका का भारत भर में जितना प्रचार हुआ उतना पै० सं० का नहीं । छठ प्रीफिका के हस्तलिखित भारत भर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं तथा छठरत्नावली , सं० सं० चं० जैसे ग्रन्थों में स्वात्माराम के उद्धरण भी पाये जाते हैं । सं० प्र० के कई हस्तलिखित लेखन काल का भी निर्देश कर देते हैं। कवत्पाध्याय के द्वारा इन दोनों ग्रन्थों का चिकित्सात्मक सम्पादन करने का प्रयास किया गया है। परन्तु पै० सं० के हस्तलिखित बहुत कम मिले और उनमें लेखन काल का भी निर्देश नहीं मिला । सं० प्र० तथा पै० सं० एक दूसरे का निर्देश नहीं करते हैं । फिर भी सं० प्र० के प्रचुर प्रभाव की देखी हुर उही ग्रन्थ को प्राचीन मानने की प्रवृत्ति विद्वानों में देखी जाती है। वस्तुतः पै० सं० का प्रचार तार्किक मण्डलों में सीमित रहा, बिहार तथा बंगाल में पै० सं० के बहुत हस्तलिखित पाये जाते हैं । ये हस्तलिखित ग्रंथ प्रायः मैथिली, मीनपुरी, बंगाली इत्यादि लिपियों में लिखे हुए हैं । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में केवल इस कारण इन हस्तलिखितों का उपयोग नहीं कर पाया इस बात का उद्ये है। इनका अध्ययन करने के बाद ही सं० प्र० तथा पै० सं० इनके काल के बारे में पूर्वापार निर्दिष्ट किया जा सकता है, जतना ही यहाँ कहा जा सकता है ।

अध्ययन की सुविधा को देखी हुर घेरण्ड के

कन्याशालाओं को इस प्रबन्ध में अपनाया गया है। इन शालाओं के बारे में स्वात्मनारायण तथा धरमंड के वर्णित हैं। इन शालाओं के नाम भी कन्याओं में निर्दिष्ट करते हुए प्रबन्ध को उल्लेख के अंतर्भावित कन्याओं का स्वरूप देने का प्रयास किया गया है। शालाओं के अन्तर्गत में धरमंड तथा स्वात्मनारायण दोनों के विवरण में जो सामान्य तथा भेद पाया जाता है वह यहाँ निष्कर्ष के रूप में निर्दिष्ट किया जा रहा है।

चतुर्थ

ध० ६० में कायस्थान से शाला शालाओं के अन्तर्गत प्रथम उपखंड में चतुर्थी का उल्लेख द्वितीय उपखंड में प्राध्यापिकाओं के साथ साथ किया है। दोनों ही प्रकार चतुर्थी के अन्तर्गत धीति, वसि, नेति, वाट, लीलि (नीति) और कपालाति क्रियाओं की स्वीकार की जाती है किन्तु दोनों को चतुर्थी की प्रक्रिया और संस्था में फर्क अन्तर है।

धीति कर्म धीतिक्रिया के अन्तर्गत ध० प्र० के अन्तर केवल एक प्रकार की वस्तु धीति का ही उल्लेख उपलब्ध है, किन्तु धरमंड संस्था में धीति कर्म के अन्तर्गत चार प्रकार की धीति- वस्तुधीति, वस्तुधीति, वस्तुधीति तथा वस्तुधीति का वर्णन मिलता है। फिर इन चार प्रकार की धीतियों के अन्तर्गत उनके बराबर बराबर भेद निम्न प्रकार बताये हैं :

- १- वस्तुधीति- वातसार धीति, वारिषार धीति, वसिषार धीति, वसिषार धीति एवं प्रत्याल धीति ।
- २- वस्तु धीति - वस्तुधर धीति, विद्या धर धीति, कर्णधर धीति, और कपालधर धीति ।
- ३- वस्तु धीति- वस्तु धीति, वस्तु धीति, वाचो धीति ।
- ४- वस्तुधर

प्राप्ति कर्म

उ० प्र० में केवल प्रत्यक्ष का ही वर्णन मिलता

है । किन्तु धेरण्ड छंदिका में प्रत्यक्ष एवं स्वप्रत्यक्ष की प्रक्रियाओं का उल्लेख पाया गया है।

प्राप्ति कर्म

प्राप्ति कर्म के विषय में दोनों ही ग्रन्थकार एक मत हैं । दोनों ही ग्रन्थों में प्राप्ति की एक ही प्रक्रिया "सूत्र प्राप्ति" का उल्लेख किया गया है।

सौलिकी (नीति)

उ० प्र० में इस क्रिया की नीति तथा धेरण्ड छंदिका में सौलिकी नाम दिया गया है। इस सौलिकी का उल्लेख दोनों ही ग्रन्थों में एक ही प्रकार से दिया है। धेरण्ड छंदिका में सौलिकी का उल्लेख बाटक से पूर्ण किया है और उ० प्र० में बाटक कर्म के पर्याय ।

बाटक कर्म

दोनों ही ग्रन्थों में बाटक की एक ही प्रकार से दिया गया है ।

कपाल प्राप्ति

उ० प्र० में कपालप्राप्ति का एक ही प्रकार दिया है, किन्तु ध० व० में कालक्रमेण, कालक्रमेण तथा "होतृक्रमेण" कपालप्राप्ति का उल्लेख किया गया है।

इन चतुर्कर्मों के अतिरिक्त केवल उ० प्र० में "मकरणी" नाम की क्रिया का उल्लेख और किया गया है। चतुर्कर्म के विवेक

के साथ साथ मलौधन की पद्धति, प्राणायामों का आन्तर फल तथा मुक्ता-मुक्त प्राणायाम के विषय में भी उत्तम उपलब्ध है।

वासन विधान

ह० प्र० में वासनों का उत्तम प्रथम उपदेश में मिलता है तथा षेरण्ड संज्ञिता में इनका वर्णन द्वितीय उपदेश में किया है। वासनों की संख्या के विषय में दोनों ग्रन्थकारों के भिन्न भिन्न विचार हैं। ह० प्र० में पन्द्रह (१५) वासन- स्वस्तिक, गौमुख, वीर, कूर्म, कुक्कट, उत्तान कूर्म, धनुर, मत्स्येन्द्र, पश्चिमोत्तान, मयूर, त्र्यम्ब, शिह, मृग, सिंह तथा मृदायनों का वर्णन उपलब्ध है। ये० सं० में वत्सीय (३२) वासनों की उल्लिखित किया है- शिह, मृग, मयूर, मुक्ता, वज्र, स्वस्तिक, सिंह, गौमुख, वीर, धनुर, मुक्ता(त्र्य) गुप्ता, मत्स्य, पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गौरवा, उत्कट, संकट, मयूर, कुक्कट, कूर्म, उत्तानकूर्म, मण्डूक, उत्तानमण्डूक, वृषा, गरुड, वृषा, त्र्यम्ब, मकर, उच्छ्र, मुजंग और योगासन हैं।

षेरण्ड संज्ञिता में समस्त (१७)- मुक्ता, वज्र, गुप्ता, मत्स्य, गौरवा, उत्कट, संकट, मण्डूक, उत्तान मण्डूक, वृषा, गरुड, वृषा, त्र्यम्ब, मकर, उच्छ्र, मुजंग और योगासनों का वर्णन ह० प्र० से वतिरिक्त उपलब्ध होता है।

ह० प्र० में सिद्धासन की दो प्रक्रियाओं का उल्लेख करने के पश्चात् यह उल्लेख किया है कि इस सिद्धासन को ही कोई विद्वान् वज्रासन भी कहते हैं, किसी के मत में मुक्तासन तथा किसी के मत में गुप्तासन है। किन्तु षेरण्ड संज्ञिता में सिद्धासन, वज्रासन, मुक्तासन और गुप्तासन की परिभाषाएं पुनः पुनः उपलब्ध होती हैं। ह० प्र० में प्रस्तुत प्रक्रियाओं के विषय

में लिखा है कि कर्म स्वल्प का निरूपण मन्त्रस्थानाथ तथा बाद के स्वल्प की कल्प छिदों ने माना है।

ह० प्र० में पदमासन के दो प्रकार- पदमासन एवं वदपदमासन की प्रक्रियाओं का उल्लेख पुनः पुनः किया है। ध० सं० में केवल वदपदमासन के स्वल्प का वर्णन उपलब्ध है। ह० प्र० में पदमासन की परिमाणा को नहीं है तथा इसके पदमासु स्वात्मराम ने यह मा व्यक्त किया है कि छिद योगी इस वासन की गौरवासन भी कहते हैं, किन्तु ध० सं० में गौरवासन की परिमाणा पदमासन से विच्छिन्न भिन्न प्रकृत है। ह० प्र० और ध० सं० में वासन एक ही हीत हुए भी पदमासन के स्वल्प की भिन्न भिन्न दर्शाया है। इसी प्रकार पदमासन की परिमाणा भी ह० प्र० एवं ध० सं० में पुनः पुनः करते हुए उसके स्वल्प की भी कल्प कल्प किया गया है।

ह० प्र० में छिद, पदम, छिद तथा पदमासु की कल्प वाद्यों के बीच बताया है, किन्तु ध० सं० में इस प्रकार का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

कुटा-विधान

ह० प्र० के तृतीय उपोक्त में कटाकुटा, कटाकम्प, कटाविध, केवरी, उद्विड्याकम्प, कुलकम्प, वात्स्यकम्प, विपरोत्करिणी, वज्रीली- लज्जोली, कमरीली, , नारी की वज्रीली तथा लज्जोली की इस प्रकार पद कुटाओं का वर्णन प्राप्त है। लज्जोली तथा कमरीली इन दोनों का स्वल्प पुनः है लोकार न करके इनकी वज्रीली के कल्पों ही माना है। इन कुटाओं के विहित ह० प्र० के चतुर्थ उपोक्त में केवरी का पुनः कल्प तथा लज्जोली व उज्जोली कुटाओं की प्रक्रियाओं की भी उल्लेख प्राप्त है।

धेरण्ड संज्ञिता में महाकुडा, नमोकुडा, उड्डियान बन्ध, वातबन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महाबन्ध, लेवरी कुडा, विपरीतकरिणी कुडा, योनिकुडा, वज्रोली, उचितवलिनी कुडा, ताड़ागी कुडा, माण्डुकी कुडा, शम्भवी कुडा, पंचधारणाई- पाणिनी, वाम्भवी, वाग्नेयी, वायवीय, वाकासी, वरिचनी कुडा, पाशिनी कुडा, काकी कुडा, मार्तण्णिनी कुडा एवं सुवर्णिनी कुडा एवं प्रकार पञ्चोत्त कुडाओं का वर्णन उपलब्ध होता है।

ह० प्र० के तृतीय उपप्रेत में प्राप्त कस कुडा तथा क्षुर्प उपप्रेत की शम्भवी कुडा का स्वरूप का निष्पन्न पे० सं० में किया गया है, किन्तु ह० प्र० की वज्रोली कुडा के अन्तर्गत प्रस्तुत सखोली, वनरोली, नारी की वज्रोली तथा उन्मनी कुडा का कोई प्रयोग पे० सं० के अन्तर्गत नहीं आया है। पे० सं० के अन्तर ह० प्र० के विभिन्न नमोकुडा, योनिकुडा, ताड़ागी कुडा, माण्डुकी कुडा, पाणिनी धारणा, वाम्भवी धारणा, वाग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, वाकासी धारणा, वरिचनी कुडा, पाशिनी कुडा, काकी कुडा, मार्तण्णिनी कुडा, एवं सुवर्णिनी कुडा कुल चौदह (१४) कुडाओं का वर्णन प्राप्त है।

ह० प्र० में महाकुडा कथन में प्राण को ऊर्ध्व दिश (उल्टा) में धारणा करने का निर्देश है जबकि पे० सं० में प्राण के विषय में कोई उल्लेख न करते हुए दृष्टि को नीचे के मध्य लगाने का निर्देश किया है। ह० प्र० में महाकुडा के अन्वय हेतु चन्द्रांग और सूर्यांग से बराबर बराबर करने हेतु निर्देश किया है। इसके अन्वय से होने वाले शारीरिक, मानसिक लाभों का उल्लेख किया है। पे० सं० में प्रक्रिया के अतिरिक्त चन्द्रांग सूर्यांग से अन्वय करने तथा लाभों के विषय में कोई आलोचन नहीं किया है। वातबन्ध, उड्डियान बन्ध एवं मूलबन्ध की प्रक्रिया दोनों ग्रन्थों में समान है।

महाबन्ध के अन्वय हेतु ह० प्र० और धेरण्ड संज्ञिता में प्राण के कुम्भक करने का निर्देश किया है। किन्तु पे० सं० में केवल

के विनाय में कोई उक्ति नहीं किया है। ४० प्र० में मन की कला बाढ़ी के ऊपर प्रविष्ट करने तथा बाँध बाँधों के बन्धन करने का निर्देश किया है क्योंकि ये ४० में इस प्रकार का उक्ति नहीं है। महाबन्ध के विनाय में स्वात्मधाराम ने उक्ति किया है कि बालन्धर बन्ध में कट का उकीव न करे क्योंकि राजन्धर पर स्थित विष्णु का बन्ध ही प्रकट होता है। किन्तु ये ४० में बालन्धर बन्ध करने का स्पष्ट निर्देश किया है। तथा प्रक्रिया दोनों में समान है।

४० प्र० में महाविध की प्रक्रिया का उक्ति करते हुए महाबन्ध तथा महाबन्ध की महाविध के बिना व्यर्थ तथा धरुण्ड संविता में महाबन्ध तथा महाबन्ध की महाविध के बिना व्यर्थ बताया है। ४० प्र० में महाविध के बन्धन में महाबन्ध, बालन्धरबन्ध, सुटों का बाधन तथा दिन में बाँध बाँध बन्धन का उक्ति किया है। धरुण्ड संविता में महाबन्ध, उद्दिष्टान करके इस मुद्रा के बन्धन का निर्देश किया है लेकिन बन्धन को उक्ता निर्धारित नहीं को है।

देवरी के बन्धन में ४० प्र० में विष्णु तन्त्र की कान्ति के लिए स्वीयता (विष्णु के कान्ति) के समान बोधन धार बाँध सत्त्व का निर्देश है तथा फिर हुए देवा नमः और धरु के विधित मुद्रा है विष्णुबन्ध की वर्णन का उक्ति है, किन्तु ये ४० में उनके स्थान पर विष्णु बाढ़ी की देवकर विष्णु पर महाबन्ध लगाकर लीले की विष्टी है प्रसिद्धि विष्णु लीले बन्धन करने का उक्ति है। तथा प्रक्रिया दोनों प्रन्थों को समान है।

विशरीलकरिणी मुद्रा की प्रक्रिया दोनों प्रन्थों में समान है।

४० प्र० में काशी की मुद्रा का बन्धन लीले की मनी नहीं की पुराण लिं में ओः ओः प्रीति करे प्रकट करते हुए स्वीयता

में लिं प्रीत करी हुए वीर्य की सुरक्षा एवं लिं के द्वारा रज की योनि से वाकणित करी हुए वन्यास का उत्तम प्राप्त है। इसके विपरीत धे० धं० में अन्य मुद्राओं के समान दोनों हाथों की पुद्गलपुष्पक भुमि पर रखे तथा दोनों पैरों तथा शिर की वाकाश की ओर उठाने का उत्तम है। इस प्रकार के वन्यास से शक्ति संचार होती है , का निर्देश भी किया है ।

उपर्युक्त कथन के आधार पर ध० प्र० एवं धे० धं० की वज्रौली में स्वरूपान्तर है तथा धे० धं० में सक्रौली, वमरौली तथा स्त्री वज्रौली के वन्यास का भी उत्तम उपलब्ध नहीं होता है।

शक्तिवालिनी मुद्रा के वन्यास हेतु धे० धं० एवं ध० प्र० की प्रक्रियाओं में साम्य- वैधम्य निम्न है-

ध० प्र० के अनुसार

- १- वज्रासन पर स्थित होकर
- २- मन्त्रिका कुम्भक
- ३- एक वालिनी सम्पा चार वंशुल पीड़ा परिधान नाभि केन्द्र पर रखकर
- ४- प्रतिदिन २ मुहूर्त वन्यास तथा एक मण्डल(४० दिन) में शक्ति वागर्ण की कथि
- ५- स्कान्तवास एवं वन्यास गुप्त
- ६- कन्द(वीरिनी नाड़ी) का प्रसादन
- ७- प्रत्यय तथा मिताहार प्रयोग
- ८- रात्रयोग प्रतीक्षा कथिदिता

धे० धं० के अनुसार

- १- सिद्धासन पर स्थित रखकर
- २- पुरक प्राणायाम
- ३- एक वालिनी सम्पा चार पीड़ा परिधान नाभि केन्द्र पर रखकर
- ४- जस्थिनी मुद्रा लाकर स्कान्त में वन्यास
- ५- शक्ति वालिनी मुद्रा में योनि मुद्रा का सक्रयोग कथिदिता
- ६- नन्मावस्था में रखकर वन्यास

जापसी कुटा के स्वरूप एवं वर्णन की प्रक्रिया
 उ० प्र० एवं पे० सं० में समान है। उन्नीसी कुटा का उल्लेख पे० सं० में उपलब्ध
 नहीं है। पे० सं० में पूर्व वर्णित चौदह (१४) कुटाओं का किया गया वर्णन
 उ० प्र० के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं है।

प्रत्याहार वर्णन

प्रत्याहार का उल्लेख पे० सं० के चतुर्थ उपलक्ष में
 करते हुए ऋट् शतृ वर्णन तथा वात्मलक्ष्य का विवेचन किया गया है। उ० प्र०
 में प्रत्याहार का कोई विवेचन नहीं है।

प्राणायाम विधान

उ० प्र० में प्राणायामों का वर्णन ऋट्कर्मा
 के साथ साथ द्वितीय उपलक्ष में किया है तथा पे० सं० में वंशीप्रेर में प्राप्त
 है। पे० सं० में प्राणायाम के पूर्व एही उपलक्ष में योगी के लिए स्थान, कात,
 भिन्नार एवं नाडी शुद्धि क्रिया का वर्णन प्राप्त होता है। नाडी शोधन की
 दोनों ही प्रणकारों ने स्थान दिया है। उ० प्र० में नाडी शोधन सामान्य रूप
 से एक ही प्रकार का है जबकि पे० सं० में नाडी शोधन 'उपतु' तथा 'निर्मु'
 दो प्रकार का उल्लेख किया है।

उ० प्र० में कुम्भ के बाठ भेद- ध्रुव भेदन, उज्जायी,
 वीत्कारी, शीतली, मत्त्रिका, प्रामरी, मुष्का तथा प्लाविनी का उल्लेख किया
 है। पे० सं० में भी बाठ प्रकार के कुम्भों का वर्णन मिलता है किन्तु घेरण्ड
 के बाठ कुम्भ स्वात्माराम के बाठ कुम्भों में से है। कुम्भ ही समान है।

उ० प्र० के बाठकुम्भ

ध्रुव भेदन, उज्जायी, वीत्कारी,
 मत्त्रिका, प्रामरी, मुष्का तथा
 प्लाविनी कुम्भ ।

घेरण्ड संक्षिप्त के बाठ कुम्भ

वृत्ति, ध्रुवभेद, उज्जायी, शीतली,
 मत्त्रिका, प्रामरी, मुष्का एवं श्वेली
 कुम्भ ।

घे० सं० में शीतकारी तथा श्लेष्मिनी कुम्भक का उल्लेख उपलब्ध नहीं है एवं घे० प्र० में स्रष्टि कुम्भक तथा कैवली कुम्भक वर्णित है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में सूर्य भेदक, उष्णायी, शीतली, मल्लिका, प्रामरी तथा सूर्या कुम्भकों का उल्लेख है।

घे० प्र० में सूर्यभेदी की प्रक्रिया से पूर्व यह निर्दिष्ट किया है कि प्राणायाम के अभ्यास में पुरक के अन्त में बालन्धर बन्ध लगाया जाय तथा कुम्भक के अन्त में वीर रोक से पूर्व उद्धियान बन्ध करना चाहिए। घे० सं० में पुरक करते बालन्धर बन्ध तथा कुम्भक कायस्थित करने का उल्लेख किया है किन्तु रोक से पूर्व उद्धियान बन्ध लगाने का वर्णन वर्णित नहीं है। घे० सं० में सूर्य भेदी के वर्णन में ही शरीर में विद्यमान वर प्राण वीर उनके स्थानों का भी उल्लेख विशेष रूप से किया है। यह वर्णन घे० प्र० में उपलब्ध नहीं है।

उष्णायी कुम्भक के अभ्यास के लिए दोनों ग्रन्थों में पुरक दोनों नासागुहों के द्वारा करने के लिए उक्त दिया है। घे० प्र० में वाम नासा जिह्व से रोक के लिए तथा घे० सं० में कुम्भक के परवाह बालन्धर बन्ध लगाने का भी उल्लेख है। घे० प्र० बालन्धर बन्ध लगाने तथा घे० सं० में प्राण रोक का कोई उल्लेख नहीं है।

शीतली कुम्भक की अभ्यास प्रक्रिया दोनों ग्रन्थों में उल्लेख है।

मल्लिका कुम्भक के अभ्यास में घे० प्र० में फुमासन पर स्थित होकर अभ्यास करने का उल्लेख किया है। घे० सं० में किसी वाहन की चर्चा नहीं की गई है। घे० प्र० में मल्लिका के अभ्यास में मुत की बन्ध करते हुए नासिका के एक सन्ध से प्राण का रोक करते हुए हृदय कण्ठ वीर कपाल पर्यन्त रुक करते हुए वायु का रोक पुरक करे। जब भय जान पड़े तब सूर्य नाड़ी से पुरक करते कुम्भक करे तथा चन्द्र नाड़ी से रोक कर दे। घे० सं० में मल्लिका

के व्यास में दोनों नासा रन्ध्रों से बाहु से उपर की ओर उपर में ही ली: ली: चलाने तथा हुम्क करते हुए रोक करे। इस प्रकार यह व्यास बीच (२०) बार करते हुए तीन बार करे। ये ४० के समान ४० प्र० में मस्त्रिका के व्यास की कोई संख्या निर्धारित नहीं की है। ४० प्र० में व्यासक्ति हुम्क का निर्देश किया है।

प्राग्गरी हुम्क के व्यास हेतु ४० प्र० में पुरक रोक हुम्क का कोई निर्देश नहीं है, वस्तु साधक के सि० ४० प्र० की प्रक्रिया सम्पूर्ण है। ये ४० में प्रस्तुत प्राग्गरी के व्यास का १म साधक के लिए सही तथा श्रेष्ठ: है। इसी साधक शीघ्र लाभान्वित होगा।

४० प्र० में पुष्पा हुम्क के व्यास हेतु पुरक प्राणायाम के अन्त में बालन्धर बन्ध का निर्देश किया है। ये ४० में पुनः से पुरक करके हुम्क करे तथा मन को विचारों से हटाकर भ्रमण में स्थित कर वाता कट में लगाने का निर्देश किया है। ये ४० में बालन्धर बन्ध लगाने का कोई भी उक्त नहीं है तथा ४० प्र० में मन को भ्रमण में लगाने का भी कोई उक्त नहीं है। ४० प्र० तथा ये ४० दोनों ही प्रणियों में हुम्क करने के लिए स्पष्ट रूप से कहा है।

ध्यान-प्रकरण

ये ४० में ध्यान योग का उक्त अष्ट उपरित में किया है। इसके अन्तर्गत स्थूल, ज्वीर्णमय तथा सूक्ष्म ध्यानों की व्याख्या की गई है। ४० प्र० में पुष्क रूप से ध्यान पर कोई उक्त नहीं मिलता है। स्वात्मा-राम ने नादानुध्यान में ही ध्यान का समावेश कर बाद की ही चरम लक्ष्य बताया है।

समाधि

पे० सं० के वन्तर्गत समाधि के हैं: भैरव ध्यानयोग, समाधि, नादयोग समाधि, रहस्यनन्दयोग समाधि, लयविद्धि योग समाधि, मन्त्र योग समाधि तथा राजयोग समाधियों का वर्णन उपलब्ध है। ए० प्र० में पे० सं० जैसी समाधियों का कोई विवेक नहीं किया है। ए० प्र० में स्वात्मा-राम ने नादानुत्थान की ही वरम लक्ष्य स्वीकार करते हुए नाद की चार अवस्थाएँ- वारम्भावस्था, ष्टावस्था, परिवर्णावस्था तथा निष्पत्ति अवस्थाओं के उद्घाटन तथा नादानुत्थान काल में हुनाई देने वाले शब्दों का विस्तृत विवेक किया है।

वन्तिम निष्कर्ष

दो प्रश्नों की इस तुलना से हठयोग का साधारण स्वरूप समझ में आता है तथा इस बारे में वास्तविक काल में भी प्रार्थनाओं के लक्ष्य या रही हैं उनको दूर करने में भी मदद मिलती है। हठयोग में वायु-धर्म-साधन शरीर का ही सहारा लिया जाता है। शरीर की तत्कालीन सौख्य-नियन्त्रण-रहित क्रियाओं पर भी अभ्यास से नियन्त्रण पाया जा सकता है। यही हठयोग का सिद्धान्त है। स्वास की क्रिया को संतुलित: सौख्य-नियन्त्रण-रहित होने से उस पर प्राणायाम-द्वारा नियन्त्रण करना बहुत कठिन नहीं लेकिन प्रत्यक्ष तथा मज्जा-संस्थान, इनकी क्रियाओं पर भी अभ्यास से नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। पावन संस्थान पर भी नियन्त्रण पाना हठयोगी के लिए मुश्किल नहीं। इस प्रकार शरीर की वन्तः क्रियाओं पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेने से बुद्धि भी रोका जा सकता है। रोग तो हठयोगी के पास भी नहीं जा सके हठाम्बास से योगी कितना बलि जिन्दा रह सकता है, स्वस्थ रह सकता है तथा

कभी शरीर की कौनसी बात की उम्र में जो स्वाभाविक शारीरिक वृद्धि है उसी अवस्था में रह जाता है। आत्मा का अवस्था तो भारतीय दर्शन में सर्वत्र माना गया है लेकिन शरीर की अवस्था प्रदान करने की प्रक्रिया हीन का वैयक्तिक जीवन की ही बात है। वाक्यकृत वृद्धि का प्रसार तथा अनुसन्धान दुनिया पर में ही रहा है। इस अनुसन्धान के लिए प्राचीन लिखित परम्परा की ठीक तरह से समझ लेना निताम्त आवश्यक है। गुरु-परम्परा से बाकी कुछ कुछ लिखित परम्परा भी ही अच्छी है इस बात की मान्य करने में हमें कोई बाध नहीं है लेकिन हमारी राय में इस लिखित परम्परा का उपयोग लिखित परम्परा की कथाएँ रूप में समझने के लिए ही कर लेना चाहिए। कथ्यता लिखित परम्परा के नाम पर किसी बात की भी वृद्धि प्रक्रिया का नाम दिया जा सकता है। वाक्यकृत इस प्रकार की बात चल भी रही है। वृद्धिप्रक्रियाओं में प्रगति या वृद्धि की बात अच्छी है लेकिन इन प्रक्रियाओं की ठीक प्रकार से समझ लेने के बाद ही। वाक्यकृत योगाचार्यों का बहुत प्रचार हो रहा है। लिखित परम्परा में योगाचार्यों में से कुछ बहुत बड़ों की कथि गयी है लेकिन इस बात का लाभ उठाकर हर किसी व्यायाम प्रकार की बात नाम देना उचित नहीं लगता। हीनार्थिज स्वर्ग वाचन जैसे वाक्यकृत प्रगति तथा अनुसन्धान वाचनों का लिखित परम्परा में उचित क्यों नहीं मिलता। इस बात की भी सीधे आवश्यक है। इन प्रक्रियाओं की 'विपरीतकरणि' सुत्र के उद्भव में पाया जा सकता है, लेकिन इनकी वाचन नाम क्यों नहीं दिया गया। इस बात की सीधे भी आवश्यक है। गहराई से अध्ययन तथा वैज्ञानिक प्रयोग करने से सुझाव की रीति के बारे में वृद्धि के सिद्धान्त का भी परीक्षण किया जा सकता है। इस दृष्टि से वृद्धि के वैज्ञानिक अध्ययन का भी अपना महत्त्व निश्चित रूप से है। वैज्ञानिक अध्ययन के लिए लिखित परम्परा की ठीक तरह से समझकर उसी का उपयोग करना उचित होगा। वृद्धि को भी परम्पराओं की कथि याद की प्रणियों की

पूजा करते हुए समस्त विद्वान् सङ्गीत परम्परा की विद्वानों के समस्त रत्नों का प्रयास इस लीप ग्रन्थ में किया है। सम्भवतः विद्वत्सर्व के दृष्टिकोण से प्रस्तुत ग्रन्थ में न्यूनताधिक हटि हों, इस बात का विचार लेना ही भी है। लेकिन निर्धारित समय तथा उपलब्ध साधन प्रयोग में लाते हुए भी कुछ ही का, वही इस ग्रन्थ के रूप में विद्वानों के समस्त रत्नों का प्रयास मात्र है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों की सूची

कलात्मक प्रयोगों की सूची

कलात्मक	कलात्मक संस्थान, नयी दिल्ली, २०३१
कलात्मक (कलात्मक व्यापार- निरीक्षण)	श्री केशव देव शास्त्री, भारतीय कलात्मक विद्या मन्त्रालय, स्वदेशी बाजार, कानपुर
कलात्मक विभाग	सम्पा. श्री २० कलात्मक शास्त्री, कलियार शास्त्री एवं शोध केन्द्र, कानपुर, १९६६
कलात्मक विभाग	०० ००
कलात्मक विभाग	०० ००
कलात्मक विभाग	कलात्मक शास्त्री उमर देवा समिति, श्रीमान मिथिलापल्ली, कलकत्ता
कलात्मक का कलात्मक विभाग विभाग-कलात्मक	कलात्मक भाई मणिमार्ग फौज, भारत एक कलात्मक प्रकाशन, पानकीर नाका, कलकत्ता
कलात्मक प्रकाशन	क. रामारायण कर्मा देव, श्री कलात्मक वास्तुविद्या मन्त्रालय, कलकत्ता, १९८१
कलात्मक विभाग	स्वामी व्यापारिक श्री, श्रीमान निरुद्ध देव, कलकत्ता, १९६४
कलात्मक का कलात्मक विभाग (विभाग कलात्मक)	श्री राम बाबाय, कलात्मक संस्थान, श्रीमान विभाग कलात्मक

કેશવનિખર

કુસામની લેખ

કાલી વિભાવ લેખ

**કલ્યાણ(પ્રી વિષ્ણુ પુરાણ
કે. કવ. ૧૬૭૧)**

કલ્યાણ(હેત્વાળી લેખ)

કલ્યાણ(ચીમ વિદેશી)

કલ્યાણ(હાથા લેખ)

નીરસાચારી

ધરુણ હરિયા

ધરુણ હરિયા

ધરુણ હરિયા

ધરુણ હરિયા
પાણુ લિપિ

નીલા પ્રેમ, નીરસુર, લે. ૨૦૨૭

**લે. કાલીસ રત્ના, કલ્યાણ વંદિર, પ્રયાગ,
લે. ૨૦૨૬**

લે. કાલીસ રત્ના, કલ્યાણ, ૧૬૧૭

નીલા પ્રેમ, નીરસુર

નીલા પ્રેમ, નીરસુર

નીલા પ્રેમ, નીરસુર, ૧૬૨૫

નીલા પ્રેમ, નીરસુર

**નાચકાર ની મહાવીર રત્ના,
કેશવ નીરસાચારી, કલ્યાણ, લે. ૨૦૨૪**

**લે. સ્વામી વિમલ્લ ની, કેશવ ખામ,
કેશવલા, પૂના, ૧૬૭૮**

**કલ્યાણ હા. કવ. સાથ નીતમ, હેતુકિ
કેશવ, વેલી, ૧૬૮૧**

**નાચકાર રાષ્ટ્રગુરુ ની ૧૦૦૦ ની સ્વામી
ની મહારામ, ની નીલાચાર વીઠ હેતુકિ
વરિષ્ઠ, વરિયા(નં પ્ર૦) વિદ્યાવત્ ૨૦૨૧**

પ્રાચ્ય વિદ્યા કેન્દ્ર, કાલીયા (ગુજરાત)

विष्णु वंशिका (पाण्डुलिपि)

रत० डी० कन्स्टीट्यूट वाफ कम्पनीली, ब्रिस्टोला

वरक वंशिका

ड० राम नारायण शर्मा देव, श्री वंशिका
वास्तुवि मन्त्र, कलकत्ता

वामाच दलीपनिष्ठा

श्री राम शर्मा वावाच, वंशुवि वंशिका, बरौली,
विशेष वंशिका संस्करण

वामाचिद्विस्तार

गोविन्द शास्त्री, वामाचि विधि प्रकाश,
१२०, कल्याणिया उराय नाथ, नयी दिल्ली

वाम विज्ञान

००

००

वाम वंश

००

००

वामाचिद्विस्तार

ड० श्री २० महर्षि शास्त्री, वामाचि
वास्तुवि एवं वंश केन्द्र, पटना, १६६

वामाचिद्विस्तार

वंशिका श्री २० राम विहारी मि,
वास्तुवि प्रकाश एवं वंश, वाराणसी

वामाचिद्विस्तार

ड० श्री २० महर्षि शास्त्री, वामाचि
वास्तुवि एवं वंश केन्द्र, पटना, १६६

वामाचिद्विस्तार

००

००

वामाचिद्विस्तार

००

००

**वामाचि वंशिका : वामाचि-
वामाचि वंशिका**

श्री वाराणसी मि, वामाचि वंशिका प्रकाश,
वाराणसी, १६७

पार्ष्णीय वीरभद्र : एक कमाठीपना-
एक कन्याप

पार्ष्णीय वीरभद्र का विवेचना-
एक एवं सुजातप कन्याप

पार्ष्णीय वीर वरुण (व्यास पात्र
वीर वारि)

पार्ष्णीय वीरवर्ण (उत्तर वीरवर्ण
एवं व्यास पात्र)

पार्ष्णीय वीरवर्ण

पार्ष्णीय वीरवर्ण

पार्ष्णीय वीरवर्ण

पार्ष्णीय वीरवर्ण

पार्ष्णीय वीरवर्ण

पार्ष्णीय वीरवर्ण

डा० मन कुमारी गुप्ता,
ईस्टर्न बुक डिप्ट, दिल्ली, १९७३

डा० नलिनी गुप्ता, उच्च वीरवर्ण
नानाराय पाट, बल्लारी, बालपुर

वीरवर्ण विद्यापीठ मण्डलाचार्य,
कलकत्ता, ई० १९६०

पार्ष्णीय विद्या प्रकाश, पार्ष्णीय

उत्तरवर्णपात्र वीरवर्ण, वीर प्रेस,
गोरखपुर

वाचकार स्वामी वीरवर्ण वीर
वीर प्रेस, गोरखपुर, ई० २०२४

स्वामी विद्यापीठ वी,
वीर वीर वीर वीर वीर,
कलकत्ता, १९६९

स्वामी उत्तरवर्ण वीरवर्ण
ई० डा० रामवर्ण मण्डलाचार्य,
वीर वीर वीर वीर, दिल्ली, १९७३

वृद्ध वीरवर्ण वीरवर्ण, वीर वीर
वर्ण, वीर, वीरवर्ण
ई० वीर वीर वीर वीर,
वाचकार वीरवर्ण वीर वीर, वीर,
१९६९

कुम्भीनि याज्ञिक्य स्मृतिः

स्वामी कृष्णानन्द, कैलाश धाम ,

लीलावती, पुना, १६४१

वीर स्मृतिर्वा

शम्भा० श्री राम रमा,

बरीली, १६६६

विजय वर्त्मन

महात्मा रामरत्न पयस्विनाथ,

हिमालय लोक देवक मन्दिर, मथुरा, १६६१

पुत्र विज्ञान

स्वामी योगेश्वरानन्द सहजवादी,

योग निवास हट, जयपुर, १६६४

वराहीपनिषद्

शम्भा० श्री २० महादेव सास्त्री,

बापियार बाणेश्वरी एवं श्री केन्द्र, मथुरा

१६६६

ब्रह्मसंहिता भाष्यम् स्रुःश्रुती

कामेश्वर नाथ मि

वीरभवा संस्कृत श्रीहीन बापियार,

मथुरावासी, १६७६

वेदाविधि

क्याकन्द संस्थान, वेद वेदिर , मथी

दिल्ली

वेदान्त दर्शन

शम्भा० श्री श्रीराम रमा बापियार,

संस्कृत संस्थान, बरीली , १६६६

वशिष्ठ योग

स्वामी व्यासजी श्री, योग निवास

हट, जयपुर, ३०३०

प्रजापतिपवित्रम्

ध्या० श्री २० महादेव तास्वी
वादिपार सास्त्री श्री श्री केन्द्र, काठ,
१६६८

वाल्मीकि धर्मसूत्र श्रीरामायण
भाग १, २

१० श्रीधीमाय कविराज,
विहार राजकुमाराना परिवार, काठ,
१६६४

महाभारत पुराण

श्री कृष्ण ठेकर तास्वी, १६६८

महाभारत श्रीराम और सुतर्क

श्री श्रीराम ठेकर तास्वी, विहार
तास्वी श्रीराम ठेकर, विहार
तास्वी, १६६०

महाभारत

श्री श्रीराम
श्री श्रीराम श्रीराम, पाठिपरी,
१६६०

महाभारत उपनिषद्

श्री श्रीराम, श्रीराम

महाभारत

०० ००

महाभारत

महाभारत श्रीराम ठेकर विहार
काठ, १६६६

महाभारत श्रीराम

श्री श्रीराम ठेकर काठ
श्री श्रीराम ठेकर काठ, काठ, १६६३

महाभारत उपनिषद्

ध्या० श्री २० महादेव तास्वी,
वादिपार सास्त्री श्री श्री केन्द्र, काठ,
१६६८

कनक प्रमोदनीपतिपद

उपा० श्री २० महाशिव शास्त्री ,
बागियाह हाजीरी एवं जी० केन्द्र,
काठमा, १९६८

कृष्ण एवं कान्ति

श्री २० राविक शास्त्री, दयानन्द संस्थान,
नयी दिल्ली, २०३०

**मीनहसन कला पारिवर्त योम
वर्तन**

काशी ठाकुर श्री कान्ति
श्री २० डा० नीलकण्ठ शिवारी , काशी
विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९७६

मीनकान्ति

नाथ कवीराम
उपा० डा० २० रमा , ईश्वर
हृद लिखित, दिल्ली

मीनकाशी (कन्या विद्या)

मीनकाशी , गीरकान्त मेदिनी,
गीरकान्त, बन १९८१

मीनकान्ति कृत

कान्तिपति
उपा० श्री २० रमा , कान्ति प्रकाशन
काशी , २००५

मीनका

उपा० मुनिराम शुक्ल विद्या हास नाथ
कनका नाथ , काशी संस्कृति विद्या
मेदिनी, कान्ति, १९६५

मीन कान्ति

परमेश्वर कान्तिनाथ कनका नाथ श्री
कान्तिनाथ कान्ति नाथ , कान्ति, १९६५

बीकानेर सुविचार

डॉ० बी० ए० कानिब साहनी ,
कानियार साहनी एवं डी० के०, काठ,
१९६८

बीकानेर सुविचार

०० ००

बीकानेर सुविचार

०० ००

बीकानेर सुविचार

०० ००

बीकानेर सुविचार

डॉ० कानिब साहनी
काठनी विद्या प्रकाशन, पाराणसी,

बीकानेर सुविचार

बीकानेर सुविचार, बीकानेर डिस्ट्रिक्ट,
काठनी, २००६

बीकानेर सुविचार (कानिब साहनी)

कानिब साहनी, बीकानेर सुविचार,
बीकानेर, १९८०

बीकानेर सुविचार (कानिब साहनी)

कानिब साहनी, बीकानेर, १९८०

बीकानेर सुविचार

बी० कानिब साहनी
डॉ० बी० टी० के०, काठनी गौरी
प्रकाशन, पुष्करासन-२

बीकानेर सुविचार

डॉ० कानिब साहनी
काठनी विद्या प्रकाशन, पाराणसी

बीकानेर सुविचार

बीकानेर सुविचार, काठनी डिस्ट्रिक्ट

बीकानेर सुविचार

डॉ० बी० टी० काठनी
काठनी विद्या प्रकाशन, पाराणसी

सुख संविदा

नीता प्रेस, गीरसुर

शिव शिवाय कवि एवं अन्य नाम
काव्य

श्री कल्याणी मल्ल
पुता बीरियुष्ट हनु वाक्य, पुता
१९४४

साहित्य उपनिषद्

उपा० श्री २० कलवि शास्त्री
वापियार साक्षीरी एवं श्री केशव, काव्य,
१९६५

शिव संविदा

बीरवाणी बीराम वरण
केराम श्रीकृष्णदास, वन्द्य, १९६०

विष्णुराण

उपा० श्रीराम शर्मा
उपनिषद् संस्करण, बीरवाणी, १९६६

साहित्य निष्पत्ति पुनर्जात

काला साहित्य
केराम श्रीकृष्णदास, वन्द्य, १९६९

विष्णुरीपयः

उपा० श्री कल्याण प्रसाद,
वाराणसी, १९६४

विष्णुरीपयः

उपा० सुखीराम शर्मा
उपनिषद् हनु विष्णु, विष्णु, १९७६

बीरवाणीपरीक्षा

नीता प्रेस, गीरसुर

श्री वाक्यकाव्य

श्री वाराणसी संस्करण,
बीरवाणी उपनिषद् विष्णु,
वाराणसी, १९६२

सह जीव पत्रिका

संजीवनीपत्रिका

सहस्रपावनी

सह प्रीति (पाण्डुलिपि)

सह प्रीति (पाण्डुलिपि)

सहस्र प्रीति

सुहृदीपनिष्ठा

सिधुरा खल

सिद्धिदायकनीपनिष्ठा

सहस्रपावनी

संपा० श्री ए० महादेव शास्त्री
बापियार साक्षरी एवं जीव केन्द्र,
मुंबई, १९६८

श्री विद्या मठ

संपा० एम० वेंकट रेड्डी, केन श्री
रिचर्स संस्थान, चिन्मयाबाद (बामन)
१९८२

सह० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्टीलीजेंस,
कान्हाबाद

सहाय्याराम

ग्राम विद्या केन्द्र, कान्हा

टीकाकार डा० कमल साह गडिय
संस्कृति संस्थान, बीछी, १९७५

संपा० ए० महादेव शास्त्री
बापियार साक्षरी एवं जीव केन्द्र,
मुंबई, १९६८

सरस्वती कमल प्रकाशना, रिचर्स
इन्स्टीट्यूट, बाराणसी, १९६५

संपा० श्री ए० महादेव शास्त्री
बापियार साक्षरी एवं जीव केन्द्र,
मुंबई, १९६८

List of English Books

- Ashtang** Sri Sri Ishlyanand
 Naivalyadham , Laxmala , Poonah
- Aside of Noble living** Sri Chidamandji,
 Divine Life Society, Rishikesh,
 1973
- An Introduction to Tantric Buddhism** S.H. Dasgupta,
 University of Calcutta, 1959.
- A History of Indian Philosophy Vol.I.** S.H. Dasgupta
 The Syndics of the Cambridge
 University Press, Bentley House
 London.
- Essence of Yoga** Sri Shiva Nanda,
 The Divine Life Society, Rishikesh,
 IVth Ed., 1950
- Essays on Gita** Sri Aurebindo
 Vol. 13, Aurebindo Birth Centenary
 Literary, Pondichery, 1972
- History of Sanskrit Literature Vo .III Pt.II** Wintar Rita
 Motilal Banarasidas, Delhi. 1967
- Yatha Pradipika** Shri Shri Jaisingh Shri Institute,
 of Learning & Research, P.C. Marg,
 Ahmedabad.
- Yatha Pradipika** Oriental Institute of Baroda,
 Manuscript (Palm Leaf) M.S. University, Baroda, Gujrat.

Rath Pradipika

Satish Karm

Translated Satyananda

**Chaukhamba Sanskrit Series,
Varanasi.**

Rata Yoga

Thore Bernard

**History of Ancient
Sanskrit literature**

Max Muller

**History of Indian
Philosophy**

Umesh Misra

Indian Philosophy Vol. II

S. Radha Krishnan

Macmillan Co. London, 1962

I God

**(Secret power of
Mantraling)**

Ganaballabh

Franjothi Mathan

Universal Peace Sanctuary,

8, Main Road, TIRVALAN JULI

Tanjor, Tamil Nadu.

Rata Yoga

Satish Satyananda

Haridwar School of Yoga, Bihar

Patanjali's Yoga Sutra

S. V. Gupta

**(Kriya-Yoga and
Kavalaya Yoga)**

**Hindi Prachar Press, Madras, 17
1962.**

Sanyasa

(Yoga Powers and
God realization)

**Practical Yoga Ancient &
Modern**

Raja Yoga

Spiritual Life

**Shivananda Yoga Teachers
Manual**

Sattva Sangrah

**Sure Step (God Realiza-
tion)**

**The Synthesis of Yoga
and its object-mystic
experiences**

Swami Kalya Nanda

Naivalyadham, Lenovala, Poona

Harnest Wood

Great Britain, 1952.

Swami Chidanandji,

The Divine Life Society,

Shiva Mand Nagar, 1976.

Swami Krishnanand,

Divine Life Society, Rishikesh

Shiva Mand Ashram Yoga Camp

8th AVE Valmorin P.P. JCF-2 NO

Canada

Yoga Mimasa Prakashan

Naivalyadham, Lenovala,

Poona, 1970

Gita House , Gorakhpur, U.P.

1980

Sri Bhagvan Das ji

**The Essence of the
Brihadaranyaka Upanishads**

**Sri Sri Krishna Hand ji,
The Divine Life Society,
Shiva Nagar, Rishikesh, 1977**

**The Faber Medical
Dictionary**

**Dr Cecil Wakeley
Oxford-U.K. BH
1975**

The Yoga System

**Sri Sri Krishna Hand
The Divine Life Society,
Rishikesh, U.P. 1981.**

The Vedanta Philosophy

**Max Muller
Mag Publications, New Delhi.**

**The Complete Illustrated
book of Yoga**

**Sri Sri Vishnu Deva Hand
Pocket Books , New York.**

The Holy Science

**Sri Sri Yuktisharn Giri
Self Realist on Fellowship
Los Angeles, California, 1972**

The Psychology of Nirvana

**Robinson,
George Allen Unwin, London.
1969.**

Tantric Tradition

Cheranda Bharati

The Science of Yoga

I.K. Taimni

The Theosophical Pub. House

Adyar, Madra, 1931

The System of Patanjali

Wood James Haughton

Cambridge Massachusetts,

The Harvard University Press,

12nd Ed. 1927

Yasragya Suktam

Shasthori

Yoga

Howard Murphet

Yoga.

Dr. Behman

**Yoga Mimansa (Natta
Pradipika) Vol. 124th**

**Kaivlyadham, Lencwala,
Pozan.**

13

Yoga and Personality

K.S. Joshi

Mayama Publications,

Allahabad, 1969

Yoga

Sewsi Chidamburji

The Divine Life Society,

Rishikesh Ind. , 1960

Yoga

Barnesh Wood,

Canell London, 1959

Yoga and Western

Caster Geraldine

**Psychology : A compari-
son.**

Oxford University Press, London,

New York, Toronto, V Ed. 1949.

Yoga Philosophy

Sreeniv Abhyasana

Ran Krishnana Vedanta Matha,
R.R.K. Street, Calcutta., 1960**Yoga as Depth-**

Dr. C.T. Nangha,

Psychology & Para

Shri. Laxmi, Varanasi, 1975.

Psychology**Yoga: Illustrated**

Harvey Day

Dictionary

Jaico Publishing House, Bombay

Yoga Mimamsa :

Bhaskaryacharya,

Gorakh Batakrum,

Lambhain, Poona

Vol. VII No.4**Yoga Darshan**

Ganga Nath Jha

Theosophical Pub. House

Madras, 1934

Yoga Philosophy in

S.E. Dasgupta,

relation to other

Motilal Banarsidass, Delhi.

systems of India

II B., 1974

Yoga as Philosophy and

S.E. Dasgupta,

religion

Delhi, 1973.

Yoga Immortality

ELIADE MIRCA

and Freedom

London, 1938

MONTHLY MAGAZINES

Yoga	Bihar School of Yoga, Monghyr (Bihar)
Yoga	The Yoga Institute, Santa Cruz, Bombay.
Yoga Wani	Yogawani, Gorakhnath Mandir Gorakhpur.
Yoga Mimansa	Kaivalyadhara, Lonavala, Poona.
Yoga Life	International Shiva Yoga Vedanta Centre, London.
International Yoga Guide	CLBL S.W. , 74th AVE , MAINE, Florida, USA
The Divine Life	The Divine Life Society Rishikesh, Tehri Garhwal. U.P.